रसखान ग्रन्थावली सटीक

(रसखान तथा उनके काव्य का आलोचनात्मक तथा व्याख्यात्मक अध्ययन)

लेखक

प्रो० देशराजसिंह भाटी एम० ए०

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक :
अशोक प्रकाशन,
नई सड़क, दिल्ली-६

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन हैं।
प्रथम संस्करण : १९६६
मूल्य : ५·००

मुद्रक
रामश्री प्रिन्टर्स द्वारा भारती प्रेस,
दिल्ली-६

दो शब्द

हिन्दी के कृष्ण-भक्त तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियो मे रसखान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी मे इनके काव्य के अनेक सकलन प्रकाशित हुए है, किन्तु सटीक कोई भी नही है, इससे सामान्य पाठक रसखान के काव्य के रसास्वादन से वचित रह जाता था। प्रस्तुत कृति इसी उद्देश्य की सृष्टि है। इसीलिए इसमे उन सभी छन्दो को समाविष्ट कर लिया है जो संदिग्ध है, पर रसखान के नाम से प्रचलित है।

आशा है, अपने उद्देश्य मे यह कृति सफल रहेगी।

—देशराजसिंह भाटी

विषय-सूची

आलोचना भाग

१.	रीतिकाल का परिचय	१
२.	रसखान का जीवन-वृत	१४
३.	रसखान की रचनायें	२६
४.	रसखान का प्रेम दर्शन	५६
५.	रसखान की भक्ति-पद्धति	६८
६.	रसखान की रस-योजना	८१
७.	रसखान के कृष्ण	६५
८.	रसखान का सौन्दर्य-चित्रण	१०५
९.	रसखान की अलकार-योजना	११५
१०.	रसखान की भाषा	१२६
११.	स्वच्छन्द काव्यधारा और रसखान	१४५

व्याख्या-भाग

[पद-सूची अकारादि क्रमानुसार पृष्ठ-सख्या सहित]

अखियाँ अखियाँ सो सकाइ	३०१
अगनि अग मिलाई दोऊ	२६६
अजन मजन त्यागौ	३१३
अंग अभूत लगाव	३५१
अत ते न आयौ याही	२१८
अकथ कहानी प्रेम की	३०३
अति लाल गुलाल दुकूल	१२०
अति लोक की लाज	२६८
अति सुन्दर री ब्रजराज	१८२
अति सूछम कोमल	३०५

अधर लगाई रस प्याइ। २६८
अर्बाह खरिक गई गाइ के २००
अरपी श्रीहरि चरन ३३५
अरी अनोखी वाम २९८
अलवेली विलोकनि वोलनि १८४
अली पगे रगे २४४
आइ सवै व्रज गोप लली २४५
आई खेलि होरी व्रज २७४
आई हौ आज नई ३३६
आज अचानक राधिका ३००
आजु वरसाने वरसाने २९९
आज गई व्रजराज के २०२
आज भटू मुरली-वट के २७०
आज महूँ दधि वेचन २२०
आज होरी रे मोहन ३४४
आजू गई हुती भोर ही १७८
आजु भटू इक गोप कुमार २७०
आजु भटू इक गोप वधू २३०
आजु री नदलला निकस्यौ २६७
आजु सवारति नेकु भटू २८२
आजु सखी नदनदन री २०८
आनद अनुभव होत ३२३
आपनो सो ढोटा हम २३३
आये कहा करिकै ३०५
आयौ हुतौ नियरे रसखानि २११
आली लला घन सो २०१
आवत लाल गुलाल लिए २७६
आवत है वन ते मनमोहन १८१
आवत हौ रस के चसके ३३६
इक अगी विनु कारनहिं ३२६

कारज-कारन रूप	३३५
कालिह परयौ मुरलि-धुनि मैं	२३८
कालिह भटू मुरली-धुनि मै	२२९
काह कहूँ रतियाँ की कथा	३०४
काह कहूँ सजनी सग की	३०५
काहू को माखन चाखि	२२३
काहे कूँ जाति जसोमति के	२९१
कीजै कहा जु पै लोग	२७१
कुंजगली मे अली निकसी	२१७
कुंजनि कुंजनि गुंज के	२४१
केसरिया पट केसरि	२५७
कैसा यह देश निगोरा	३५२
कैधो रसखान रस	२७८
कैसो मनोहर वानक	१९१
काइ सौ माई कहा करिये	३११
कोउ याहि फासी	३२९
कौन की आगरि रूप की	२१३
कौन को लाल सलोनो	२४३
कौन ठगौरी भरी हरि आजु	२११
खंजन नैन फदे पिजरा	२१७
खजन मीन सरोजन को	१९७
खेलत फाग सुहाग	२७३
खेलत फाग लख्यो	२७३
खेलिये फाग निसंक	३५०
खेलै अलीजन के गन मैं	२५५
गाइ दुहाई न या पै कहू	१६९
गारी के देवैया वनवारी	३३८
गारी खाइयो अरे गवार	?४३
गावै गुनी गनिका गधरब्ब	१६१
गुंज गरे सिर मोर पखा	१६२
गोकुल को ग्वाल कालिह	२७५
गोरज विराजै भाल	१८१
गोकुल के विछुरे को सखी	३०७
गोकुल नाथ वियोग प्रलै	३०८

इक ओर किरीट लसै ✓ ३१७
उन्ही के सनेहन सानी ✓ २४२
एक ते एक लौ कानन २१९
एक समै इक ग्वालिनि २५७
एक समै जमुना जल-मे ✓ २३५
एक सू तीरथ डोलत १७२
एरी कहा वृषभानपुरा की ३३७
एरी चतुर सुजान २६६
एरी तोहूँ पहचानौ
ए सजनी जवते ३०८
ए सजनी लोनो लला २०९
ए सजनी मनमोहन नागर १९५
औचक दृष्टि परे कहूँ ✓ २५०
कचन के मदिरनि दीठि ✓ १७१
कचन मदिर ऊचे बनाइ ✓ १६९
कस के क्रोध की फैलि ✓ ३१२
कँस कुढ्यौ सुनि वानी १६३
कबहुँ न जा पथ ✓ ३२२
कमल ततु सो छीन ✓ ३२१
कल काननि कु डल मोरपखा ✓ २२९
कहा करै रसखानि को १५८
कहा रसखानि सुख संपति ✓ १७०
कातिग ववार के प्रात २०४
कान परे मृदु वैन २५६
कानन दै अगुरी रहिवो ✓ २०८
कान्ह भए वस बाँसुरी के ✓ २३१
काम क्रोध मद मोह ✓ ३२४
काटे लटै की लटी लुकटी १९०

गोरस गाँव ही मैं बिचिबो २६३
ग्वालिन सग जैबी वन ३१६
ग्यान ध्यान विद्या ३२७
ग्वालिन द्वैक भुजान गहँ २६०
घर ही घरु घैरु वनो २५२
चन्दन खोर पै बिन्दु २४३
चद सो ग्रानन मैन २२५
चीर की चटक औ लटक ३४७
छूट्यौ गृहराक लोक २४६
छीर जो चाहत चीर गहैं २२२
जाको लसै मुख चन्द समान २८४
जग मे सब जान्यौ ३२५
जग मे सव ते अधिक ३२८
जदपि जसोदा-नद अरु ३३१
जमना तट वीर गई २५०
जल की न घट भरै २२४
जात हुती जमुना जल को १६४
जाते उपजत प्रेम सोइ ३३३
जाते पलपल वढत ३३३
जा दिन ते निरख्यौ १६४
जा दिन ते वह नन्द को २१०
जा दिन ते मुस्कान चुभी २०७
जानै कहा हम मूढ ३१०
जाहु न कोई सखी जमुना जल २६७
जेहि पाए वैकुंठ ३२८
जेहि विनु जाने कछुहि ३२५
जो कवहुँ मग पाँव न देत २८८
जोग सिखावत आवत है ३१३
जो जाते जामैं वहुरि ३३३
जो रसना रस न विलसै १५६
जोहन नन्दकुमार को २०६

जोहौं मैं तिहारी ओर ३३६
डरै सदा चाहे न कुछ ३२७
डहडही बौरी मजु डार २८८
डोरि लियौ मन मोरि २२७
डोलिबो कु जनि कु जनि को २१४
तट की न घट भरै ३४८
तुम चाहो सौ कहौ २४०
तू गरवाइ कहा झगरै २८६
तू ऐसी चतुराई ठानै ३४३
तेरी गलीन मैं जा दिन तें २६६
तै न लख्यौ जव १८३
तीरथ भीर मे भूल परी २४८
तोरि मानिनी तै हियौ ३३४
तौ पहिराइ गई चुरियाँ २६८
तोहू पहिचानौं ३३८
'ता' जसुदा कह्यो धेनु १७७
दपति सुख अरु ३२६
दमकै रवि कु डल दामिनी से १८८
दान पै न कान सुने ३४०
दानी नए भए माँगत २२१
दूध दुह्यौ सीरो पर्यौ २२३
दूर ते आइ दुरे ही २६०
दृग दूने खिचे रहै १८५
देखत सेज विछी ही अछी २७२
देखन को सखी नैन भए २३६
देखि कै रास महावन को १८८
देखि गदर हित-साहिबी ३३४
देखिहौ आँखिन सो पिय २३६
देख्यौ रूप अपार २१८
देस विदेस के देखे १६८
दोउ कानन कु डल १६०

दो मन इक होते	३३०
द्रौपदी और गनिका गज	१७९
नन्द की न दासी हम	३४०
नन्द को नन्दन है दुख कंदन	२४८
नद महर कै वगर	३५०
नाह बियोग वढ्यौ रसखानि	१९९
नैन दलालनि चौहटैं	१८४
नौ लख गाय सुनी	३४२
परम चतुर पुनि रसिकवर	३४२
पहिले दधि लै गई गोकुल	२२०
प्यारी की चारु सिंगार	२८२
प्यारी पै जाई कितो	२५४
पीय से तुम मान कर्यौ कत	२८७
पूरब पुन्यनि ते चितई	२६७
पै एतो हूँ हम	३२९
पै मिठास या मार।	३२९
प्रान वही जु रहै रीझि	२३६
प्रीतम नन्दकिसोर	१९६
प्रेम अगम अनुपम	३२०
प्रेम अयनि श्री राधिका	३२०
प्रेम कथानि की बात चलै	२८५
प्रेम निकेतन श्री वनहिं	३३४
प्रेम प्रेम सब कोऊ कहत	३२०
प्रेम प्रेम सब कोऊ कहै	३२७
प्रेम फास मै फंसि	३२८
प्रेम बारुनि छानिकै	३२१
प्रेम मरोरि उठै तबहीं	२६५
प्रेम रूप दर्पन अहो	३२१
प्रेम हरि को रूप है	३२७
फागुन लाग्यो जबते	२७४
फूलत फूल सबै वन	३०२

वृषभान के गेह दिवारी	२५८
वक विलोचन है दुख	२०५
वंसी वजावत आनि कढी	२२८
वजी है वजी रसखानि	२३२
वन वाग तडागन कुंज गली	२३८
वाँक मरोर गई भृकुटीन	२८२
वाँकी धरै कलगी सिर	२१२
वाँकी वड़ी अखियाँ	१८५
वाँकी विलोकनि रगभरी	२२६
वाँके कटाछ चितैवो सिख्यौ	२९२
वागन मे मुरली	२६५
वार ही गोरस वेचि री	२९४
वागन काहे को जाओ	३०१
वात सुनी न कहूँ हरि की	२५९
वाल गुलाव के नीर असीर	३०४
वासर तूं जू कहूँ निकरै	२८३
विधु सागर रस इंदु	३३५
विरहा की जु आँच लगी	३०३
विनु गुन जोवन रूप	३२४
विमल सरल रसखानि	१५८
विहरै पिय प्यारी सनेह	२९८
वेद मूल सव धर्म	३३१
वेनु वजावत आवत है नित	२६३
वैद की औषद खाई	३१८
वैन वही उनको गुन	१५७
वैरिनि तूं वरजी न रहै	२९२
व्याही अनव्याही व्रजमाँही	२९५
व्रज की वनिता सव घरि	२३२
ब्रह्म मैं ढूढ्यो पुरानन गानन	१६३
भई वावरी ढूँढ़त काहि	२६३

मोहन रूप छकी वन	२०२
मोहन सो अटक्यौ मनु	२६३
मोहनी मोहन सो रसखानि	१७५
यह देखि धतूरे के पात	३१८
याही तें सब मुक्ति	३३०
रंग भर्यौ मुस्कात लला	२१६
रसमय स्वाभाविक बिना	३३२
रसखान सुनाय वियोग	३०३
राधा माधव सखिन	३३५
लगर छैलहि गोकुल मैं	२२२
लाय समाधि रहे ब्रह्मादिक	१६१
लाज के लेप चढाइ कै	३१४
लाडली लाल लसैं	१७६
लाल लसैं पगिया सबके	१८६
लीने अबीर भरे पिचका	२७६
लोक की लाज तज्यौ	२०३
लोक वेद मरजाद सब	३२२
लोग कहै ब्रज के	२३४
लाल की आज छटी	१७६
वह गोधन गावत गोधन मैं	२६१
वह घेरनि धेनु अबेर	१८६
वह नन्द को साँवरो छैल	२०१
वह सोई हुती परजंक	३००

सेप सुरेस दिनेस गनेस	१६६
सोई हुती पिय की छतियां	२८६
सोई है रास मैं नैंमुक	२८६
सोहत हे चन्दवा सिर	४१५
स्याम सघन घन घेरि कै	४५३
स्रवन कीरतन दरसनहिं	३३२
स्रुति पुरान आगम	३२३
स्वारथ मूल असुद्ध त्यों	३३२
हरि के सब आधीन	३३१
हेरत कुंज भुजा धरें स्याम	३४७
हेरति बारही बार	२८२
है छल की अप्रतीत की	१७४
श्री मुख यो न बखान	४७६
श्री वृप भान की छान धुजा	२८८
ज्ञान करम रु उपासना	३२३

: १ :

रीतिकाल का परिचय

हिन्दी-साहित्य मे रीतिकाल का आविर्भाव संवत् १७०० से १६०० तक माना जाता है। इस काल मे दो साहित्यिक धाराएँ युगपद् प्रवाहित होती हुई भी एक-दूसरी से नितान्त भिन्न है। एक धारा है रीतिवद्धमार्गी, जो काव्य-शास्त्रीय नियमो का अनुसरण करती है। इस धारा के दो वर्ग है। एक वर्ग तो उन लोगो का है जिनके कवित्व के साथ आचार्यत्व का गठवधन है। केशव, जसवतसिह, चिन्तामणि, देव, भूषण, कुलपति मिश्र आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते है। दूसरा वर्ग उन लोगो का है जिन्होन काव्यशास्त्रीय विवेचन तो नही किया, पर उसके आधार पर अपने ग्रन्थो की रचना की है। विहारी, मधुसूदन, रसलीन, सेनापति आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते है।

इस काल मे जो काव्यशास्त्रीय विवेचन हुआ है, वह प्राय. सस्कृत काव्य-शास्त्र की सीमाओ मे ही आवद्ध रहा है। रीतिकालीन आचार्यो मे, इसी कारण, नगण्य मौलिकता परिलक्षित होती है। जहाँ तक उद्देश्य का प्रश्न है, रीतिकालीन आचार्यो का उद्देश्य सस्कृत-आचार्यो से भिन्न था। सस्कृत का काव्यशास्त्र समय-समय पर रसवाद, अलंकारवाद, रीतिवाद, ध्वनिवाद तथा वक्रोक्तिवाद का समर्थन एवं खडन-मडन प्रस्तुत करता रहा है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य खंडन-मडन के इन पचडो मे नही पडे है। इन आचार्यो में से कुछ आचार्यो ने नायिका-भेद निरूपण किया है, कुछ ने अलकार ग्रथो का निर्माण किया है और कुछ आचार्यो ने इन दोनो का सृजन किया है। नायक-नायिका-भेद के निरूपण का आधार प्राय भानुमिश्र रहे है और अलकारो के लिए अप्पय दीक्षित। संस्कृत के ये दोनो आचार्य भानुमिश्र और अप्पय दीक्षित किसी भी काव्यशास्त्रीय वाद से आवद्ध नही थे। हिन्दी के कुछ आचार्य, जो

सर्वांग निरूपक हैं, आचार्य मम्मट और आचार्य विश्वनाथ के ऋणी हैं। ये दोनों आचार्य काव्यशास्त्रीय वादों एवं सम्प्रदायों से पूर्णतया परिचित थे, पर उन्होंने किसी वाद का वाद की दृष्टि से अनुकरण नहीं किया। हिन्दी के आचार्य अलंकारवाद, रीतिवाद तथा ध्वनिवाद से पूर्णरूपेण परिचित नहीं थे, अतः उनका किसी एक सम्प्रदाय को अपनाकर चलना असम्भव था।

रीतिकाल में जो काव्यशास्त्रीय विवेचन हुआ है, उसे देखकर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये कवि लक्षणबद्ध साहित्य-निर्माण की ओर क्यों प्रवृत्त हुए? क्या इसलिए कि ये हिन्दी साहित्य में स्वतन्त्र काव्यशास्त्र का निर्माण करना चाहते थे, अथवा इसलिए कि ये हिन्दी में संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुवाद प्रस्तुत करना चाहते थे? इन दोनों सम्भावनाओं में से दूसरी सम्भावना अधिक उचित है। क्योंकि यदि इनका उद्देश्य काव्यशास्त्र की रचना करना होता तो ये भी संस्कृत आचार्यों की भाँति किसी काव्यशास्त्रीय नियम के उदाहरण में अपने पूर्ववर्ती कवियों के उदाहरण प्रस्तुत करते। संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार मानकर ही हिन्दी आचार्यों ने अपने विवेचन को प्रस्तुत किया है। फिर भी हिन्दी में ऐसे अनेक आचार्य हुए हैं जिन्होंने हिन्दी की विकासशील प्रवृत्तियों का भी ध्यान रखा है। आचार्य भिखारीदास ने 'तुक' का विवेचन हिन्दी-प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया है। देव और भिखारीदास दोनों ने ही नायिका-भेद में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है और अनेक ऐसी नायिका तथा दूतियों का उल्लेख किया है जो संस्कृत काव्यशास्त्र में नहीं मिलतीं। अब प्रश्न यह हो सकता है कि इन आचार्यों को संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुवाद की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर स्पष्ट है—आचार्यत्व प्राप्ति का प्रलोभन। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले रीतिकालीन आचार्यों में आचार्यत्व की अपेक्षा का प्रतिभा का अंश ही अधिक है।

इसके अतिरिक्त रीतिकाल में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं, जिनमें आचार्यत्व का प्रलोभन जागृत नहीं हुआ। इन्होंने अपनी प्रतिभा को काव्य तक ही सीमित रखा, अर्थात् लक्षण-ग्रन्थों की अपेक्षा लक्ष्य-ग्रन्थों का निर्माण किया। बिहारी आदि कवि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

काव्य-दृष्टि से यदि रीतिकाल का मंथन किया जाए तो इसमें [illegible]

रीतिबद्धमार्गी शाखा की निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती है—

१. शृंगारिकता
२. आलंकारिकता
३. भक्ति और नीति
४ काव्यरूप
५. व्रजभाषा की प्रधानता
६. जीवन-दर्शन का अभाव

१. शृंगारिता—रीतिकाल मे शृंगार-वर्णन की प्रधानता रही है। इसी प्राधान्य के कारण कतिपय विद्वान् इस काल को 'शृंगार काल' कहना उपयुक्त समझते है। शृंगार-रस का जितना सूक्ष्म विवेचन इस काल मे हुआ है, उतना किसी काल मे नही हुआ। इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ है। कवियो का ध्येय अपने आश्रयदाता का मनोरजन करना होता था और मनोरजन के लिए शृगार के अलावा और क्या विषय उपयुक्त हो सकता है। भक्तिकाल मे माधुर्य भक्ति का जो अबाध स्रोत बहा और उसमे जिस शृंगार को अलौकिक रूप दिया गया, वही रीतिकाल मे आकर लौकिक और मासल बन गया। प्रथम दर्शन से लेकर सुरतात तक के चित्रों का इस काल के कवियो ने बडे मनोयोग से चित्रण किया। इसी कारण इनकी दृष्टि मे प्रेम और नारी का स्वस्थ स्वरूप न आ सका। डॉ० भागीरथ मिश्र के शब्दो मे—

'शृंगारिकता के प्रति उनका (रीतिकालीन कवियो का) दृष्टिकोण मुख्यत. भोगपरक था, इसीलिए प्रेम के उच्चतर सोपानो की ओर वे न जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पक्ष भी उनकी दृष्टि मे बहुत कम आए है। उनका विलासोन्मुख जीवन और दर्शन सामान्यत. प्रेम या शृंगार के बाह्य पक्ष शारीरिक आकर्षण तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने वाले उपकरण ही जुटाता रहा। यह प्रवृत्ति नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, ऋतु-वर्णन, अलकार निरूपण सभी जगह देखी जा सकती है।'

२. आलंकारिकता—रीतिकालीन कवियो के काव्य के दो प्रमुख उद्देश्य थे—मनोरंजन और पाडित्य-प्रदर्शन। आलंकारिकता का प्राधान्य इन दोनो ही करणो से रीतिकालीन काव्य मे समाविष्ट हुआ।, यह सच है कि काव्य मे

अलंकारो को उसकी शोभा के अधार पर धर्म माना गया है और यदि उनका समुचित प्रयोग किया जाए तो काव्य प्रभाव एवं भावप्रेषणीयता मे बहुत सीमा तक सहायक सिद्ध होते है। किन्तु रीतिकालीन कवियो ने अलंकारो का प्रयोग प्राय चमत्कार-प्रदर्शन के लिए ही किया, इसलिए इस काल मे श्लेष और यमक जैसे श्रमसाध्य अलकारो का बोलबाला रहा। उन कवियो ने चमत्कार के प्रति अपना इतना गहन प्रलोभन दिखाया है कि यदि रस और चमत्कार मे से इन्हे एक को ग्रहण करने का अवसर आया है तो उन्होने चमत्कार को ही ग्रहण किया है।

३. भक्ति और नीति —जो भक्ति भक्तिकाल मे कवियो का साध्य थी, वही इस काल मे आकर साधन बन गई। इन्होने राधा और कृष्ण को लौकिक धरातल पर ला खडा किया और तब ये साधारण नायिका और नायक बनकर रह गए। भक्ति के प्रति इस काल के कवियो का कोई रुझान नही था और न ये ऐसे वातावरण मे ही थे जो भक्ति के अनुकूल पडता है। फलत राधा और कृष्ण के माध्यम से इन्होने शृ गारिकता की ही अभिव्यक्ति की है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दो मे —

'यह भक्ति भी उनकी शृ गारिकता का अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरणभूमि के रूप मे इनकी रक्षा करती थी। तभी तो ये किसी तरह उसका अचल पकडे हुए थे। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नही है—हो भी नही सकता था, क्योकि भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उसके विलास-जर्जर मन मे इतना नैतिक बल नही था कि भक्तिरस मे अनास्था प्रकट करने का उसका सैद्धातिक निषेध करते। इसलिए रीतकाल के सामाजिक जीवन और काव्य मे भक्ति का आभास अनिवार्यत वर्तमान है और नायक-नायिका के लिए बार-बार हरि और राधिका शब्दो का प्रयोग किया गया है।'

जहाँ तक नीति का सम्बन्ध है, इस विषय मे इन लोगो ने जो कुछ लिखा है, वह यथार्थ और व्यावहारिक है। वस्तुतः इनका वातावरण भक्ति की

अपेक्षा नीति के अधिक निकट था।

४. काव्यरूप—इस काल का वातावरण मुक्तकों के ही अधिक अनुरूप था, क्योंकि मनोरंजन इस काल के काव्य का मुख्य प्रयोजन था। ऐसे वातावरण में किसी प्रबंधकाव्य की आशा करना अनुचित ही है। काव्य का मूल्यांकन उसके चमत्कार में निहित था। अतः कवि मुक्तक पदों में ही अपनी कवि-प्रतिभा और पाण्डित्य प्रदर्शन कर सकते थे। प्रबंध और मुक्तक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल मुक्तक के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्देश करते हुए लिखते हैं—

'मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने आपको भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनमें हृदय-कालिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसीसे वह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, कोई एक रमणीय खंडदृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्र-मुग्ध-सा हो जाता है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं या व्यापारों का एक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्ल जी का यह विवेचन रीतिकालीन काव्यरूप पर भी उतना ही फिट बैठता है जितना स्वतंत्र रूप से।

रीतिकाल में कुछ प्रबंधकाव्य भी लिखे गये हैं, पर मुक्तक काव्यों की तुलना में उनकी संख्या नगण्य ही है।

५. **ब्रजभाषा की प्रधानता**—इस काल में ब्रजभाषा के प्रयोग को ही कवियों ने अधिक महत्त्व दिया और समूचे रीति-कालीन काव्य में इसी भाषा का बोलबाला रहा। इस प्रयोगाधिक्य से ब्रजभाषा को भी नई शक्ति, नई सजीवता एवं नई प्राणवत्ता मिली।

६. **जीवन-दर्शन का अभाव**—रीतिकालीन कवियों के समक्ष यथार्थ जीवन का कोई महत्त्व नहीं था और न जीवन की सम्पूर्णता ही उन्हें वांछित

थी। वे तो जीवन के केवल उसी भाग को ग्रहण करते थे जिसमे कल्पनाओ की उड़ाने और वासना की थिरकनें थी, युवावस्था से युक्त जीवन ही रीतिकालीन कवियो का प्रतिपाद्य था। प्रो० भगीरथ मिश्र के शब्दो मे—

'ऐसे लगता है कि रीति कविता के रचियता यौवन और वसन्त के कवि है। जीवन का फूलता हुआ सुघर रूप ही उन्हें प्रिय है। पतझड, सघर्ष और विनाश सम्भवत स्वत· जीवन मे इतने घोर रूप मे विद्यमान था कि कवि काव्य मे भी उसको उतारकर नैराश्य और निवृत्ति की भावना को जगाना नही चाहता है। वह तो फूलते-फलते जीवन का भ्रमर है। उसने जीवन का एक ही स्वरूप लिया, एक ही पक्ष लिया, यह इस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है, और एकागिता है, परन्तु जिस पक्ष को उसने लिया है उसके चित्रण मे उसने कोई कसर उठा नही रक्खी। उसके समस्त वैभव और विलास के चित्रण मे उसने कलम तोड़ दी है।'

यही कारण है कि रीतिकालीन कवि के पास न तो कोई स्वस्थ जीवन है और न कोई जीवन-दर्शन है।

रीतिकाल की दूसरी काव्यधारा रीतिमुक्त कवियो की है। घनानंद, आलम, वोधा, रसखान आदि इस धारा के प्रमुख कवि है। ये कवि न तो किसी परम्परा से सवद्ध है और न किसी काव्यशास्त्रीय नियमन से। ये भावावेश के कवि है। इनके मन मे जो भी भाव स्फुरित होता है, उसे ये अत्यन्त सवल एव प्रभावोत्पादक अभिव्यंजना के माध्यम से प्रकट करते है। इनके अपने सिद्धात, अपनी रीति और अपनी अभिव्यंजना शैली है। इनको तो वही व्यक्ति समझ सकता है जो व्रजभाषा का अधिकारी विद्वान् होने के साथ-साथ महास्नेही हो। रसखान का सम्वन्ध इसी धारा से है, अतः इस धारा का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

भक्ति के युग के पवित्र ब्रह्मद्रव की धारा को पार कर जव हिन्दी के कवियो ने तनिक सामने की ओर अपनी दृष्टि दौडाई तो हरे-हरे लता-कुजो, कदम्व के घने वृक्षों तथा हरियाली से भरे फूलों वाली निर्मल जल की धारा ने उनके मन को अपनी ओर आकर्षित कर लिया, फिर क्या था, वही उनका मन "श्याम ह्वै समान्यो, यमुना यमुन जल तरंग मे" कवियो के लिए कविता का एक नया सुन्दर मार्ग मिल गया। यहाँ कविता की शैली में एक

नूतन परम्परा का आविष्कार हुआ। आगे चलकर इस नवीन परम्परा को रीतिकाल के नाम से अभिहित किया गया।

हिन्दी-साहित्य का यह रीतिकाल सभी दृष्टियो से ऊँचा और आदर्श माना जाता है। इस युग मे कविता करने की एक ऐसी प्रणाली बन गई, जिसका अवलम्ब सभी परवर्ती कवियो ने लिया। सच पूछा जाए तो भाषा, शैली और विषय तीनो दृष्टियो से यह काल एक ऐसा राजमार्ग बना, जिस पर चलकर तत्कालीन कवियो को कविता करने मे विशेष सुविधाएँ मिली। इस युग मे कविता-पद्धति के हम दो विभिन्न रूप देखते हैं।

एक रीतियुक्त और दूसरा रीतिमुक्त। रीतियुक्त कवियो ने काव्य के लक्षण-ग्रन्थो के आधार पर कविताएँ लिखी पर रीतिमुक्त कवियो ने स्वतन्त्र रूप से अपनी रचनाएँ उपस्थित की। इन कवियो मे से प्रमुख कवि घनानन्द थे। सच पूछा जाए तो इन कवियो की स्थिति रीतिकाल मे उसी प्रकार की थी जिस प्रकार कमल की स्थिति जल मे होती है। सूक्ष्म रूप से इनके काव्य का अध्ययन करने से इस बात की प्रामाणिकता स्पष्ट हो जाती है।

रीतिकालीन कविता का राजमार्ग आद्योपान्त श्रृंगार रस से अभिसिंचित है, इसमे संभवत तो किसीको भी सन्देह नही, पर रीतिमुक्त कवियो ने इस पथ पर जहाँ तक सचरण किया भक्ति के, अगर, धूप, चन्दन से उसे पवित्र कर दिया। इनकी कविता केवल श्रृंगार की वशी-ध्वनि ही नही, अपितु भक्ति की खञ्जडी भी मुखरित सुनाई पडती है। इन्होने श्रृंगार के साथ भक्ति का मिश्रण करके बिहारी के 'श्याम हरित द्युति होय' से कुछ कम कमाल नही किया। दो शब्दो मे यदि हम रीतिमुक्त कवियो को रीति परम्परावादी कवियो मे भक्त कवि मान ले तो अधिक युक्तिसंगत होगा। इस परम्परा के अन्तर्गत घनानन्द, बोधा, आलम, निवाज, ठाकुर आदि प्रमुख है। इस धारा के कवियो के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ या समान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है:—

१. काव्य-रचना का प्रेरणा स्रोत निजी जीवन :—यद्यपि इन कवियों मे से कुछ का संबंध विभिन्न राजाओं के दरबार से भी रहा। किन्तु फिर भी इन्होंने केवल अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के

लिए काव्य-रचना नही की। इनकी काव्य-रचना का प्रेरणा स्रोत इनका वैयक्तिक जीवन ही था। इन्होने अपने जीवन मे प्रेम और विरह की ऐसी अनुभूतियाँ प्राप्त की जिन्होने इनको काव्य-रचना के लिए विवश कर दिया। यह कविता नही लिखते थे, अपितु कविता स्वत ही इनकी अनुभूतियो से प्रेरित होकर उच्छ्‌वसित हो जाती थी। घनानन्द ने लिखा है—

"लोग है लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।"

इसी प्रकार इस धारा से अन्य कवियो ने भी प्रयत्नपूर्वक कविता नही लिखी, अपितु उसमे उनकी भावनाओ के सहज स्वाभाविक उद्‌गार है। इनके बहुत से समकालीन कवि रीति के लक्षणो को ध्यान मे रखकर कविता करते थे, जो इन्हे पसन्द न थी।

ठाकुर ने एसे कवियो की आलोचना करते हुए लिखा है—

"सीखि लीनो मीन मृग खजन, कमल नयन,
सीखि लीनो जस और प्रताप को कहानो है।"

इससे स्पष्ट है कि इस धारा के कवियो ने कविता के वास्तविक महत्व को समझा था। यही कारण है कि इनकी कविता मे बाह्य शरीर के चित्रण के स्थान पर हृदय की सच्ची पुकार मिलती है।

२ **स्वच्छन्द प्रेमः**—जो प्रेम समाज की मर्यादाओ के प्रतिकूल हो, उसे स्वच्छन्द प्रेम का नाम दिया जाता है। हिन्दी के इन कवियो का प्रेम भी स्वच्छन्द प्रेम की कोटि मे आता है। इन कवियो ने जाति, समाज और धर्म की अनुयायिनी ली। घनानन्द की सुजान, बोधा की सुभान, आलम की शेख, आदि नायिकाएँ जाति की मुसलमान थी। ऐसी स्थिति मे इन कवियो को प्रेम के क्षेत्र मे विविध कठिनाइयो का सामना करना पडा। मित्रो का उपहास, समाज की निन्दा और आश्रयदाताओ के विरोध का उन्हे सामना करना पडा। उन्हे जीवन मे अनेक कष्ट सहने पडे, किन्तु फिर भी वे अपने प्रेम-मार्ग से पीछे नही हटे। उनके प्रेम मे सच्चाई और एकोन्मुखता के दर्शन होते है। बोधा के शब्दो मे वे अपनी प्रेयसी के लिए संसार के वैभव को ठुकराने के लिए सहर्ष प्रस्तुत है—

"एक सुभान के आनन पे, कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
जानि मिले तो जहान मिले, नहि जान मिले तो जहान कहाँ को॥"

प्रेम की इसी अनन्यता के कारण इनके शृंगार वर्णन मे स्वच्छता, पवित्रता और गभीरता मिलती है जिसका रीतिवद्ध कवियो मे अभाव मिलता है।

३. सौन्दर्य का सूक्ष्म रूप मे चित्रण जहाँ रीतिबद्ध कवियो ने अपने काव्य मे नारी के स्थूल अंगो की नाप-जोख की है वहाँ इन्होने अपनी प्रेयसियो के सौन्दर्य का वर्णन अत्यंत सूक्ष्म रूप मे किया है। वह उनके नख-शिख का वर्णन न करके उसके स्थान पर सौन्दर्य की अनुभूतिपूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं। घनानन्द के अनुसार—

"अग अंग तरग उठे द्युति की
परि है मनु रूप अवै धर च्वै।"

अर्थात् नायिका के प्रत्येक अंग से सौन्दर्य की लहरे उठ रही हैं। अभी इसका रूप धरती पर चू पडेगा। इसी भाँति वे स्थूल विशेपताओ के स्थान पर सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण करते है। नायिका के होठो की लाली की अपेक्षा इन्हे उसकी मुस्कराहट अधिक आकर्षित करती है। देखिए—

"छवि को सदन, गोरो वदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मृदु मीठी मुस्यानि मे।"

उसकी मीठी मुस्कराहट मे रस टपक रहा है। यह वाक्य हमे छायावादी सौन्दर्य पद्धति का स्मरण कराता है। यहाँ 'मीठी' का प्रयोग विशेपण विपर्यय के रूप मे हुआ है जो कि छायावाद की विशेपता मानी जाती है। इसी प्रकार अन्य कवियो ने भी सौन्दर्य का अंकन सूक्ष्म रूप मे ही किया है।

४. शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का चित्रण— स्वच्छन्द धारा के कवियो को विरह और मिलन दोनो मे प्रेमियो के हृदय के अन्त.स्थो को उद्घाटित करने की ही लगी रहती है। वैसे तो इन्होने शृंगार के दोनो स्थलो का चित्रण किया है, परन्तु इनकी मनोवृत्ति वियोग-पक्ष मे अधिक रमी है। प्रेम को ये लोग आन्तरिक और गोपनीय वस्तु मानते हैं। रीति मार्गीय कवियो की प्रेम-वक्रता के विरुद्ध ये लोग तो यह मानते है—

"अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेक सयानप बांध नही।"

परन्तु सयोग मे वाहरी जगत की प्रधानता होती है और उस समय कवि की अन्तर-वृत्ति भी बहिर्मुखी होती है। ऐसी स्थिति मे प्रेम की सघनता व तर-

लता अभिव्यक्त नही हो पाती । वियोग पक्ष मे कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी होती है । वह प्रेमानुभूति को स्वय प्रेमी बनकर प्रकट करता है । अत: उसकी विरह-उक्तियाँ हृदय के अन्तस्तल से सच्ची प्रकार से प्रकट होती है । वह प्रेम की अतुल गहराइयो तक बैठने को आतुर रहता है । वियोग की अमिट प्यास हृदय को सदा द्रवित रखती है । विरह मे अनुभूति का स्वरूप अधिक तीव्र होता है । अत: उनकी विरह विषयक धारणा अधिक विलक्षण है । वस्तुत इनकी प्रेम तृषा सदा बढती ही रहती है । इनमे विरह का मार्मिक चित्रण है और निजी प्रेम की पीर का प्रदर्शन सच्चे रूप मे मिलता है ।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन कवियो को सूफियो से प्रभावित माना है । उनका यह विश्वास है कि इनके काव्यो मे वर्जित प्रेम-पीर फारसी काव्य-धारा का प्रभाव है जो कि सूफियो के माध्यम से आया है । उनके ही शब्दो मे "इन स्वच्छन्द कवियो ने फारसी काव्यगत वेदना की निवृत्ति के साथ इस प्रेम-पीर का स्वागत किया । इनकी रचना मे वियोग के आधिक्य का कारण यही है । लौकिक पक्ष मे इनका विरह निवेदन फारसी काव्य की वेदना की विवृति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष मे सूफियो की प्रेम-पीर से ।" रीतिमुक्त कवियो ने विरह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नही किया है । वह नायिका को रीतिबद्ध कवियो की तरह इतनी जलती हुई नही दिखाता कि "उस पर गुलाब जल की शीशी औंधा दी जाए तो वह भाप बनकर उड़ जाएगी ।" परन्तु रीतिमुक्त कवि इन सब अन्तर्दशाओ का चित्रण आतरिक शैली से करता है ।

इन्होने कृष्ण के सगुण सलौने रूप को अपने काव्य का विषय बनाया है, अत इन्होने कृष्ण और राधा के सयोग पक्ष के प्रेम की भी बडी मनोहारी और मार्मिक झाँकियाँ प्रस्तुत की है । इनका प्रेम वासना-पकिल न होकर स्वच्छ चमत्कार प्रदर्शन है । सक्षेप मे कहा जा सकता है कि इनका प्रेम बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी अधिक है । उसमे हृदय की मार्मिक सूक्ष्म अनुभूतियो और सौन्दर्य की महीन से महीन बारीकियाँ है । वस्तुत· ये प्रेम हृदय और सौन्दर्य के सच्चे पारखी है ।

५ **भक्ति का स्वरूप**·—इन कवियो ने राधा और कृष्ण की लीलाओ का उन्मुक्त गान किया है, किन्तु इतने भर से इन्हे कृष्णभक्त कवि सूरदास

आदि की कोटि मे नही रखा जा सकता। क्योकि लगभग सभी रीतिकालीन कवियो का यह कथन है—

आगे के सुकवि रीझि है तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमरिन को बहानो है।'

इनको शुद्ध रूप से भक्त कवि नही कहा जा सकता क्योकि इनका प्रमुख उद्देश्य शृंगार-वर्णन था। इसीलिए इन्होने भगवद् भक्ति की ओर से अश्लील एवं असंस्कृत चित्र प्रस्तुत किए। आचार्य विश्वनाथप्रसाद के अनुसार पहले इनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है। दूसरे रूप मे इन्होने स्वच्छन्द रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र मे पदार्पण किया। तीसरे मे इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गईं।"

आगे वह लिखते है कि यदि भक्त कहे बिना सतोष न मिले तो इन्हे उन्मुक्त भक्त कवि मान लिया जा सकता है। इनका भक्त कवियो से पार्थक्य इनकी स्वच्छन्द प्रकृति द्वारा ही हो जाता है। दूसरा इन्होने भक्त कवियो द्वारा त्याज्य विषयों को "प्रिय की वास्तविक कठोरता" आदि का वर्णन विस्तार से किया है। इनकी भक्ति मे साम्प्रदायिकता एव संकीर्णता की भावना नही है। उन्होने अनेक देवी-देवताओ के प्रति उदार आस्था प्रदर्शित की है। रसखान और घनानंद को ही इस भक्त कोटि मे रखा जा सकता है।

६. **प्रकृति चित्रण**—प्राय: सभी कवियो ने हिन्दी-साहित्य के प्रथम तीन कालो मे प्रकृति-चित्रण को उपेक्षित रखा है। परन्तु रीतिकाल मे दृष्टि शृंगारपरक होने के कारण शृंगारिक चित्रण मे अधिक रमी इसलिए उनकी दृष्टि भी इसके वर्णन से दूर हट गई। रीतिकाल मे प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप मे हुआ है। सेनापति की रचना से प्रकृति कही-कही उद्दीपन के बधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। विरह वारीश मे बोधा मे प्रकृति वर्णन कुछ तो शास्त्र बद्ध और कुछ स्वच्छन्द वृतिबद्ध रखा है।

७. **लोक-जीवन का ग्रहण**—स्वच्छन्दमार्गी कवियों ने लोक-जीवन के मगल मोद पक्ष को भी लिया है। प्रसिद्ध पर्व त्यौहारो पर रीतिमुक्त शैली में उत्तम रचनाएँ की है। अखतीज, हरियाली तीज, झूला, वट पूजन आदि अनेक त्यौहार ठाकुर के काव्य मे वर्णित हुए है।

८. **काव्य पद्धति:**—स्वच्छन्द कवियों ने रीति का निर्वाह आरम्भ में स्वीकृत

करके बाद मे त्याग दिया। रीतियुक्त, रीतिबद्ध सभी कवियो मे नेत्र व्यापार सम्बन्धी सभी उक्तियाँ समान रूप से पाई जाती हैं। राजाश्रित कवि ने तो उर्दू या फारसी के काव्यरचना के रकीबो और माशूको की जोड-तोड मे खण्डिता को पेश किया। यहाँ पर ये कुछ रीतिबद्ध कवियो के समीप आ जाते है। स्वच्छन्द कवियो ने खंडिता नायिका के द्योतक चिन्हो के ब्योरे प्रस्तुत न करके उसके हृदय को दिखलाने का प्रयत्न किया। सुरतात या विपरीत रति के कुत्सित चित्र प्राय: इन कवियो मे नही मिलते है। जो मिलते है वह भी उस समय के जब इन कवियो ने इस मैदान प्रवेश किया था। बोधा मे कही-कही बाजारू ढग अवश्य मिलता है।

९. मुक्तक शैली :—वैसे तो समूचे रीतिकाल मे मुक्तक शैली की ही प्रधानता पाई जाती है। परन्तु फिर भी कभी-कभी फुटकल रूप मे प्रबन्ध काव्यो की रचना होती रही। आलम ने "माधवानल' 'कामकदला' 'सुदामा चरित्र' और श्याम स्नेही, बोधा ने 'विरह वारीश' नामक प्रबन्ध काव्य प्रस्तुत किए।

१०. छन्दालंकार :—इस धारा मे अधिकाशत: कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छन्दो का प्रयोग किया गया। यद्यपि बीच-बीच मे छप्पय, व रवै हरिपद आदि छन्दो का प्रयोग किया गया है किन्तु सभी रीति-कवियो की वृत्ति अधिकतर दोहा-सवैया और कवित्त मे रमी है। रीतिमुक्त धारा के कवियो ने अलकारो का प्रयोग अपने प्रकृत रूप मे किया है। इनके यहाँ अलकार साधन रूप मे आए हैं न कि साध्य के रूप मे।

११ भाषा :—भाषा का परिमार्जन और व्यवस्थापन भी इन स्वच्छन्द कवियो के द्वारा ही हुआ है। क्योकि रीतिबद्ध कवियो के पास इतना अवकाश होते हुए भी उन्होने भाषा को व्यवस्थित करने का प्रयास नही किया। मतिराम और पद्माकर को छोडकर दूसरे कवियो मे भाषा की सफाई के दर्शन नही होते। भूषण और देव आदि ने स्वेच्छा से शब्दो को तोडा-मरोडा है। इनकी भाषा मे प्रादेशिकता की पुट भी बनी रही। परन्तु रीतिमुक्त कवियो मे न तो भाषा के अंग भंग की प्रवृत्ति और न ही प्रादेशिकता का ही पुट है। रसखान और घनानन्द ने तो व्रज भाषा का ऐसा प्रयोग किया है जिसमे ब्रज भाषा

का साहित्यिक परिनिष्ठित रूप स्वीकृत और मुहावरो का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अन्त मे हम कह सकते है कि इनकी कविता सच्ची अनुभूति से पूर्ण है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनो की दृष्टि से इनका काव्य प्रौढ़ है। यदि हम इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि घनानन्द को हिन्दी श्रृंगारी कवियो में सर्वश्रेष्ठ मानें तो अनुचित नही होगा।

———

: २ :

रसखान का जीवन-वृत्त

रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्यधारा के विशिष्ट कवि रसखान का न तो जीवन-वृत्त ही निर्विवाद है और न इनकी रचनाएँ। इनके जीवन-वृत्त को जानने की जो सामग्री उपलब्ध है, उसे दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—अन्त: साक्ष्य और वाह्य साक्ष्य। अन्त.साक्ष्य मे वे तथ्य होते है जो सम्बद्ध कवि की रचना अथवा रचनाओ मे मिलते है। वाह्य साक्ष्य मे अन्य विद्वानो द्वारा अन्वेषित तथ्यो का विवेचन होता है। इन्हीं दो आधारो पर हम यहाँ पर रसखान का जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर रहे है।

अन्त:साक्ष्य—जहाँ तक अंत साक्ष्य का सम्बन्ध है, अन्य भक्त-कवियो की भाँति रसखान भी अपने विषय मे प्राय: मौन रहे, चाहे शालीनतावश अथवा राजनीतिक कारणो से। प्रेम-वाटिका मे अपने विषय मे इन्होने निम्नलिखित केवल चार दोहे लिखे है —

१. देखि गदर हित-साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बस की, ठसक छोरि रसखान॥
२ प्रेम-निकेतन श्रीबनहिं, आइ गोवर्धन-धाम।
लह्यौ सरन चित माहिकै, जुगल-सरूप ललाम॥
३. तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी मान।
प्रेमदेव की छबिहि लखि, भए मियाँ रसखान॥
४. विधु सागर रस इन्दु सुभ, बरस सरस रसखान।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिम हरषि बखान॥

इन दोहो से यह ज्ञात होता है कि जब दिल्ली में शासन-लिप्सा के कारण गदर हुआ और दिल्ली नगर श्मशान की भाँति कुरूप एवं भयानक हो गया तो रसखान शाही वश का तुरंत गर्व छोडकर, तथा अपनी मानिनी प्रिया मान की चिन्ता न करते हुए ब्रज मे आए, जहाँ इन्होने सवत् १६७१ मे प्रेमवाटिका की रचना की।

यह कथन समस्या का सरल समाधान नही, वरन् समस्या को और उलझा देने वाला है। इस कथन से उपस्थित समस्यायें ये हैं—

१. रसखान का अभिप्राय किस गदर से है ? यह गदर कब हुआ ?

२. रसखान व्रज मे कब आये ?

३. रसखान की प्रेयसी कौन थी जिसे ये ठुकराकर व्रज आये ?

४. 'प्रेमवाटिका' की रचना करते समय रसखान की आयु क्या थी ?

हिन्दी-विद्वान् उपर्युक्त प्रथम दो प्रश्नो को तो प्राय· उपेक्षित कर गए हैं। "प्रेमवाटिका' के रचना-काल को सर्वाधिक महत्त्व देकर इसके आधार पर रसखान के जो विभिन्न काल निर्णीत किए गए है, वे इस प्रकार है—

१ 'शिवसिह-सरोज' के लेखक शिवसिह ने इनका जन्म सवत् १६३० माना है।

२. 'शिवसिंह-सरोज' के मत को आधार मानकर ही बाबू राधाकृष्णदास ने 'सूरसागर' की भूमिका मे रसखान का जन्म संवत् १६३१ स्वीकार किया है।

३ पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने स्व-सम्पादित 'प्रेमवाटिका' के द्वितीय संस्करण मे रसखान का समय सोलहवी शताब्दी निश्चित किया है।

४. 'रसखान और घनानंद' नामक कृति के सम्पादक बाबू अमीरसिंह ने पं० किशोरीलाल गोस्वामी के मत को ही मान्यता प्रदान की है।

५. मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबधु-विनोद' में रसखान का जन्म संवत् १६१५ में और देहावसान सवत् १६८५ मे माना है।

६ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसखान के केवल कविता काल का उल्लेख किया है जो संवत् १६४० के उपरात है।

७. डॉ० रामकुमार वर्मा ने संवत् १६७१ को ही रसखान का कविता-काल माना है।

ये मत मुख्यत: 'प्रेमवाटिका' के रचना काल पर ही आधृत है।

कुछ विद्वानो ने 'दिल्ली के गदर' के आधार पर रसखान के समय का निर्णय करने के प्रयास किये हैं। श्री अमृतलाल शील ने दिल्ली की इस दुर्घटना को नादिरशाह के भीषण आक्रमण से जोड़कर रसखान का समय गोस्वामी विट्ठलनाथ से १५० वर्ष पश्चात् माना है। पर शील जी अपने मत

की स्थापना करते समय ये भूल गये है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ रसखान के दीक्षा-गुरु थे। हिन्दी के कुछ अन्य विद्वानो की भाँति आचार्य चन्द्रबली पाडेय ने भी जहाँगीर (सलीम) के पुत्र खुसरू (जन्म संवत् १६४२, मरणकाल संवत् १६७६) द्वारा राज्य हडपने की संवत् १६६२-६३ वाली विकल घटना को रसखान द्वारा उल्लिखित "दिल्ली का गदर' स्वीकार किया है। कुछ अन्य विद्वानो ने अकवर की कावुल-विजय को ही दिल्ली का गदर मान लिया है। डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक ने इन सभी मान्यताओ को अमान्य ठहराते हुए इस विषय पर विस्तार से, इतिहास के परिवेश मे, विचार किया है। ये इस घटना को अकवरकालीन मानते हैं—

'ठीक इसी समय सं० १६४२ (२३ जनवरी, १५५६ ई०) मे अपने पुस्तकालय की सीढी से गिर पड़ने से हुमायूँ की अचानक मृत्यु हो गई और अकवर संवत् १६१२ (१४ फरवरी, १५५६ ई०) को गद्दी पर वैठा। उसने पठानो को खदेड-खदेड कर अशक्त कर दिया। और थोडे समय मे सवका दमन कर सूरवंश का नाम मिटा दिया। सिकदरशाह सूर अकवर से प्राणो की भिक्षा पाकर शेष जीवन वगाल मे व्यतीत करने लगा और तीन वर्ष वाद मर गया। महमूदशाह आदिल को, जो चुनारगढ मे था, महमूदखाँ के पुत्र खिजिरखाँ ने अपने पिता के वध का वदला लेने के लिए विहार मे सूरजगढ मे परास्त कर स० १६१७ मे मरवा डाला। इब्राहीमखाँ जो सभल भाग गया था, हेमू से वार-वार पराजित होकर वुन्देलखंड और फिर उडीसा भाग गया और कुछ वर्षो वाद मारा गया। हुमायूँ की मृत्यु का समाचार मिलते ही हेमू मुगल-सेना से लडने गया और सितम्वर १५५६ ई० मे दिल्ली पर अधिकार कर लिया, किन्तु ५ नवम्वर, सन् १५५६ ई० को युद्ध मे तीर की ओट से ऊँचा होने पर वन्दी हुआ और वैरमखाँ द्वारा मारा गया।

उपरोक्त इतिहास-प्रसिद्ध गृहकलह को ही रसखान ने गदर का नाम दिया है। इसी गृहकलह ने दिल्ली को श्मशानवत् कर दिया था। यह राज्यलिप्सा-जन्य परस्पर का कलह रसखान के निकट सम्वधियो के वीच ही हुआ था। वे स्वयं वादशाह-वंश के पठान थे और सम्वधियो मे मारकाट मची देखकर व्याकुल हो गये थे। संवत् १६०२ मे इस कलह का वीजारोपण सलीमशाह द्वारा वडे भाई का राज्य हडपने के कारण हुआ और संवत् १६११-१२ मे

भयंकर रूप से फैल गया, जिसकी लपेट मे सूरवंश के पठानो का सर्वनाश हो गया था। इस लगातार दो वर्षों के युद्ध के कारण दिल्ली नगर श्मशानवत् हो गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि रसखान ने संवत् १६१२ की घटना से त्रस्त होकर अपने प्राण रक्षणार्थ या संसार से एकदम विरक्त होकर दिल्ली छोड़ ब्रजवास किया। इस तथ्य मे सन्देह का कोई कारण नही है।'

इस आधार पर कहा जा सकता है कि रसखान का जन्म संवत् १५९० ई० के आसपास हुआ होगा, क्योकि दिल्ली छोड़ते समय इनकी अवस्था बीस-बाईस वर्ष की होगी।

रसखान ब्रज में कब आये ? यहाँ पर यह प्रश्न भी विचारणीय है। डॉ० याज्ञिक के अनुसार वे संवत् १६१२ मे दिल्ली छोड़कर तुरत ब्रज मे आ गये थे, परन्तु तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो को देखते हुए यह मत शुद्ध प्रतीत नही होता। 'मूल गुसाईं चरित' के अनुसार रसखान ने संवत् १६३४ से १६३७ तक अर्थात् तीन वर्ष तक यमुना तट पर राम-कथा का श्रवण किया। इसका अभिप्राय यह है कि इस समय तक इनमे कृष्णभक्ति का प्रभाव प्रस्फुटित नहीं हुआ था। रसखान के दीक्षा-गुरु श्री विट्ठलनाथ जी का गोलोकवास-काल संवत् १६४२ है। इसका अर्थ यह हुआ कि संवत् १६३७ से १६४२ के अन्तराल मे ही रसखान कृष्णभक्ति में दीक्षित हुए और तभी ये ब्रज में जाकर बसे।

जिस मानवती के मान की उपेक्षा करके रसखान ब्रज मे आकर बसे, वह मानिनी कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर मे रसखान से सम्बद्ध सभी साधन मौन है। कुछ विद्वानो का अनुमान है कि यह मानवती रसखान की कोई प्रेमिका होगी। केवल अनुमान का आधार लेकर इस विषय मे इससे अधिक कुछ नही कहा जा सकता।

रसखान का जन्म-समय निर्धारित कर लेने के उपरात अब यह कहना कठिन नही कि जब इन्होने 'प्रेमवाटिका' की रचना की, तब इनकी आयु ८१ वर्ष की थी, अर्थात् ये काफी लम्बी आयु तक जीवित रहे। अत: अनेक विद्वानो की यह मान्यता भी असंगत प्रतीत नही होती कि ये लगभग ८५ वर्ष तक जीवित रहे। इस आधार पर इनका देहावसान संवत् १६७५ के लगभग माना जा सकता है।

बाह्य साक्ष्य

रसखान से सम्बधित बाह्य साक्ष्य के आधार पर तीन कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेख्य है—दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, मूल गुसाईं चरित और भक्तमाल।

१. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—इस कृति मे वैष्णव-सम्प्रदाय के २५२ प्रमुख कवियो का परिचय है। यद्यपि यह परिचय पूर्ण तथा इतिहास-सगत नही है, फिर भी उसे एकदम निराधार अथवा काल्पनिक नही कहा जा सकता। इसमे ऐसे अनेक तथ्य मिलते हैं जिससे सम्बद्ध कवि के विषय मे बहुत-कुछ ज्ञातव्य बातो का बोध हो जाता है। इस कृति की २१८ वी वार्ता रसखान से सम्बधित है, जो इस प्रकार है--

'अब श्री गुसाई जी के सेवक रसखान पठान दिल्ली मे रहते तिनकी वार्ता। सो दिल्ली मे एक साहूकार रहतो हतो। सो वा साहूकार को बेटा बहुत सुन्दर हतो। वा छोरा सो रसखान को मन बहुत लग गयो। वाही के पाछे फिर्यो करै और वाको झूँठो खाय और आठ पहर वाही की नौकरी करै। पगार कछू लैवे नही, दिन रात वाही मे आसक्त रहै। दूसरे बडी जात के रसखान की निन्दा बहुत-बहुत करते हते। पर रसखान काहू की सुनते नही हते और आठ पहर वा साहूकार के बेटा मे चित्त लग्यो रहतो। एक दिना चार वैस्नव मिलकै भगवत-वार्ता करते हते। करते-करते ऐसी बात निकसी जो प्रभु मे ऐसो चित लगावनो जैसो रसखान को चित्त साहूकार के बेटा मे लग्यौ है। इतने मे रसखान वा रस्ता निकस्ये, तिनने यह बात सुनी। तब रसखान ने कही जो तुम मेरी कहा बात करो हौ। तब वैस्नव ने जो बात हती सो कही। तब रसखान बोले, प्रभु को सरूप दीखै तो चित्त लगाइये। तब वा वैस्नव न श्रीनाथ जी को चित्र दिखायो। सो देखत ही रसखान ने वो चित्र ले लियौ, और मन मे ऐसो संकल्प कर्यौ जो ऐसो सरूप देखनो जब अन्न खाना और उहाँ सूँ घोडा पै बैठकै एक रात मे वृन्दावन आयो और सबरे दिन सब मदिरन मे भेष बदल कै फिर्यो और सब मदिरन मे दरसन किये पर वैसे दरसन नही भये। तब गुपालपुर मे गयो और भेस बदलकै श्रीनाथ जी के दरसन करने कूँ गयो। तब सिघमौरिया ने भगवदिच्छा सूँ वाके चिन्ह बड़ी जातवारे के पहिचाने। तब वाकू धक्का मार निकास दियो,

भीतर पैठन न दियो । सो जइके गोविंदकुंड पर रह्यो । तीन दिन ताईं पर्यो रह्यो । खायवे पीवे की कछू अपेक्षा राखी नाही । तब श्रीनाथ जी ने जानी यह जीव दैवी है और शुद्ध है, और सात्विक है और मेरो भक्त है, या कूँ दरसन देऊँ तो ठीक है । तब श्रीनाथ जी ने दरसन दिए । तब वो उठिकै श्रीनाथ जी कूँ पकरिवे दौर्यो । सो श्रीनाथ जी भाज गये । फेर श्रीनाथ जी ने गुसाईं जी सूँ कही, ये जीव दैवी है और म्लेच्छ योनि कूँ पायो है, जासूँ याके ऊपर कृपा करो, या कूँ सरन लेओ । जहाँ ताईं तुम्हारो सम्बंध जीव कूँ नाही हावै तहाँ ताईं मैं जीव कूँ स्पर्श नाही करत हूँ और वाके हाथ को खाऊँ नाही, जासूँ अब याको अंगीकार करो । तब श्री गुसाईं जी श्रीनाथ जी के बचन सुनिकै गोविंद कुंड पै पधारे और वाकूँ नाम सुनायो और साक्षात् श्रीनाथ जी के दरसन श्री गुसाईं जी के सरूप मे वाकूँ भए । तब श्री गुसाईं जी विनकूँ संग लै पधारे और उत्थापन के दरसन कराए । महाप्रसाद लिवायो । तब रसखान जी श्रीनाथ जी के सरूप मे आसक्त भए । तब रसखान ने अनेक कीर्तन और कविता और दोहा बहुत प्रकार के बनाये । जैसे-जैसे लीला के दरसन विनकूँ भए, वैसे ही बरनन किये । सो वे रसखान श्री गुसाईं जी के ऐसे कृपापात्र हते जिनकूँ चित्र के दरसन करत मात्र ही संसार सूँ चित्त खिंच के श्रीनाथ जी मे लग्यौ । इनके भाग्य की कहा बडाई करनी । वार्ता सम्पूर्ण ।'

२. **मूल गुसाईं चरित** — इस कृति के लेखक बाबा वेणीमाधवदास है । इसमे बताया गया है कि जब 'रामचरितमानस' की रचना पूर्ण हो गई तो सबमे पहले उसे मिथिला के रूपारण्य स्वामी ने अयोध्या मे सुना । तत्पश्चात् स्वामी नंदलाल के शिष्य दयालदास (अथवा दलालदास) ने 'मानस' की प्रतिलिपि करके उसे यमुना-तट पर अपने गुरु नंदलाल और रसखान को सुनाया—

'मिथिला के सुसंत सुजान हते । मिथिलाधिप भाव पगेर हते ।।
सुचि काम रूपारुन स्वामी जुतो । तिहि औसर औध मे आयो हुतो ।।
प्रथमै यह मानस तेई सुने । तिनही अधिकारि गुसाईं गुने ।।
स्वामी नंद (सु) लाल को सिप्य पुनी । तिसु नाम दलाल सुदास गुनी ।।
लिखि के सोइ पोथी स्वठाम गयो । गुरु के ढिग जाइ सुनाम दयो ।।
जमुना-तट पै त्रय वत्सर लौ । रसखानहिं जाइ सुनावत भौ ।।

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि रसखान ने तीन वर्ष तक, अर्थात् संवत् १६३४ से १६३७ तक, यमुना किनारे 'रामचरितमानस' की कथा का श्रवण किया था। चाहे 'मूल गुसाईं चरित' प्रामाणिक हो, अथवा अप्रामाणिक, पर यह कहना अनुपयुक्त नहीं कि इससे रसखान की धर्म के प्रति उदारता का पता चलता है। यद्यपि ये मूलतः कृष्ण-भक्त हैं, पर आम धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति, तुलसी की भाँति, इनकी पूज्य दृष्टि है। तभी तो ये जिस श्रद्धा से कृष्ण की स्तुति करते हैं, उसी श्रद्धा से शिव और गंगा की महिमा का भी गुणगान करते हैं।

३. भक्तमाल—वार्ता-साहित्य में भक्तमाल का जितना संवर्द्धन हुआ है इतना और किसी कृति का नहीं हुआ। यही कारण है कि समय-समय पर अनेक कवियों ने भक्तमाल की रचना की है, जैसे-भक्तमाल प्रसंग, भक्तमाल प्रदीपन, भक्तमाल उत्तरार्द्ध, नवभक्तमाल आदि। भक्तमाल के सर्वप्रथम लेखक नाभादास माने जाते हैं। नाभादासकृत 'भक्तमाल' में संवत् १६४३ तक के कृष्ण-भक्तों का ही उल्लेख है, पर रसखान के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि जब तक रसखान राजनीतिक कारणों से गुप्त जीवन यापन कर रहे होंगे और इसीलिए कृष्ण-भक्तों में इन्हें इतनी ख्याति प्राप्त न हुई होगी कि ये 'भक्तमाल' में स्थान पा सकें। 'भक्तमाल' पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गई हैं। वस्तुतः ये टीकाएँ न होकर ग्रन्थ का संवर्द्धन ही कही जा सकती हैं, क्योंकि जैसे-जैसे कृष्ण-भक्तों की संख्या बढ़ती गई, वैसे ही टीका के नाम पर इस कृति में कृष्ण-भक्तों का समावेश होता गया। संवत् १८४४ में प्रियादास जी के पौत्र वैष्णवदास ने 'भक्तमाल-प्रसंग' नामक टीका के द्वारा इस कृति का संवर्द्धन किया और तब उन्होंने रसखान को भी कृष्ण-भक्तों में सम्मिलित कर लिया। 'भक्तमाल-प्रसंग' में रसखान-विषयक प्रमाण इस प्रकार है—

'पातस्याह न देखी तुरक कंठी पैहरन लगे। तब रसखान बुलाए। देखे तो सौ कंठी नार में परी है। तब पूँछी रसखान, कंठी क्यों राखे है? तब ये बोले—हजरत! काठ की नाव पै पत्थर तिरै याते मैं राखी है। ये काठ है, मैं पत्थर हों। तब कही—भले राखो, परन्तु इतेक तो हिन्दू हू नाहीं राखे। तब रसखान बोल्यो—वे हलके हैं। मैं भारी पत्थर हौं।'

यद्यपि इस कथा का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता, परन्तु यह जरूर मिलता है कि मुगल राजाओ ने कंठी-माला धारण पर रोक लगाई हुई थी। यह रोक गोस्वामी गोकुलनाथ जी के प्रयास से जहाँगीर ने समाप्त की। इस विषय पर तत्कालीन अनेक कवियो की उक्तियाँ मिलती है।

१. 'जयति विठ्ठल सुवन, प्रगट वल्लभ वली,
प्रवल पन करि तिलक माल राखी।'

—हरिराम जी

२ 'माला तिलक न तजी कवहू, परी जदपि पुकार।'

—कल्याणदास

३. 'विट्ठलेस के सपूत गोकुलेस के हुलास,
माल राखि सौ कलेस काहु मे न राख्यो है।'

—प्रसिद्धि कवि

प्रसिद्धि कवि ने तो इस विषय पर एक प्रवधकाव्य की ही रचना कर डाली थी।

इन उक्तियो से यह निष्कर्ष निकालना कठिन नही कि तत्कालीन मुगल उस मुगल को हीन दृष्टि से देखते थे जो हिन्दुओ की भाँति माला-तिलक धारण करता था। यह भी संभव है, हिन्दू भी सार्वजनिक स्थानो पर तिलक और माला धारण करके न जा सकते हैं। इसीलिए तो गोस्वामी गोकुलनाथ जी को उक्त आज्ञा को हटवाने के लिए काफी प्रयत्न करना पडा। इस पृष्ठभूमि मे यह अनुमान लगाना भी असगत नही है कि कठी धारण करने के कारण रसखान को भी अनेक यातनाओं का सामना करना पडा होगा। वे यातनायें चाहे राजा की ओर से हो, या कट्टर पथी मुसलमानो की ओर से।

'भक्तमाल-प्रदीपन' मे रसखान से सम्वद्ध जहाँ अनेक अन्य कथाओ का उल्लेख है, वहाँ यह कठी वाली वार्ता भी पाई जाती है। 'भक्तमाल प्रदीपन' की कथा इस प्रकार है—

'रसखान जी परम भक्त भगवत के हुए। पहिले मुसलमान थे। वगरज तवाफ़ (परिक्रमा की इच्छासे) फाव: (मक्का-स्थित एक मंदिर जिसे मुसलमान ईश्वर का कर मानते हैं।) जो विंदरावन मे पहुँचे तो पहले जन्मो के

सवावो (पुण्यकर्मों का फल) ने जहूर (प्रत्यक्षीकरण) किया। यानी (अर्थात्) व्रिज चंद महाराज ने उस सुरूप सोभायमान व्रिज सुंदर से कि मोर मुकुट सर पर, बनमाला पहने हुए, जेवरात (आभूषण) हरेक उजू (प्रत्येक अंग) मे विराजमान, फूल जा वजा (जहाँ तहाँ) गुँथे हुए, लिवास (पहिचान) जक् बर्क (तडक भडक वाला) का शोभित, एक हाथ मे मुरली और दूसरे हाथ में घडी, गो चराते है, दरसन हुए। वमूजिव (अनुसार) देखने इस रूप माधुरी और दिलरुवा (चितचोर, प्रेमपात्र) के कुछ हालत (दशा) और ही हो गई। इस रूप मे महव (तल्लीन) होकर बेहोश (मूर्च्छित) जमीन पर गिर पडे। मुरशिद (धर्मगुरु, पीर) हमराह (रुहपंथी) था। गश (मूर्च्छा) समझकर दरपए इलाज (चिकित्सा का इच्छुक) हुआ और पुकारा कि आँखे खोलो। रसखान जी ने कहा कि उनको उसी वक्त (समय) सब उलूम (विद्याएँ) व मतालिब (अर्थ समूह, व्याख्याए) जाहिर (व्यक्त) व वातिन (अन्तर्गत, अंतरंग) व शायरी से वह (काव्यकला-सम्पन्न) हो गया था। कवित्त मे उस मनोहर मूर्ति का, जो देखी थी, मान (वर्णन) करके आखिर (अ त मे) कहा कि आँखे क्या खोलू, वह मूर्ति दिल मे वस गई है। मुरशिद (पीर) ने फिर कहा कि कावे (मक्का-स्थित एक मदिर) को चलो। रसखान जी ने जवाव दिया कि कैसा काव और कैसा किव्ल (मक्का का वह स्थान जहाँ काला पत्थर स्थापित है और जिसकी ओर मुँह कर नमाज पढ़ी जाती है) जो है सो सब जहाँ मौजूद (उपलब्ध) है। अव मैं कहाँ जाता हूँ ? व्रिज का हो चुका। और एक कवित्त मे बयान (वर्णन) किया कि अगर, आदमी जिस्म (शरीर) मुझको मिलेगा तो व्रिज के ग्वाले और लोगो मे रहूँगा और अगर चरिन्द (पशु) हुआ तो नद वावा की गौ वछडो मे और अगर सग (पत्थर) हुआ तो गिर्राज (गिरिराज गोवर्धन) का और अगर परंद हुआ तो व्रिज के दरखतो (वृक्षो) का। मुरशिद (पीर) को इन कलामात (वचनो) से ताजुव्व (आश्चय) हुआ और चाहा कि रथ पर डालकर जबदस्ती (वल पूर्वक) ले जाऊँ। रसखान जी भागकर वन मे जा छिपे और बिरन्दावन मे वास करके हजारह: (सहस्रो) कवित्त विरन्दावन के, व सुभाव (स्वभाव, गुण) व शोभा प्रिया-प्रियतम के तसनीफ (पुस्तक लिखकर) भेट किए। और लिवास वैस्नवी धारन किया। माला

कसीर (अधिक, प्रचुर) पहिना करते थे। किसी ने पूछा कि दो माला ही काफी (पर्याप्त) है, इस कदर (अत्यधिक) कसरत (बाहुल्य, प्रचुरता) की क्या जरूरत (आवश्यकता) है ? जवाब दिया कि माला असखास मिस्ले संग को (पत्थर जैसे व्यक्तियो को) ससार समंदर (सागर) से पार उतार देती है। सो जो शख्स (व्यक्ति) मिस्ल (समन) छोटे पत्थर के है, उसको तो एक-दो माला काफी (पर्याप्त) है, और मै मिस्ल संग कला (बडे पत्थर के समान) हूं, मुझको बहुत माला रखना वाजिब (उचित) है।

इस कथा मे कोई ऐतिहासिक तथ्य नही, केवल रसखान से सम्बद्ध अनुश्रुतियो को दोहरा दिया गया है और वह भी श्रद्धा के साथ।

भारतेन्दु जी ने अपने भक्तमाल उत्तरार्द्ध मे रसखान के साथ अन्य मुसलमान हिन्दी कवियो की ओर दृष्टिपात किया है और उनकी हिन्दी-सेवा से भाव-विभोर होकर कह उठे है—

'इन मुसलमान हरिजनन पैं, कोटिन हिन्दू वारिए।'

राधाचरण गोस्वामी ने अपने 'नवभक्तमाल' मे रसखान से सम्बन्धित एक छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार है—

'दिल्ली नगर निवास, बादसा बश बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो, भरो मन प्रेम-सुधाकर।
श्री गोबरधन आइ, जबै, दरसन नहि पाए।
टेढे मेढे बचन रचन निरभय ह्वै गाए।
तब आप आइ सु मनाइ, करि सुस्रूषा मेहमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथ साथ रसखान की।।'

गोस्वामी जी का यह विवरण नाभादासकृत 'भक्तमाल' पर ही आधारित है।

उपर्युक्त वार्ता-साहित्य से रसखान के किसी ऐतिहासिक विवरण पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश नही पडता, वरन् इनमे लेखको की कृष्णभक्त-कवि रसखान के प्रति श्रद्धाजलियाँ भी उपलब्ध होती हैं। इसका तात्पर्य यह नही है कि इनमे वर्णित तथ्य अथवा घटनाएँ निरी काल्पनिक है। इनसे रसखान के विषय मे जो निष्कर्ष निकलता है, वह यही है कि इनका प्रारंभिक

प्रेम ठोस भौतिक था, किन्तु बाद मे वह ईश्वर-प्रेम मे परिणत हो गया और कृष्ण-भक्त कवियो मे रसखान का विशिष्ट स्थान है।

जन्म-स्थान

रसखान के जन्म-स्थान के विषय मे भी दो मत मिलते है। 'शिवसिंह-सरोज' मे इन्हे जिला हरदोई के पिहानी जन्म-स्थान का बताया गया है और इन्होने 'प्रेम-वाटिका' मे अपना जन्म-स्थान दिल्ली बताया है—

'देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली-नगर मसान।
छिनहिं बादसा बस की, ठसक छेंदि रसखान॥'

अब यह देखना है कि इनमे कौन सा मत सगत है।

डॉ० याज्ञिक शिवसिंह-सरोजकार के मत को असगत मानते हुए लिखते है कि पिहानी की बस्ती को हुमायूँ-अकबर ने सवत् १६१२ के बाद बसाया था। इस कारण रसखान के जन्म के समय पिहानी का कोई अस्तित्व ही नही था। हाँ, रसखान का शिष्य कादिरबख्श वहाँ रहा हो, इसकी सभावना हो सकती है और यह भी सभावना हो सकती है कि भूल से शिष्य के निवास-स्थान को ही गुरु का जन्म-स्थान समझ लिया हो।

जहाँ तक दिल्ली का सम्बध है, रसखान ने दिल्ली को अपना निवास-स्थान अवश्य बताया है, पर उसे जन्म-स्थान नही बताया। अत निर्विवाद रूप से यह भी तो नही कहा जा सकता कि दिल्ली ही इनका जन्म-स्थान है, किन्तु रसखान के जीवन पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि इनका भक्त-पूर्व जीवन दिल्ली मे ही बीता। इसलिए यह संभावना की जा सकती है कि इनका जन्म भी दिल्ली मे ही हुआ होगा।

निष्कर्ष

अब तक के विवेचन का निष्कर्ष यह है कि रसखान का जन्म सवत् १५९० के लगभग दिल्ली मे हुआ। इनका सम्बन्ध तत्कालीन शाही वश से था, किन्तु जब शाही वश का पतन हुआ और दिल्ली उजड गई तो ये सवत् १५१२ के लगभग दिल्ली को छोडकर व्रज मे आ गये और वहाँ कृष्ण-भक्ति मे तल्लीन रहने लगे।

कहते है, कि प्रारभ मे इनका प्रेम ठोस भौतिक था, अर्थात् ये एक साहूकार के लडके पर आसक्त थे, पर सयोग से इनके मन को ठेस लगी और इनका

: ३ :

रसखान की रचनाएँ

रसखान, अन्य कृष्णभक्त-कवियो की भांति, मूलत भक्त थे। कविता इनका कर्म नही, वरन् भावाभिव्यक्ति का एक साधन मात्र था। इन्हें जब भी भावावेश हुआ, वह सवैया या कवित्त के माध्यम से फूट पडा। इनके छदों की संख्या कितनी है ? इस प्रश्न का निर्विवाद उत्तर देना असम्भव है। तुलसीदास जी के 'भक्तमाल प्रदीपन' के अनुसार इन्होने सहस्त्रो कवित्तो की रचना की।[1] पर अब रसखान के नाम से प्राप्त होने वाले असदिग्ध और संग्दिग्ध छदो को मिलाकर कुल २३४ छद प्राप्त हुए है। प्रस्तुत सकलन मे इन छंदो को पाँच भागो मे विभाजित किया गया है—

१.	सुजान-रसखान	२५५ छंद
२.	प्रेम-वाटिका	५३ छंद
३.	दान-लीला	११ छद
४.	स्फुट-छद	५ छंद
५.	सदिग्ध-छद	१० छंद

इन भागो का क्रमश. परिचय निम्नलिखित है।

सुजान-रसखान

सुजान-रसखान मे सकलित छदो का विषय कृष्ण-भक्ति के विविध पहलुओ से सम्बद्ध है। इन छदो को निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत विभाजित किया गया है—

१ भक्ति-भावना, २. कृष्ण का अलौकिकत्व, ३. अनन्यभाव, ४ मिलन

१. रसखान जी भागकर वन में जा छिपे और विरन्दावन मे वास करके हजारह, (सहस्त्रो) कवित विरन्दावन के, व सुभाव (स्वभाव, गुण) व शोभा प्रिया-प्रियतम के तसनीफ (पुस्तक लिखकर) भेंट किये।

५ बाललीला, ६. रूप-माधुरी, ७. प्रेम-लीला, ८. वंक-विलोचन, ९ मुसकान-माधुरी, १०. कृष्ण-सौन्दर्य, ११. रूप-प्रभाव, १२ कुंज-लीला, १३. नटखट कृष्ण, १४. मुरली-प्रभाव, १५ कालिय-दमन, १६ चीर-हरण, १७ प्रेमासक्ति, १८ प्रेम-बन्धन, १९. प्रेम-वेदना, २० रासलीला, २१. फागलीला, २२. राधा-सौन्दैर्य, २३. मानवती राधा, २४. सखी-शिक्षा, २५. संयोग-वर्णन, २६. वियोग-वर्णन, २७. सपत्न-भाव, २८. कुवलयापीड-भाव, २९. उद्धव-उपदेश, ३०. ब्रज-प्रेम, ३१ गंगा-महिमा, ३२. शिव-महिमा।

१ **भक्ति-भावना**—यो तो रसखान के सभी छंद भक्ति-भावना से ओतप्रोत है, किन्तु इस शीर्षक के अन्तर्गत रक्खे गये छदो की भक्ति-भावना मे एक विशेषता यह है कि इसमे कवि प्रत्यक्ष रूप से भक्त के रूप मे परिलक्षित होता है। वह कृष्ण तथा उनकी जन्मभूमि ब्रज के प्रति अनन्य प्रेम प्रदर्शित करता हुआ कहता है कि यदि मुझे मनुष्य को योनि मिले तो मै वही मनुष्य बन सकूँ जो ब्रज के गोकुल गाँव मे निवास कर सकूँ, यदि पशु योनि मिले तो नन्द की गाय बनूँ, यदि पत्थर का जन्म मिले तो गोवर्धन पर्वत की शिला बनूँ और यदि पक्षी की योनि मिले तो यमुना-तट पर उगे हुए कदम्ब वृक्ष की डालो पर बैठकर सानन्द चहचहाता रहूँ। रसखान अपने शारीरिक अंगो की सार्थकता भी इसी मे मानते है कि वे ईश्वरोनन्मुख हो। इसीलिए ये रसना की सार्थकता कृष्ण-जाप मे, हाथो की कुंज-कुटीरो की सफाई करने मे ही मानते है। अपने आराध्य देव कृष्ण की जन्मभूमि व्रज से इन्हें इतना प्रेम है कि उसके एक-एक कण पर ये समस्त सिद्धियो और समृद्धियो को न्योछावर करने की क्षमता रखते है। भक्त को अपने भगवान पर दृढ एव अटल विश्वास होता है। उसकी सरक्षता प्राप्त करके वह स्वय को हर प्रकार के सकटो से मुक्त मानता है। इसीलिए तो अपने माखन चाखनहारे के संरक्षण मे ये किसी चुगल और लवार की चिन्ता नही करते। रसखान अपने प्रिय के रूप मे उसी प्रकार एकाकार है जिस प्रकार गोपियाँ थी। उसके प्राण सदैव राधा और कृष्ण के सरस एव नूतन प्रेम से सपृक्त है।

२. **कृष्ण का अलौकिकत्व**—कृष्णभक्त-कवियो ने कृष्ण को साकार मानकर उसके माधुर्य रूप की भक्ति की है, पर वे अपनी कविताओ मे यथावसर

उसके अलौकिकत्व का प्रदर्शन भी करते रहे हैं। कृष्णकाव्य की यह प्रमुख विशेषता है। सूरदास ने विस्तारपूर्वक कृष्ण के अलौकिकत्व का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए यह पद प्रस्तुत है—

'चरन गहे अंगुठा मुख मेलत।
नंद-घरनि गावति, हलरावति, पलना परिहरि खेलत।
जे चरनारबिंद श्री-भूषन, उर तैं नैंकु न टारति।
देखौं धौं का रस भरननि कों, सुर-मुनि करत बिषाद।
सो रस है मोहूँ कौं दुरलभ, तातैं लेत सवाद।
उछरत सिन्धु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ।
बढ्यौ वृच्छ बट सुर अकुलाने, गगन भयौ उत्पात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि, जहाँ-तहाँ आघात।
करुना करी, छाँडि पग दीन्हौं, जानि सुरन मन सस।
सूरदास प्रभु असुर-निकन्दन, दुष्टनि कैं उर गस॥'

स्वच्छन्द-काव्यधारा के कवि भी इस प्रवृत्ति से उन्मुक्त नहीं हो सके हैं। घनानंद कृष्ण के अलौकिकत्व का स्पष्ट संकेत देते हुए लिखते हैं—

'तोहि सब गावैं एक तोही को बतावैं वेद,
पावैं फल ध्यावें जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत में नाय जान राय रह्यौ परि रे।
एते गुन लाय हाय छाय घनआनंद यौं,
कैधों मोहि दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासों,
दई गयौ तू हूँ निरदई और ढरि रे॥'

रसखान ने भी इस प्रवृत्ति का पालन किया है। कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करने वाले इनके आठ छंद उपलब्ध होते हैं जिनमें बताया गया है कि जिस कृष्ण का जप शंकर जैसे महादेव करते हैं, जिसका ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म में वृद्धि करते हैं, जिस पर देव, किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणों को न्योछावर करके सजीवता प्राप्त

करती है, जिसके गुणो का गान शेषनाग, गणेश, शिव, सूर्य, इन्द्र आदि निरन्तर करते रहते है, वेद जिसे अनादि, अनंत, अखड, अछेद्य, अभेद्य आदि विशेषणो से विभूषित करते है, योगी, यति, तपस्वी जिसके लिए निरन्तर समाधि लगाये रहते है, उसी कृष्ण को अहीर की छोकरियाँ थोडी-सी छाछ के लिए नचाती है। इस प्रकार रसखान ने पूर्ण स्पष्टता के साथ कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन किया है।

३. **अनन्य भाव**—भक्त का अपने आराध्यदेव के प्रति अनन्य भाव होता है, अर्थात् उसके लिए उसका आराध्य ही सर्वोपरि तथा सर्वश्रेष्ठ है। उसकी इच्छा केवल उसे ही प्राप्त करने की होती है। उसके अतिरिक्त अन्य सारी वस्तुएँ उसकी दृष्टि मे नगण्य है, भले ही वे कितने ही महत्त्व की क्यो न हो। सूरदास ने भी कृष्ण के प्रति अपने अनन्य भाव की भक्ति को व्यक्त करत हुए कहा है कि कृष्ण को छोडकर अन्य देवो की भक्ति करना कामधेनु को छोड़कर छेरी को दुहना है, अथवा परम गगा को छोडकर जलप्राप्ति के लिए अन्यत्र कूप खोदना है। रसखान ने भी इसी अनन्य भाव को व्यक्त करते हुए कहा है कि चाहे कोई शेप, सुरेश, दिनेश, गणेश, प्रजेश, महेश, भवानी की अराधना करके अपने मनोरथो को पूर्ण कर ले, चाहे कोई लक्ष्मी की भक्ति करके बहुत सारा धन एकत्र कर ले, चाहे तीनो लोक रहे या नष्ट हो जाये, पर इनका एकमात्र आधार कृष्ण है और कृष्ण को छोडकर ये ससार के और किसी पदार्थ की अभिलाषा नही करते। इस अनन्य भाव के पीछे कृष्ण की भक्त-वत्सलता मुखरित है। जो कृष्ण द्रौपदी, गणिका, गृद्ध (जटायु), अजामिल, अहिल्याबाई, प्रह्लाद आदि भक्तो का उद्धार करने वाले है, उनकी शरण मे पहुँचकर आवागमन के दु खो से छूट जाना स्वाभाविक ही है। कृष्ण अपने भक्तो का निरतर ध्यान रखते है और उनकी रक्षा के लिए सदैव सन्नद्ध रहते है, अत किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसे कृष्ण ही सच्ची सम्पत्ति है, ससार का ऐश्वर्य तो दुखद और नश्वर है। कोई भी मनुष्य, चाहे वह कितना ही वैभव-सम्पन्न क्यो न हो, पर यदि वह कृष्ण-भक्ति से विमुख है तो उसकी सम्पूर्ण सम्पन्नता व्यर्थ और निस्सार है।

४. **मिलन**—इस शीर्षक से सम्बन्धित छदो के अन्तर्गत रसखान ने राधा-

कृष्ण के मिलन का वर्णन किया है। वैष्णव भक्ति-पद्धति के अनुसार कृष्ण भगवान है और राधा उनकी शक्ति। बिना शक्ति के भगवान के ईश्वरत्व की सम्पूर्णता कुंठित रहती है और कृष्ण को सम्पूण ईश्वर बनाने के लिए उनका राधा से मिलन अनिवार्य है। सभी कृष्णभक्त-कवियो ने राधा-कृष्ण-मिलन का वर्णन किया है। रसखान ने भी तीन सवैयो मे इस परम्परा का निर्वाह किया है।

५. **बाललीला**—हिन्दी में प्रचलित कृष्ण काव्यधारा के अन्तर्गत कृष्ण के माधुर्य रूप का ही मुख्यतया वर्णन किया गया है। अत इनके काव्यो मे बाल-लीला की प्रमुखता है। सूरदास तो इस क्षेत्र के सम्राट् ही माने जाते है। रस-खान ने भी कृष्ण की बाललीला से सम्बद्ध कुछ छद लिखे है, पर ये सख्या में बहुत ही कम है। प्रस्तुत संकलन मे इस विषय के केवल चार छद है, और अभी तक एतद्विषयक ये ही छद प्राप्त भी हुए है। पहले छद मे कृष्ण की छठी के उत्सव का वर्णन है। दूसरे छद मे कृष्ण की उस अवस्था का वर्णन है, जब कृष्ण कुछ बडे हो जाते है और पैरो चलने लगते हैं। यशोदा जी उनके साथ खिलवाड करती है और 'ता' शब्द कहकर गौओ के पीछे छिप जाती है। कृष्ण उन्हे ढूंढते हैं, पर जब यशोदा जी उन्हे नही मिलती तो वे उठकर पृथ्वी पर लेट जाते है। तब यशोदा जी उन्हे गोद मे उठा लेती है। तीसरे छद मे कृष्ण की सज्जा का वर्णन है। यशोदा जी उनके शरीर मे तेल लगाती है, आँखो मे अंजन लगाती हैं और साथ ही डिठौना भी लगा देती है ताकि उसके लाडले पुत्र को किसी की नजर न लग जाये। चौथे सवैया मे कृष्ण की उस अवस्था का वर्णन है जब वे काफी बड़े होकर खेलने के लिए घर से बाहर निकलने लगते है। उनका शरीर धूल से सना हुआ है। वे खेलते और खाते हुए अपने प्रागण मे घूम रहे है कि अचानक एक कौवा आता है और उनके हाथ से माखन तथा रोटी छीनकर ले जाता है।

६. **रूप-माधुरी**—'रूप-माधुरी' शीर्षक के अन्तर्गत उन छदो का वर्णन है जिनमे कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। इस वर्णन मे कोई विशेषता अथवा मौलिकता नही है, वरन् जैसा वणन अन्य कृष्ण-भक्त-कवियो ने किया है, वैसा ही रसखान ने भी किया है। हृदय पर सुशोभित मोतियो की माला, लटकती हुई घुंघराली अलकें, सिर पर मुकुट, होठो पर मुरली, मस्तक

पर गोरज, वाणी मे माधुर्य आदि। कृष्ण की शोभा को बढ़ाने वाली प्रायः उन्ही क्रियाओ का वर्णन किया गया है, जो कृष्ण-काव्य मे परम्परागत रूप से वर्णित होती आई है। कुंजो से निकलना, अन्य गोपियो के साथ छेड़खानी करना, कदम्ब वृक्ष पर चढकर बॉसुरी वजाना, कटाक्ष करना, मुस्कराना, आदि क्रियाएँ कृष्ण-काव्य की चिर-परिचित क्रियाएँ है। रसखान का यह वणन सश्लिष्ट है, अर्थात् इन्होने कृष्ण-सौन्दर्य का वर्णन प्रत्येक अग अथवा क्रिया को अलग-अलग लेकर नही किया है, वरन् सबका एक साथ वर्णन किया है।

७. प्रेम-लीला—प्रेम-लीला के अन्तर्गत वस्तुत कृष्ण के सौन्दर्य के द्वारा आकृष्ट गोपियो की प्रेमानुभूति का वर्णन है। प्रत्येक गोपी अपनी सखी से उसी सौन्दर्यजन्य प्रभाव का वर्णन करती है। यदि कोई गोपी अधीर होकर कदम्ब और करील के वृक्षो से पूछती है कि तुम्हारे साथ रहने वाला कृष्ण कहाँ गया तो एक गोपी अपनी सखी से अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण की भौहे भरी हुई थी, पलके सुन्दर थीं, अधर लाल थे। उसके कानो मे कुडल थे जो हिल-डुलकर कृष्ण के कपोलो की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे। वह मुस्कराता हुआ कुंजो मे से निकला और उसे देखते ही गोपियाँ मूर्च्छित हो गईं अर्थात् अपनी सुधि-बुधि भूल गईं। दही का मटका सिर से गिरकर फूट गया। कही अवसर पाकर कृष्ण गोपियों को फेर लेते है। उनका मटके फोड देते है और अपनी मधुर वाणी तथा आकषक क्रियाओ से उन्हे मुग्ध करके अपने वश मे कर लेते है। कृष्ण के इस अपार सौन्दर्य का प्रभाव गोपियों पर इतना अधिक पडता है कि वे उसे देखकर लोक और कुल की मर्यादा को तिलाजलि दे देती है और जब भी कृष्ण को देखती है, वे उसकी ओर इस प्रकार दौडती है जैसे नदी निर्बाध गति से सागर की ओर भागती है। उसके रूप-सौन्दर्य का ध्यान आने से ही वे स्वयं को भूल जाती है। सास के त्रासो की, ननद के तीक्ष्ण व्यग्यो की उन्हे कोई चिन्ता नही रह जाती। कहने का भाव यह है कि वे पूर्णतया कृष्ण के हाथो बिक जाती है।

८. बंक-विलोचन—प्रेम-व्यापार मे वक्र दृष्टि का महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसीलिए साहित्य मे इस प्रकार की दृष्टि का और इसके-द्वारा उत्पन्न प्रभाव

का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। गोपियां कृष्ण के सौन्दर्य से ही नहीं वरन् उनकी वक्र दृष्टि से भी उन्हे आकुल किये रहती है। जिस गोपी ने भी कृष्ण की दृष्टि को देख लिया, वह फिर कृष्ण से पृथक न हो सकी, भले ही उसे लोक-लाज को तिलाजलि देनी पडी, सास और ननद के त्रासो को सहना पड़ा। कृष्ण की दृष्टि मे ही कुछ ऐसा जादू है कि वह एक बार भी जिस गोपी की ओर देख लेता है, उसी के मन को चुरा लेता है।

६. मुसकान माधुरी—प्रेम के व्यापार मे जितना महत्त्व वक्र-विलोचन का है, उतना ही मुसकान के माधुर्य का भी है। गोपियो को वशीभूत करने वाले जहां कृष्ण के अन्य गुण है, वहां मुसकान का माधुर्य भी है। जिसने भी इस मुसकान को देख लिया, वह फिर उसके दिल मे ऐसी गडी कि निकाले से नही निकली। उस मुसकान का कोई मूल्य भी तो नही, संसार के समस्त रत्नागार इस पर न्यौछावर किये जा सकते है। खरिक मे जाकर कृष्ण की मुसकान देखने वाली गोपी की जो दशा होती है, उसका वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! अभी-अभी वह गोशाला मे गाय का दूध निकालने के लिए गई थी, लेकिन वह अपने हाथ के दूध के पात्र को फेंककर पागल-सी होकर वापस आ गई है। उसकी दशा को देखकर कोई गोपी तो यह कहती है कि उसे किसी ने छल लिया है, कोई कहती है कि वह स्तब्ध हो गई है, कोई कहती है कि वह डर गई है, कोई कहती है कि वह अंधी हो गई है। उसको अच्छा करने के लिए सास अनेक प्रकार के व्रतो को करने का संकल्प करती है, ननद दौड-दौड़कर सयानो को बोलकर लाती है। सारी सखियां उसकी मूर्छा को पहचानकर हंसती है और कहती है कि इसने आनंद-सागर कृष्ण की वही मुस्कराहट को देख लिया है और यह उसी का प्रभाव है। एक अन्य गोपी अपनी सखी से कृष्ण की मुसक्यान के प्रभाव का वर्णन इन शब्दो मे करती है कि हे सखि! वह कामदेव के समान मधुर वाणी बोलता है। उसके शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है। उसके शरीर की कांति इस प्रकार चमकती और दमकती है, मानो काले बादलो मे बिजली चमक रही हो। उसके मुख का सौन्दर्य और मुसकान कुलांगनाओ की लज्जा को नष्ट करने मे पूर्णतया समर्थ है।

इस प्रकार गिने-चुने छदो मे रसखान ने कृष्ण की मुसकान का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है।

१० कृष्ण-सौन्दर्य—प्रत्येक कृष्णभक्त-कवि ने कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया है, पर यह वर्णन इतना अधिक परम्परावद्ध हो गया है और सूर ने इसका इतने अधिक विस्तार से वर्णन कर दिया है कि आगे के कवियो को नवीनता के लिए गु जायश ही नही रह गई। कृष्ण-सौन्दर्य के उपकरण प्राय: रूढिबद्ध हो गये है—मोर-मुकुट, वैजन्तीमाला, कु डल, पीताम्बर, वक्रदृष्टि, मधुर मुस्कान आदि। रसखान भी इस परम्परा से बाहर नही निकल पाये है। इन्होने कृष्ण-सौन्दर्य का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है . कृष्ण के सिर पर मोरपखो का मुकुट और कानो मे कु डल सुशोभित है। उनके केशो की शोभा उनके कपोलो पर बिखरी हुई है। वह दु ख का हरण करनेवाली तथा मन को मोहनेवाली है। उनकी वक्रदृष्टि आनद देनेवाली और विशाल है। उनका श्याम शरीर नवीन विशाल बादल के समान है जिस पर पीले वस्त्र की शोभा बहुत ही प्रभावशाली है।

जिस प्रकार कृष्ण के अग और आभरण रूढिवद्ध हो गये हैं, उसी प्रकार उनकी क्रियाएँ परम्परा से बँध गई है गौओ का चराना, गोधन गाना, बाँसुरी बजाना, वक्र दृष्टि से देखना, मुस्कराकर चलना आदि। इन सौन्दर्यवर्द्धक क्रियाओ के अन्तर्गत भी रसखान अधिकाशत. परम्परावादी ही रहे है।

११ रूप-प्रभाव—कृष्ण के अमित अग-सौन्दर्य को तथा उनकी क्रियाओ के माधुर्य को देखकर कोई भी व्रजवासी ऐसा नही है जो उनसे अप्रभावित रह सकता हे, विशेपत. गोपियाँ तो एकदम अपनी सुधि-बुधि भूल जाती है। कृष्ण के रूप-प्रभाव का उपयोग सयोग और वियोग दोनो ही स्थितियो मे किया गया है। सयोग मे गोपियाँ उनके रूप को देखते ही किकर्त्तव्यविमूढ वन जाती हे और अपने होश-हवाश गँवा बैठती है। अपनी प्रेमदशा का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती हे कि हे सखि। कृष्ण का यौवन कामदेव की शोभा से भरा हुआ है। उनकी मनोहर मूर्ति सदैव आँखो मे समाई रहती है। उन्होने मुझसे जो प्रेमभरी बाते की थी, वे मन की मन मे ही रह गई है, अर्थात् मैं उन्हे किसी से कह नही पाती। प्रेम की घाते हृदय के बीच मे अडी हुई है। कृष्ण के वियोग मे मेरी आँखो मे सारी रात आँसुओ की लडी रहती है, अर्थात् मै

रातभर कृष्ण का स्मरण करके रोती रहती हूँ। किसी-किसी गोपी पर कृष्ण के रूप का प्रभाव इतना पडा है कि वह विना मोल ही कृष्ण के हाथो बिक गई है। उसके लिए नदपुत्र कृष्ण कामदेव से भी अधिक मनोहर है, उनकी वक्रदृष्टि प्रेम के पाम मे बाँधनेवाली है, उनके मुख की सुन्दरता से करोडो चन्द्रमा पराजित हो गये है। इसीलिए कोई गोपी तो अपनी सखी के सामने अपनी आँखे इसलिए नही खोलती कि उनमे कृष्ण की छवि बसी हुई है। अत जब भी गोपियाँ कृष्ण को देखती हैं, उनके नेत्र बरबस उनकी ओर दौड पडते हैं, ठीक बिहारी की नायिका के उन नेत्रों के समान जो लाज-लगाम का शासन नही मानते। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कतिपय छदो मे ही रसखान ने रूप-प्रभाव का जो वर्णन कर दिया है, वह हृदय को प्रभावित करने के लिए काफी है।

१२ कुंज लीला—कुंजलीला का वर्णन भी परम्परागत है। कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! आज प्रात.काल जब मैं कुंजगली मे निकली तो अचानक कृष्ण से भेट हो गई। कृष्ण के मुख की मुस्कान मे मेरा मन इतना डूब गया कि उसकी छवि पर से हटाने से भी नही हटा। उस मुस्कान ने मेरे नयनो को बाँध लिया, चित्त को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फदा डाल दिया। इस प्रकार के वर्णन मे कोई नवीनता तथा मौलिकता नही है।

१३ नटखट कृष्ण—इस शीर्षक के अन्तर्गत सकलित छदो मे कृष्ण के नटखटपन का वर्णन है। यह वर्णन कही गोपियो की सहज स्वाभाविकता से परिपूर्ण है और कही तीक्ष्ण व्यग्य से। कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे कृष्ण! तुम और किसी जगह से नही आये हो। तुम्हारा जन्म हमारे इसी गाँव मे हुआ है। बचपन मे हमने तुम्हे दूध पिला-खिलाकर माँ-बाप की तरह पाला है। उसी पहिचान और मर्यादा को तुम छोडना चाहते हो। तुम बचपन मे द्वार-द्वार पर नाचा करते थे और अब हमारे सामने अपनी आँखें नचा रहे हो। तुम्हे तुम्हारी माँ की सौगन्ध है, यदि तुमने हमारी मटकी उतारी। हमे न तो अपनी इस मटकी के उतर जाने का सोच है, न गोरस बिखर जाने का और न वस्त्रो के फट जाने का। हमे दु.ख तो इस बात का है कि तुम हमारे होकर ही हमे इतना तंग करते हो। इन वाक्यो मे गोपियो के

मन की सहज स्वाभाविकता वर्णित है। इसी प्रकार एक अन्य गोपी कृष्ण के नटखट व्यवहार की शिकायत अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण एक से बढ़कर एक शरारतियो को अपने साथ लेकर वन मे घूमता रहता है। वह जितनी शरारते करता है, उनका वर्णन नही किया जा सकता। वह न तो किसी की अनुनय-विनय पर ध्यान देता है और न किसी प्रकार की मान-मर्यादा की ही लज्जा करता है। आती-जाती गोपियो की दधि-मटकियाँ फोडकर उन्हे कृष्ण ने जिस प्रकार तग किया है, उस सबका वर्णन इस शीर्षक के अंतर्गत संकलित छन्दो मे मिलता है।

१४. **मुरली-प्रभाव**—वैष्णव सम्प्रदाय के अन्दर मुरली को भगवान् की वशीकरण शक्ति माना गया है। कृष्ण जब भी मुरली बजाते है, तब जड और चेतन स्थिर बन जाते है। व्रज की गोपियो की दशा तो विलक्षण ही हो जाती है। मुरली की ध्वनि सुनते ही गोपियाँ अपना काम करना छोड़ देती है, अतः दुहा हुआ दूध ठंडा पड जाता है, जामन दिया हुआ दूध रक्खा-रक्खा ही खटा जाता है। सभी के हाथ-पैर अपना-अपना काम करना छोड़ देते है। यह दशा नारियो की ही नही, बल्कि पुरुषो की भी हुई। कहने का भाव यह है कि सारा व्रज ही व्याकुल हो गया। उसकी समस्त व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। इसी प्रकार एक अन्य गोपी मुरली-प्रभाव का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले, कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण के मधुर वचनो ने मेरा मन मोह लिया है। उसकी बाँकी चितवन को देखकर मैं सज्ञाशून्य हो गई और कुल की मर्यादा छोड बैठी। इसीलिए गोपियाँ चाहती हैं कि कोई व्यक्ति कृष्ण के हाथ से बाँसुरी छीनकर उसे जला डाले, तभी वे उससे छुटकारा पा सकती है। कृष्ण अपनी बाँसुरी से इतना अधिक प्रेम करते है कि वे हर समय उसे अपने अधरो से लगाये रहते हैं। इससे गोपियो के मन मे बाँसुरी के प्रति ईर्ष्या-भाव उत्पन्न हो गया है। वे तो यह चुनौती भी दे देती हैं कि व्रज मे या तो हम रहेगी या यह कृष्ण-प्रिया बाँसुरी ही रहेगी।

इस प्रकार काफी विस्तार के साथ रसखान ने मुरली-प्रभाव का वर्णन किया है।

१५. **कालियदमन**—कृष्ण की अन्य प्रमुख लीलाओ के अन्तर्गत कालिय-दमन लीला भी प्रमुख है। सूरदास ने इस लीला का विस्तार से वर्णन किया

है, पर रसखान के इस विषय में केवल दो छंद ही प्राप्त हैं। एक छंद में यशोदा जी का विलाप है और दूसरे छंद में कृष्ण द्वारा नाग पर विजय कर लेने के कारण व्रज-वासियों की प्रसन्नता को व्यक्त किया गया है।

१६. चीरहरण—चीरहरण-लीला के अन्तर्गत रसखान का केवल एक छंद प्राप्त है।

१७. प्रेमासक्ति—इस लीला के अन्तर्गत रसखान के ११ छंद उपलब्ध हैं। इन छंदों में कृष्ण के सौन्दर्य ने, उनकी क्रियाओं ने और उनकी मुरली की वशीकरण ध्वनि ने गोपियों को इतना आकृष्ट कर लिया है कि वे बिना कृष्ण के जल-रहित मीन की भांति छटपटाती रहती हैं। अपनी प्रेमावस्था का वर्णन एक गोपी अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण वन गायें चराकर ग्राम को घर लौटते हैं तो उनकी मधुर वाणी, तीक्ष्ण कटाक्ष आदि मेरे हृदय पर इतना अधिक प्रभाव डालते है कि मैं यह सोचने लगती हूँ कि कितना अच्छा होता, यदि मेरा हृदय पृथ्वी का वह टुकडा होता जहा काछनी पहनकर कृष्ण क्रीडाएँ किया करते हैं। इसी प्रकार एक अन्य गोपी कहती है कि जब से मैंने कृष्ण के मुकुट, मुरली, वनमाला को देखा है, तब से मैं उनमें इतनी आसक्त हो गई हूँ कि कुल तथा लोक की लाज का भी ध्यान नहीं करती। मैं ही क्या, व्रज की समस्त गोपियों की यही दशा है। प्रेम का यह बंधन इतना दृढ हो गया है कि अब चाहे कोई लाख प्रयत्न करे, पर यह टूट नहीं सकता। वस्तुस्थिति तो यह है कि मैं कृष्ण के रंग में ऐसी रंग गई हूँ कि अब मेरे लिए अन्य कोई रंग ही शेष नहीं रह गया है।

अतः यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि रसखान ने प्रेमासक्ति का जिस प्रकार वर्णन किया है वह अत्यन्त स्वाभाविक, प्रभावोत्पादक एवं परम्परागत है।

१८. प्रेम-बंधन—प्रेमासक्ति में आकृष्ट होने की भावना अधिक होती है। जब यह आकर्षण दृढ रूप धारण कर लेता है और हृदय पर अपना आधिपत्य जमा लेता है तो बंधन का रूप बन जाता है। कहने का भाव यह है कि प्रेमासक्ति से अगला सोपान प्रेम-बंधन का है। जो गोपियां कृष्ण की ओर आकृष्ट हुई थी, कालान्तर में वे ही उनके प्रेम में बंदिनी बन गई। गोपियों की इस दशा का वर्णन रसखान ने बडे ही कौशल के साथ किया है। गोपियाँ इस बंधन में इतनी जकड गई है कि वे प्रीति की रीति में लाज का कोई स्थान

ही नही मानती। यह बचन उनके लिए भगवान् का दिया हुआ है, अर्थात् उनके भाग्य मे ही इस प्रकार बदिनी होना लिखा था, यही सोचकर गोपियाँ चुप रह जाती हैं, अपनी बदिनी-दशा के प्रति संतोष कर लेती है। उनकी दशा तो उन मधु-मक्खियाँ जैसी हो गई है जो अपने ही बनाये हुए शहद मे लिपट-कर असहाय-सी बन जाती है। गोपियाँ इस बधन से छुटकारा पाने मे स्वयं को असहाय और असमर्थ समझती है। इसी प्रसग के अन्तर्गत रसखान ने जलक्रीडा का वर्णन किया है। एक दिन सभी व्रज-गोपियाँ यमुना मे स्नान करने के लिए जाती है, पर वहाँ पर कृष्ण को पहले से ही खडा देखकर वे ठिठक जाती है और दोनों ओर से दृग्-बाण चलने लगते है। गोपियाँ कृष्ण के प्रेम के बंधन मे इतनी अधिक बँध जाती है कि उन्हे लोक-लाज का भय नही रहता। वे तो इस बात के लिए कटिबद्ध हो गई है कि एक न एक दिन इस प्रेम का भडाफोड होगा, क्योकि चन्द्रमा को हाथ से छुपाया नही जा सकता, फिर डरने से अथवा लज्जित होने से कोई लाभ भी तो नही है। कृष्ण गोपियो के हृदय मे जिस बीज का वपन कर देते है, वह पूर्णतया अंकुरित होकर गोपियो को व्यथित कर देता है। रात-दिन आँखो से आँखे लडती है, प्रेम-व्यापार चलतें है, पर कही भी न तो भय का प्रदर्शन होता है और न लज्जा का। जब सभी गोपियाँ पूर्णरूपेण कृष्ण के आधीन हो गई है तो फिर डर और लज्जा की बात ही क्या रह जाती है।

कहने का भाव यह है कि इस प्रसग के अन्तर्गत रसखान ने गोपियो के विविध हावो तथा भावो का कुशलता से वर्णन किया है।

१६. प्रेम-वेदना—'प्रेम करि काहू सुख न लह्यौ' फिर गोपियाँ किस प्रकार सुखी रह सकती थी। उनके हृदय मे रसखान बस गया और उसके कारण उन्हे जो पीडा हुई उसका अनुभव वे स्वय ही कर सकती थी, क्योकि घायल की गति को घायल ही जानता है। कृष्ण की मुसकान और तान पर अपने प्राणो को न्यौछावर करनेवाली गोपियाँ समाज मे भी विमुख हुई और कृष्ण का मनचाहा प्यार भी उन्हे न मिल सका। यही उनकी विवशता थी और यही समाज मे ख्वारी होने का कारण था। वे कृष्ण को भूलने का जितना प्रयत्न करती, वह उतना ही अधिक याद आकर पीडा को बढावा देना। फलत: किंकर्त्तव्यविमूढा होना स्वाभाविक ही था। वे क्या करे, क्या न करें, इसका

उन्हें ज्ञान ही नही रहा । उन्हे ज्ञान रहा केवल कृष्ण की क्रीड़ाओं का । इसी दशा का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि आनंद-सागर कृष्ण का कुंज-कुंज मे घूमना, वंशी बजाना, गौओं को चराना, गोचारण के गीत गाना, प्रेम से दही माँगना और मुसकराकर देखना किस प्रकार भूला जा सकता है । इस प्रकार रसखान ने प्रेम-वेदना का मार्मिक और स्वाभाविक वर्णन किया है ।

२०. **रासलीला**—रसखान ने रासलीला का भी वर्णन किया है । इस विषय के इनके सात छंद उपलब्ध है । इस रासलीला का उद्देश्य भी गोपियों को अपने प्रेम के बंधन मे बाँधना है । फलतः जो भी गोपी रासलीला को देखती है, वह कृष्ण की ही होकर रह जाती है । सास चाहे जितना त्रास दे, ननद चाहे जितने व्यंग्य कसे, पर रासलीला की दिवानी गोपी तो उसमें सम्मिलित होकर ही रहती है । रासलीला के द्वारा कृष्ण व्रज मे नवीन जीवन का संचार करते हैं । इसीलिए प्रत्येक गोपी अपनी सखी से आग्रह करती है कि वह रास-लीला मे अवश्य सम्मिलित हो और कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर अपनी आँखो को लाभान्वित करे । वैसे, गोपियाँ स्वयं भी नही रुक पाती, चाहे उन्हे रोकने की जितनी चेष्टा की जाये, क्योकि कौवे की काँव-काँव से शारदागमन कभी नही रुका करता ।

२१ **फागलीला**—कृष्ण की लीलाओ के अन्तर्गत फागलीला का भी महत्त्व है । सभी भक्त-कवियो ने फागलीला का वर्णन किया है । इस विषय से सम्बद्ध रसखान के आठ छंद उपलब्ध हैं जिनमे विस्तार से इस लीला का हृदय-स्पर्शी वर्णन है । कृष्ण जब फाग खेलते है तो उस समय उनकी जो शोभा होती है, वह अवर्णनीय है । कृष्ण और गोपियाँ परस्पर पिचकारी चलाते है, एक दूसरे पर रग डालते है, पर प्रेम की आग और अधिक प्रज्वलित हो जाती है उनकी तृप्ति होती ही नही । फागलीला के कारण ही व्रज मे धूम मच जाती है । इससे कोई नही बच पाता, न तो नवेली गोपियाँ ही और न सलज्ज वनिताएँ ही । सम्मान किसी का भी सुरक्षित नही रहता, अर्थात् सभी गोपिकाएँ लोक-लाज को तिलाजलि देकर फागलीला मे मस्त रहती है ।

२२. **राधा-सौन्दर्य**—प्रेम की परिपूर्णता के लिए यह आवश्यक माना गया है कि नायक की भाँति नायिका भी रूपवती तथा सुन्दर हो । इसीलिए रसखान ने

ग्यारह छदो मे राधा के सौन्दर्य का वर्णन किया है। राधा रूप राशि है, उसके सौन्दर्य के कारण बरसाने मे सदैव आनद की लहरियाँ तरगित होती रहती है। घर-घर मे अपार कौतुक और रग का विस्तार रहता है। राधा-सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए कवि ने प्राय उपमा, उत्प्रेक्षा और सदेह अलकारो का प्रयोग किया है। यह प्रयोग परम्परागत है। राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई एक गोपी राधा से कहती है कि तुम्हारा मुख इतना सुन्दर है जैसे अमृत-सार को सजोकर स्वय चन्द्रमा उपस्थित हो गया हो। तुम्हारे शरीर का गठन ऐसा है जैसे सोने मे मणि-मुक्ताओ को जडने के लिए कुशल जडिया यौवन ने सुन्दर घर (रत्न जडने का गहरा चिन्ह) बना लिया हो। तुम्हारे अधरो की लाली काम-कामना जैसी सुशोभित है। तुम्हारी नासिका का छिद्र उस भौरे के समान है जिसमे ज्ञान की नौका का गर्व नष्ट हो जाता है। कहने का भाव यह है कि राधा के सौन्दर्य का वर्णन नही किया जा सकता। नक्षत्रो की अनुपम प्रभा राधा-सौन्दर्य का कुछ-कुछ बोध करा सकती है।

२३. **मानवती राधा**—प्रम की परिपुष्टता के लिए आचार्यो ने मान को आवश्यक माधन माना है। जिस प्रकार रंग मे पुट लगाने से रंग का रग गहरा और पक्का हो जाता है, उसी प्रकार प्रेम मे मान करने से प्रेम मे दृढता आती है। रसखान ने भी उसका पालन किया है। मानवती का मान भग करने का उत्तरादायित्व उसकी सखियो पर होता है। वे अनेक प्रकार के साधनो का अवलम्बन लेकर अपने कार्य मे प्रवृत्त होती है। मानवती राधा को उसकी एक सखी समझाती हुई कहती है कि हे राधा। जिस कृष्ण पर चारो ओर के राजाओ की स्त्रियाँ अपने प्राणो को न्यौछावर करती हुई नही थकती और भूमडल की सभी स्त्रियाँ जिसे प्राप्त करने के लिए सदैव आकुल रहती है, उसके प्रति तुम्हारा मान धारण करना उचित नही है। इसी प्रकार एक अन्य सखी राधा से कहती है कि यदि आनंद-सागर कृष्ण तेरे मान के कारण डर जाये तो तुझे अपना मान छोड देना चाहिए। यदि तुम मान नही छोड सकती तो कृष्ण से प्रेम करना छोड दो और यदि तुम प्रेम करना नही छोड सकती तो मान छोड़ दो। कृष्ण तुम्हारे मान से बहुत दु खी है और बेचारे हाथ मल रहे है। इसी प्रकार के अन्य वाक्य कहकर गोपियाँ राधा से मान छोडने के लिए आग्रह करती है। यह रीति परम्परागत है।

२४. सखी-शिक्षा—साहित्यिक परम्परा के अतर्गत सखी-शिक्षा का विषय भी सन्निहित है। जो सखी प्रौढ होती है, जिसे प्रेम-ससार के समस्त अनुभव होते है, वह अपनी मुग्धा सखी को—जिसने अभी-अभी प्रेम-जगत् मे प्रवेश किया है और जो प्रेम-रहस्यो से अपरिचित है—शिक्षा दिया करती है। इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य उन साधनो को बताना होता है जिससे प्रियतम वश मे किया जा सकता है। रसखान ने भी इस परम्परा का पालन किया है। कोई सखी अपनी सखी को कृष्ण से मिलने के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि हे सखि! वह वही कृष्ण है, जो रासलीला मे तनिक नाचकर सबको नचाया करता है। वह ही आनद सागर कृष्ण है जो अनेक मनुहारे करने पर भी पलभर के लिए भी सीधा नही देखता। न जाने तुझमे वह कौनसे मनोहर भाव देखकर तेरी ओर आकृष्ट हुआ है, अत इस अवसर को हाथ से न जाने दे और तुरन्त उससे मिल। कही-कही सखी अपनी सखी को सुरक्षा के उपाय बताती है। एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति सचेत रहने के लिए कहती है कि हे सखी! मेरी बात को ध्यान से सुनो। जिस गली मे कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाता हुआ जाता है, उस गली बिल्कुल मत जाओ क्योकि देखते ही वह प्राणो को हर लेता है और फिर गोपियाँ बेचारी प्रेम की विपत्ति लेकर ही अपने घरो को लौटती है उसने अपनी बाँसुरी की तानो का ब्रज मे तान तान रखा है। अत मैं तुमसे ज्ञान की बात कहती हूँ कि बहुत सोच-समझकर पैर रखो, क्योकि वह कृष्ण युवती को अपने जाल मे इस प्रकार फँसाता है जिस प्रकार चारा देकर मछली को फँसाया जाता है इसी प्रकार की अनेक शिक्षाएँ सखियो द्वारा अपनी-अपनी सखियो को दी गई है।

२५ संयोग वर्णन—सयोग-वर्णन के अर्न्तगत राधा और कृष्ण के मिलन का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। यह वर्णन पर्याप्त विस्तृत है मिलन-सुख के अनेक चित्र रसखान ने प्रस्तुत किये है, यहाँ तक कि सुरतात चित्रो को भी चित्रित करने मे इन्होने हिचक नही दिखाई है। हिचक का कोई कारण भी नही है, क्योकि भक्तिरस के अन्तर्गत चित्रित किया हुआ शृंगार रस अलौकिक होता है, लौकिक नही। हिचक लौकिक शृंगार मे होती है। फिर ऐसे चित्रो मे रसखान ने काफी सयम से काम लिया है। सुरतात का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि चतुर बाला अत्यन्त प्रसन्नता

के साथ अपने प्रियतम को छाती से लगा सोई हुई थी। उसके खुले हुए केश बाहर निकल कर हिल रहे थे। उसकी शोभा को देखकर कामदेव तिरस्कृत हो रहा था। प्रिय के साथ आनंद मे डूबी रहकर रातभर जागने की बात का पता उसकी आँखो से चल रहा था। उसका अलसाया हुआ मुख, लाल आँखो के सफेद कोए और रातभर जागने के कारण जम्भाई के कारण निकले हुए आँसू ऐसे प्रतीत होते थे मानो चन्द्रमा पर विम्ब, विम्ब पर कुमुद और कुमुदय पर मोती हो।

यह वर्णन काफी संयत है। इसमे विद्यापति और सूरदास जैसी असंयमता नही है।

२६. **वियोग वर्णन**—संयोग के पश्चात् वियोग अवश्यम्भावी है। रसखान का वियोग-वर्णन काफी मार्मिक और स्वाभाविक है। वियोग-वर्णन मे प्रकृति का उद्दीपन रूप मे चित्रण करने भी जो परिपाटी चली जा रही है, रसखान ने भी उसका अनुसरण किया है। विरहिणी गोपी अपनी सखी से कहती है कि सारे बागो मे फूल खिल गये है। बसन्त के आगमन के कारण भौरे उन पर गूँज रहे है। कोयल की कू-कू सुनकर सबके प्रियतम विदेश से वापिस लौट रहे है। लेकिन मेरे आनद-सागर कृष्ण इतने निष्ठुर है कि मेरी विरह-वेदना की तनिक भी चिन्ता नही करते। जब कोयल बोलती है तो उसकी कूक हृदय मे बरछी के समान लगती है। इसी प्रकार का आगतपतिका का चित्रण है—वह गोपी अपने प्रियतम के वियोग से इतनी दुखी थी कि उसके शरीर की शोभा भी मद पड गई थी। उसका कमल जैसा मुख भी मुरझा गया था। उसके हृदय की साँसे लपट बनकर जलने लगी थी। इसी बीच उसने अपने प्रियतम के आगमन की खबर सुनी। वह इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी कंचुकी की दृढ डोर भी कस-मसाने लगी। उसका शरीर इस प्रकार शोभायुक्त हो उठा, मानो दीपक की बत्ती को उसका दिया गया हो। लेकिन सर्वत्र ऐसी स्वाभाविकता एव मार्मिकता रसखान के वर्णन मे नही मिलती। कही-कही ऊहात्मक चित्र भी आ गए है। यथा—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य विरहिणी गोपी की विरह-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि जब उसके शरीर से वियोग की आग बहुत अधिक बढ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना जल मे कूद पडी। विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के

अभाव के कारण यमुना के तल मे बैठ गई। उस आग के कारण जब यमुना का पानी खौलने लगा तो उसकी गर्मी से पाताल-लोक मे स्थित शेषनाग भी जलने लगा। पर ऐसे वर्णन परम्परागत ही समझने चाहिए।

२७. सपत्नी भाव—इस प्रसग की अवतारणा नारियो के मन की स्वाभाविकता को चित्रित करने के लिए की गई है। नारी यह सहन नही कर सकती कि उसके प्रिय को अन्य कोई नारी भी प्रेम करे। यदि ऐसा होता है तो उसके मन मे जलन होती है। इसी जलन को सपत्नी-भाव कहते है। कृष्ण-काव्य मे कुब्जा को लेकर ही इस भाव की अभिव्यक्ति की गई है। रसखान ने भी इस परम्परा का अनुसरण किया है। इनकी गोपियाँ उद्धव से कहती है कि हे उद्धव! उस आनन्द सागर कृष्ण के गुणो को सुनकर हमारा हृदय सौ-सौ टुकड़े होकर फट गया है। हम नही जानती कि कौनसा मंत्र पढकर कुब्जा ने कृष्ण पर चला दिया है। हम अपने मन मे विचार कर यह बात सत्य कहती है और जानती है कि कृष्ण ने इस प्रकार से कितना यश प्राप्त किया है? अर्थात् वे बहुत बदनाम हो गये है, क्योकि ब्रज के सब नर-नारी यह कहते है कि कृष्ण कुब्जा के दास बन गए है। कही-कही यह सपत्नी-भाव आक्रोश के रूप मे फूट पडा है। एक गोपी कहती है कि वह कुब्जा यहाँ पर होती तो उसे लात घूँसे मारती और उसका शरीर चोट लेती। अपने हृदय का सारा गुस्सा निकाल लेती और उसकी नाक को छेदकर उसमे कौडी पहना देती। उस राँड को मैं ऐसा नाच नचाती कि उसे कृष्ण को रिझाने का फल मिल जाता।

२८ कुवलयापीड़-वध—सभी कृष्ण भक्त-कवियो ने कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करने के लिए इस कथा का वर्णन किया है। रसखान ने इस परम्परा का निर्वाह केवल एक छद से ही कर दिया है।

२९ उद्धव उपदेश—इस शीर्षक के अन्तर्गत रसखान के चार सवैये उपलब्ध है। कथा परम्पागत है। उद्धव गोपियो को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आते है और गोपियाँ उनकी परिहासपूर्ण भर्त्सना करती है।

३० ब्रज-प्रेम—इस विषय के दो छद रसखान के मिले है। कृष्ण को द्वारिका मे रहकर ब्रज की याद आती है और वे अपनी वेदना की अभिव्यक्ति अपनी रानी रुक्मिणी से करते है।

३१. गंगा महिमा—इस विषय के रसखान के दो छद है जिनमे गंगा की महिमा का वर्णन किया गया है।

३२. शिव-महिमा—इस विषय का केवल एक छद प्राप्त है जिसमे शिव की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

यही सुजान रसखान का प्रतिपाद्य है। इस प्रतिपाद्य पर दृष्टि डालने से यह अनायास ही सिद्ध हो जाता है कि अपने काव्य के उपलब्ध लघु कलेवर मे भी रसखान ने उन सभी विषयो को समाविष्ट करने का प्रयास किया जो कृष्ण-काव्य के लिए महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। इस प्रतिपाद्य को देखते हुए यह अनुमान लगाना असगत नही कि रसखान के अभी बहुत सारे छद ऐसे हैं जो प्राप्त नही हुए, क्योकि रसखान जैसा भक्त और भावुक कवि कृष्ण-विषयक किसी-किसी लीला का एक-दो छदो मे ही वर्णन करके रह जाये, यह बात मान्य नही है। 'भक्तमाल-प्रदीपन' मे रसखान के सहस्रो कवित्तो का उल्लेख है। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय रसखान के निश्चय ही हजार के लगभग (हजार से कुछ थोडे अथवा कुछ अधिक) छद अवश्य प्रचलित रहे होगे। जो कवि केवल प्रेम को लेकर ही एक पुस्तक की रचना कर सकता है, उसने निश्चय ही कृष्ण-लीलाओ का विस्तार से वर्णन किया होगा। रसखान के भक्तिकाल की लम्बी अवधि भी इस अनुमान की पुष्टि करती है। अत जब तक रसखान के अन्य छद प्राप्त नही हो जाते, तब तक उपलब्ध छदो पर ही परितोष करने के अतिरिक्त और कोई चारा नही है।

प्रेम-वाटिका—

रसखान की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति प्रेम-वाटिका है जिसमे ५३ दोहो मे प्रेम के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस स्वरूप का उल्लेख करने से पूर्व प्रेम-वाटिका की प्रामाणिकता पर विचार कर लेना आवश्यक है।

अनेक विद्वानो की यह धारणा है कि प्रेम-वाटिका रसखान द्वारा रचित नही है और इस धारणा का मुख्य आधार प्रेम-वाटिका की किसी हस्तलिखित प्रति का प्राप्त न होना है। श्री बटेकृष्ण ने अनेक उक्तियो द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह कृति किशोरीलाल गोस्वामी (प्रेम-वाटिका के सर्व प्रथम सम्पादक) की है। श्री बटेकृष्ण के तर्क ये है—

१ प्रेम-वाटिका का एक दोहा यह है—

'कमल तन्तु सो छीन अरु, कठिन खडग की धार।
अति सूधो टेढो बहुरि, प्रेम-पंथ अनिवार ।।'

इसी भाव से मिलता-जुलता बोधा कवि का यह सवैया है—

'अति खीन मृनाल के तारहु ते, तिहि ऊपर पॉव दै आवनो है।
सुई वेह ते द्वार सकीन तहाँ, परतीत को टाडो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी तेजहुँ ते, चढि ता पै न चित्त डिगावनो है।
यह प्रेम को पथ करार महा, तरवार की धार पै धावनो है ।।'

इस तुलनात्मक अध्ययन से श्री वटेकृष्ण का यह अनुमान है कि प्रेम-वाटिका की रचना बोधा के पश्चात् हुई है। शिवसिंहसरोजकार के अनुसार बोधा का जन्म-काल सवत् १८०४ है। आचार्य शुक्ल ने इनका कविता-काल सवत् १८३० से १८६० तक माना है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेम-वाटिका की रचना सवत् १८६० के पश्चात् हुई।

२ अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए श्री वटेकृष्ण ने प्रेम-वाटिका के इस दोहे की ओर सकेत किया है—

'विधु सागर रस इन्द्र सुभ, वरस सरस रसखान।
प्रेम-वाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि वखान ।।'

और इसमे 'रस' शब्द को ६ अक का सकेत मानकर प्रेम-वाटिका का रचनाकाल सवत् १९७१ निर्धारित किया है।

श्री बटेकृष्ण की यह मान्यता संगत नही है। जहाँ तक पहले आक्षेप का सम्बध है, उसके प्रत्युत्तर मे दो वाते कही जा सकती हैं। पहली बात तो यह है कि रसखान ने बोधा के सवैया से भाव-ग्रहण किया है, बोधा ने रसखान के दोहे से नहीं, इस बात का क्या प्रमाण है ? दूसरी बात यह कि स्वच्छन्द धारा के कवियो ने प्रेम को 'टेढा', 'सीधा', 'खडग की धार' आदि बताया है। उदाहरण के लिए घनानन्द का यह सवैया देखिए—

'अति सूधो सनेह को मारग है, जहा नेकु सयानप बॉक नही।
तहॉ सॉचे चले तजि आपुनपौ, झझकै कपटी जे निसॉक नही।

घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो, इत एक ते दूसरो आँक नही।
तुम कौन धौ पाटी पढे हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नही।।'

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम-वाटिका मे बोधा के भावो को ग्रहण नही किया गया। प्रेम-वाटिका मे प्रेम का दार्शनिक निरूपण है, बोधा मे इस दृष्टि का अभाव है। अत. इस दृष्टि से भी बोधा का काव्य प्रेम-वाटिकाकार का उपजीव्य-काव्य नही हो सकता। डॉ० याज्ञिक के शब्दो मे—

'प्रेम-वाटिका की रचना रसखान द्वारा सवत् १६७१ मे ही हुई' इस तथ्य पर संदेह करना असगत है। जो पुस्तक पहली बार सवत् १९४८ के आस-पास और दूसरी बार संवत् १९६३-६४ मे प्रकाशित हुई, उसकी रचना सवत् १६७१ मे कैसे मानी जा सकती है? जिस पुस्तक की खडित प्रति भारतेन्दु के पास थी और जिसके आधार पर सवत् १९३० मे 'प्रेम-सरोवर' की रचना हुई। उसकी रचना संवत् १९२२ मे जन्म लेने वाले गोस्वामी जी कैसे कर सकते थे? सार की बात यह है कि प्रेमवाटिका की रचना रसखान द्वारा सवत् १६७१ मे हुई थी। इस ग्रन्थ के ५३ दोहो मे से लगभग १० मे रसखान छाप की श्लिष्ट अथवा स्पष्ट कवि नाम रूप मे हैं। प्रेमवाटिका की प्रामाणिकता पर संदेह करने का कोई कारण हमे दिखाई नही पडता।'

प्रेमवाटिका का प्रतिपाद्य प्रेम है। इसे रूपकत्व प्रदान करने के लिए राधा और कृष्ण को मालिन-माली का जोडा माना गया है। इसमे रसखान जी ने प्रेम के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया है। इनका मत है कि सच्चा प्रेम अकारण होता है, उसमे किसी आकर्षक साधन की आवश्यकता नही। इसीलिए माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि के प्रति जो प्रेम किया जाता है वह विशुद्ध नही है। विशुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि यह अनुपम, अमित और सागर के समान होता है। जो व्यक्ति एक बार इस प्रेम को प्राप्त कर लेता है, वह फिर इसे नही छोड पाता। श्रुति, पुराण, आगम-स्मृति आदि सभी प्रेम के सार है। प्रेम ही साधना का आधार है, क्योकि हृदय, कर्म और उपासना ये सब अहकार के मूल है। जब तक हृदय मे प्रेम का अंकुर अंकुरित नही होता, तब तक ज्ञान आदि व्यर्थ है और ये साधना मे किसी प्रकार भी सहायक नही हो सकते। प्रेम ही भगवान् का स्वरूप है। जिस प्रकार भगवान् के स्वरूप का वर्णन नही किया जा सकता, उसी प्रकार

प्रेम भी अवर्णनीय है। जो व्यक्ति प्रेम-पाश मे बँधकर मर जाता है, वह अमर हो जाता है। प्रेम के विविध रूप हैं। इसीलिए कोई इसे फाँसी कहता है, कोई तलवार, कोई नेजा, कोई भाला, कोई तीर और कोई प्राणरक्षक अनोखी ढाल। इसीलिए प्रेम को सब प्रकार की युक्तियो मे श्रेष्ठ माना गया है। इसी प्रेम के नियमो से ही ससार का चक्र चल रहा है। प्रेम मे इतनी शक्ति होती है कि स्वयं भगवान् भी इसके आधीन रहते है। रसखान ने गोपियो के प्रेम को आदर्श प्रेम माना है। कहने का भाव यह है कि प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट सत्ता है और यही जड-चेतन समस्त पृथ्वी का निमायक है।

दानलीला

दानलीला के ११ छद प्राप्त है। डॉ० याज्ञिक इन्हे सदिग्ध रचना मानते है। अपनी मान्यता का आधार वे इन शब्दो मे प्रस्तुत करते हैं—

१. स्व-रचित छदो मे अपना कवि-नाम देने की प्रवृत्ति रसखान मे विशेष रूप से पाई जाती है। रसखान के छाप-रहित सवैया संख्या मे नगण्य ही है, किन्तु दानलीला के ११ छदो मे केवल एक ही छंद मे 'रसखान' शब्द आया है। 'प्रेमवाटिका' के ५३ दोहो मे भी १० बार श्लिष्ट अथवा स्पष्ट नाम मे कवि की छाप मिलती है।

२. इस छद मे 'रसखानि' शब्द का प्रयोग कृष्ण की उक्ति में राधा को संबोधन करते हुए किया है। रसखान कवि ने अपने मुक्तको मे 'रसखानि' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग जहाँ कही किया है, कृष्ण के अर्थ मे किया है, राधा के लिए नही।

३. रसखान कवि मुख्यत. सवैयाकार है। घनाक्षरी का उपयोग तो बहुत थोडा किया गया है। यह प्रवृत्ति दानलीला मे नही देखी जाती, उसमे घना-क्षरी का उपयोग तो सवैया से भी अधिक हुआ है।

४ रसखान के मुक्तक छंदो मे कृष्ण ने राधा अथवा अन्य गोपियो को सम्बो धित करते हुए एक शब्द भी नही कहा है। रसखान की गोपियो के प्रति कृष्ण सदैव मौन ही रहे है, परन्तु दानलीला के कृष्ण मुखर है। यह बात रसखान की प्रवृत्ति के अनुकूल नही है।

५. रसखान के मुक्तको मे दानलीला-सम्बन्धी कुछ उत्कृष्ट और लोकप्रिय छंद मिलते हैं। ये छद राधा अथवा गोपियो की कृष्ण के प्रति उक्तियाँ है जो

संवादात्मक कथोपकथन के रूप मे है। यदि दानलीला वास्तव मे रसखान रचित है तो ये छंद उसमे क्यों नही स्थान पा सके ? जिस दानलीला मे रसखान के तद्विषयक लोकप्रिय उत्कृष्ट छंदो मे से एक भी न हो, उसे रसखान रचित मानने मे संकोच होना स्वाभाविक है। इस प्रकार के छदो के प्रतीक निम्नलिखित है—

(१)

दानी भये नये माँगत दान सुनै जु पै कंस तो बाँधे न जैहौ।
रोकत हो बन मे रसखान पसारत हाथ महा दुख पैहौ।
टूटै घरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै धरि दैहौ।
जै है अभूषन काहु सखी को तो मोल छला के लला न बिकैहौ॥

(२)

छीर जो चाहत चीर गहे ए जु लेहु न केतिक छीर अँचैहौ।
चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहौ।
जानति हौ जिय की रसखान सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जु नेकु न पैहौ॥

(३)

नागर छैल है गोकुल मे पग सेकत सग सखा ठिग तै हैं।
जाहि न ताहि दिखावत आँख सुकौन गई अब तोसो करै है।
हाँसी मे हार हर्‌यौ रसखान जु जो कहुँ नेकु तगा टुटि जै है
एक ही मोती के मोल लला सिगरे ब्रज हाटहि हाट बिकै है॥

६ म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग की प्रति मे 'दानलीला' के वास्तविक रचियता विषयक कोई सकेत नही है। सभा की खोज के विवरणकार ने इसे रसखान रचित माना है, किन्तु यह मान्यता निराकार जान पडती है।

सार यह है कि जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो, इस दानलीला को रसखान-रचित मानना ठीक नही कहा जा सकता।

डॉ० याज्ञिक के ये तर्क काफी सबल है। प्रस्तुत दानलीला की भाषा को देखते हुए भी ऐसा ही लगता है कि ये छंद रसखान द्वारा रचित नही हो सकते। पर यहाँ पर एक समस्या और उत्पन्न हो जाती है। सुजान-रसखान मे अब तक

जितने छंदो का संग्रह किया गया है, वे छंद इस बात के साक्षी है कि रसखान कृष्ण भक्ति-विषयक धारा के पूर्णतया अनुसरणकर्ता है। दानलीला इस धारा का प्रमुख प्रतिमाद्य है। सूरदास ने इस लीला का वर्णन बहुत ही विस्तार से किया है। उसके कुछ पद यहाँ उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है—

ग्वालिनि यह भली नहिं करति।
दूध दधि घृत नितहिं बेचति, दान देतै डरति।
प्रात ही लै जाति गोरस, बेचि आवति राति।
कहौ कैसे जानियै तुम, दान मारे जाति।
कालिंदी-तट स्याम बैठे, हमहिं दियो पठाइ।
यह कह्यौ हरि दान मागहु, जाति नितहि चुराइ।
तुम सुता व्रजभानु की, वै बड़े नंद-कुमार।
सूर प्रभु कौ नाहि जानति, दान हाट बाजार।

× × ×

यह सुनि हँसी सकल व्रजनारि।
आइ सुनी री बात नई इक, सिखए है महतारि।
दधि माखन खैबे कौ चाहत, मागि लेहु हम पास।
सूधै बात कहौ सुख पावै, बांधत कहत अकास।
अब समझी हम बात तुमारी, पढ़े एक चटसार।
सुनहु सूर यह बात कहौ जानि, जानती नंदकुमार॥

× × ×

दान दिये बिनु जान न पैहौ।
जब देहौ ढराइ सब गोरस, तबहिं दान तुम देहौ।
तुमसो बहुत लेन है मोकौ, पहिलै ताति सुनाऊँ।
चोरी आवति बेचि जाति हौ, पुनि गोरस कहँ पाऊँ।
मांगति छाय कहा दिखराऊँ, को दही हमको जानत।
सूर स्याम तब कयौ ग्वालि सो, तुम मोकौ नहि मानत॥

× × ×

कहा हमहि रिस करत कन्हाई।
यह रिस जाइ करौ मथुरा पर, जहँ है कंस कन्हाई।
अब हम कहाँ जाइ गुहरावै, बसति तिहारे गाउँ।
ऐसे हाल करत लोगनि के, कौन रहै इहि ठाउँ।
अपने घर के तुम राजा हो, सब का राजा कंस।
सूर स्याम हम देखत बाढे, अब सीखे ये गंस।

× × ×

मौसौ बात सुनहु ब्रज-नारी।
इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं, तुमसौ कहौ उघारी।
कबहूँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी।
जोइ मन करै सोइ करि डारै, मूँड़ चढ़त है भारी।
बात कहत अठिलाति जाति सब, हँसति देत कर तारी।
सूर कहा ये हमको जानै, छाँछहि बेचनहारी॥

× × ×

यह जानति तुम नंद-महर-सुत।
धेनु दुहत तुमकौ हम देखति, जबहिं जाति खरिकहि उत।
चोरी करत यहौ पुनि जानति, घर घर ढूँढत भाँडे।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तै छाँड़े।
और सुनो जसुमति जब बाँधे, तब हम कियौ सहाइ।
सूरदासप्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ॥

कृष्ण-भक्तो की भाँति स्वच्छंद काव्यधारा के कवियो ने भी इस लीला का वर्णन किया है। घनानद ने 'दानघटा' शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय के १६ छद लिखे है। 'दानघटा' और रसखान की 'दानलीला' मे वहुत अधिक साम्य है, अत: यहाँ 'दानघटा' के समस्त छदो को उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है। ये छंद इस प्रकार हैं—

सवैया

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत कापै अरैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत चैन रचावत मैन-तए हौ।

लाज अँचे बिन काज खगो तिनही सों पगो जिन रंग रए हौ।
ऐंड सबै निकसैगी अबै घनआनंद आनि कहा उनए हौ॥ १॥

सवैया

श्रीकृष्ण—

है उनए सु नए न कछू उघटै कित ऐंड अमेंड अयानी।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति है क्यों इती इतरानी।
दान दियें बिन जान न पाइ है आइ है जो भलि खोरि बिरानी।
आगे अछूती गईं सो गईं घनआनंद आज भई मनमानी॥ २॥

सवैया

गोपी—

जाइ करौ उहि माय पै लाड़ बढाय बढाय किये इतने जिन।
भीत की दौरनि खोरनि है मठता हठ ओरनि सों समझै बिन।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे को कौनें दयौ सु लयौ किन।
टौड़िक लै घनआनंद डाटत काटत क्यों नहीं दीनता सों दिन॥ ३॥

सवैया

श्रीकृष्ण—

देहिगी दान जो ऐहै इतै नहीं पैहै अबै सु किये को सबै फल।
बाबा दुहाई सुहाई करौ जिय जानि कै मानि छुटै न कियें छल।
एक ही ओल दै जाहु चली झगरो सगरो मिटि बात परै सल।
नावँ पर्‌यौ अबला घनआनद ऐंठति ग्वठति मोह कितै बल॥ ४॥

सवैया

गोपी—

जीभ सम्हारि न बोलति हौ मुँह चाहत क्यों अब खायौ थपेरे।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि-कनौड त्यौं मूढ चढे बढे आवत नेरें।
खाय कहा फल माय जने जिम देखौ विचारि पिता-तन हेरें।
कंज-कनेरहि फेर बडो घनआनद न्यारे रहौ कतौं टेरें॥ ५॥

सवैया

श्रीकृष्ण—

लेहु भया गहि सीसन तें दधि की मटुकी अब करनि करौ कित।
जैसे सो तैसे भए ही बनै घनआनद धाम धरौ जित को तित।

एकहि एक बराबरि जाहु करौ अपने अपने चित को हित ।
फोरि कै क्यौ दुहू हाथ सकेदियै जौ विधना घर बैठे दयो वित ।। ६ ।।

सवैया

गोपी—

गोद भरै वित धाम कै जाय धरौ गहि गोद सो माय के आगै ।
पेट परे को लखै फल ज्यौं निपजै हौ सपूत सु भागनि जागै ।
बाँटिहै बोलि वधाई कमाई की जाति मैं जाते महा पति पागै ।
वास दिये को यहै गुन है घनआनंद जो छिन दोप न लागै ।। ७ ।।

सवैया

मधुमंगल—

नंद लला रससागर सों ललिता रिस की सलिला न वढैयै ।
नागरि आगरि हौ सहु भाँति तुम्है अब कौन सी बात पढैयै ।
चोखन तोष नहि उपजै घनआनद क्यौ गुन दोष कहैयै ।
नेकु ढरे सुघरै सब काज अकाज इतो अपलोक चढ़ैयै ।। ८ ।।

सवैया

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल ! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठ है ।
कर ओड़ि दिखाय दया मृदु है चलियै बहु भाँति विनै करि नै ।
घनआनद ऐंठ अमैठ किये कहा पैयत है रिझवारन पैं ।
गुन गाय रिझयावहु देहिं अबै बृषमानलली की निछावर कै ।। ९ ।।

सवैया

सखा—

स्याम सुजान सबै गुनखानि बजावत बैन महा सुर साँचनि ।
अंग त्रिभंग अनंग-भरे दृग भौह नचाय नचावत नाँचनि ।
कीरतिदा कुलमंडन जौ निरखै भरि नैन बढै सुख-माँचनि ।
दान हँसे चुकि है घनआनद रीझ नही सकि है हित-आँचनि ।। १० ।।

सवैया

सखी—

आयौ सखी चलि कुंज मै बैठि लखै घनआनद की सुघराई ।

पाठन देहिं न एक सखै अकिले इन्है छेकि करै मनभाई।
भावती टेक रही बहु भाँति किये न बनै अति ही कठिनाई।
लेता हौ राधे बलाय कह्यौ करि आज मनौ इतनी हम पाई ॥ ११ ॥

राजदुलार भरी इकसार सुभाय मथे मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली सग भाल विराजत लाज को टीको।
लोचनि-कोरनि घोरनि छ्वै मुसिकानि मैं ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि बापुरी डारियै वारि लखै घनआनंद रूप लली को ॥ १२ ॥

रग रह्यौ सुन जात कह्यौ उनह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ।
फैलि पर्‌यौ रस को फगरो अति ही अगरो निबरै न चुकाएँ।
काहू सँम्हार रही न पटू तन को तन मै घनआनंद छाएँ।
प्रेम-पगे रिझवारन की तहँ रीझ कै रीझ ही लेत बलाएँ॥

दोहा

दानफटा मिलि छवि-छटा, रसधारनि सरसाय।
जियत पियत और न छियत, रसिक-पपीहा पाय ॥ १४ ॥

दानघटा-रसपान के, चातक रसिक सुजान।
चखनि लखत चसके चखत, रखत तृषित ही कान ॥ १५ ॥

दानघटा सीचत सदा, मधुर केलि नव वेलि।
आलबाल पचि रचि सुमन, लेत रसिक रस केलि ॥ १६ ॥

इन उद्धरणो को उद्धृत करने से हमारा तात्पर्य केवल यह दिखाना है कि कृष्ण-काव्य के रचयिताओ मे दानलीला का वर्णन करना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परम्परा थी। रसखान ने भी इस परम्परा का निश्चय ही पालन किया होगा। इनके नाम से जो दानलीला मिलती है, यद्यपि कुछ बातो को देखते हुए वह रसखान की प्रवृत्ति के अनुकूल नही जान पडती, तथापि यह कहने मे सकोच नही होता कि अनेक बातो मे यह परम्परा की प्रवृत्तियो का अनुसरण करती है, जैसा कि उपर्युक्त सूरदास और घनानन्द के छंदो से प्रकट होता है। इसे रसखान द्वारा विरचित न मानने के दो ही कारण प्रबल है—

१ इसकी भाषा रसखान की भाषा से मेल नही खाती।

२. सुजान-रसखान मे अनेक पद ऐसे है जो दानलीला से सम्बधित है और उनका इसमे समावेश नही किया गया।

इन कारणों का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है—

१. जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, किसी भी लोकप्रिय कार्य की भाषा का वही रूप नही मिलता, जो उसने अपनाया है। उनकी भाषा को उनके प्रशंसको ने अपने अनुसार मोड दे दिये है। उदाहरण के लिए मीरा को लिया जा सकता है। मीरा की भाषा तो अपने मूल स्वरूप को ही छोड गई है। उदाहरण के लिए ये पद देखिए—

'म्हाँ गिरधर रग राती, सैया म्हाँ ॥ टेक ॥
पचरग चोला पहर्या सखी म्हाँ, झिरमिट खेलण जाती।
याँ झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, देख्याँ तग मण राती।
जिणरो पिया परदेश बस्याँरी, लिख-लिख भेज्याँ पाती।
म्हारा पियाँ म्हारे हीयडे बसताँ, णा आवाँ णा जाती।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, मग जोवाँ दिण राती ॥

× × × ×

'मैं गिरधर रंगराती, सैयाँ मैं ॥ टेक ॥
पचरंग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो खोल मिली तन गाती।
जिनका पिया परदेश बसत है, लिख-लिख भेजे पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, का कहूँ आती जाती ॥'

एक ही पद की इन दोनों भाषाओ मे आकाश-पाताल का अन्तर है। इसी प्रकार रसखान की भाषा के विषय मे भी कहा जा सकता है कि दानलीला के पदो की भाषा और प्रवृत्ति मे इतना परिवर्तन होना असभव नही है। श्रुति-पथ से चलनेवाली भाषा का एक रूप रहता भी नही है।

२ जहाँ तक दूसरे कारण का सम्बन्ध है, इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि रसखान ने स्वयं किसी संकलन की योजना नही की। इनके भक्तो ने ही इनके छंदो का सकलन किया है। पहले दानलीला से सम्बन्धित कुछ ही पद मिले होगे जिन्हे सुजान-रमखान मे संग्रहीत कर दिया गया होगा और बाद मे मिलने वाले और पदो को 'दानलीला' शीर्षक के अन्तर्गत रख दिया गया होगा।

इस दृष्टि से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नही कि प्रस्तुत दानलीला मे निहित भाव रसखान के ही है और भाषा का परिवर्तन इनके भक्तो की देन है।

दानलीला में राधा और कृष्ण का संवाद है, ठीक वैसा ही जैसा सूरदास और घनानन्द मे मिलता है। राधा दधि माँगने पर कृष्ण की भर्त्सना करती है और कृष्ण भी उस भर्त्सना का वैसे ही शब्दो मे उत्तर देते है।

स्फुट पद—

स्फुट पदो के अन्तर्गत पाँच पद संग्रहीत है। प्रथम पद मे कृष्ण और गोपी का संवाद है। मार्ग मे जाती हुई किसी गोपी को कृष्ण छेड देते है। इस पर वह चिढ जाती है और कृष्ण को भला-बुरा कहने लगती है। इसी बात पर दोनो मे वाद-विवाद प्रारभ हो जाता है। यह वाद-विवाद इस प्रकार है—

कृष्ण—यदि तू अपने मन मे इतनी होशियार बनती तो इस रास्ते से निकलती ही क्यो है ?

गोपी—यह रास्ता तेरे बाबा का नही है। और न पहले-पहल ही इस रास्ते से जा रही हूँ। पहले भी इस रास्ते से गई थी, तब किसी ने कुछ नही कहा। यह रास्ता तो सभी के चलने के लिए है। अत. तुम हमारा रास्ता क्यो रोकते हो ? हमे छोडकर या तो सीधे-सीधे यहाँ से चले जाओ, अन्यथा हम तुम्हारी शिकायत तुम्हारे पिता नन्द मिहिर से कर देगी।

दूसरे पद मे भी गोपी द्वारा कृष्ण की भर्त्सना का वर्णन है। गोपी की फटकारे सुनकर कृष्ण को क्रोध आ जाता है और वे उसके सिर से दही की मटकी उतार कर पृथ्वी पर फेक देते है। मटकी फूट जाती है, दही नालियो मे बहने लगती है। तब विवश होकर गोपी उनसे दूसरे दिन मिलने का वचन देती है।

तीसरे पद मे फाग का वर्णन है। कोई गोपी अपनी सखी को कृष्ण के साथ फाग खेलने के लिए प्रेरित करती है।

चौथे पद मे भी फाग का वर्णन है। कोई गोपी कृष्ण को फाग खेलने के लिए घर से बाहर निकलने के लिए ललकारती है और जब कृष्ण बाहर आ जाते है तो उनसे बिजली की तरह लिपट जाती है।

पाँचवे पद मे उस विरहिणी गोपी का वर्णन है जिसे सास और ननद ने कृष्ण से फाग खेलने की अनुमति नही दी।

संदिग्ध पद

इस शीर्षक के अन्तर्गत १० छंद है। डा० याज्ञिक ने अनेक प्रमाणो द्वारा यह सिद्ध किया है कि ये छंद रसखान-रचित नही है।

पहला पद है—

हेरत कुंज भुजा धरे स्याम सो नेक तबै हँसती न लुगाई।
लाज न कानि हुती जिय माँझ सुभेटत जो मग माँहि कन्हाई।
हेरै परै न गुपाल सखी इन जोबन आनि कुमात चलाई।
होत कहा अब के पछताए जो हाथ ते छूटि गई लरिकाई॥'

यह सवैया किसी रामगोपाल कवि का रचा हुआ है। प्रबोध रस सुधा-सागर मे इसे राजगोपाल के नाम से ही सगृहीत किया गया है। नवीन ने भी इसे राजगोपाल के नाम से ही दो बार उद्धृत किया है। एक बार परकीया के वर्णन मे और दूसरी बार ब्रजकेलि के वर्णन मे। सरदार कवि के शृंगार-संग्रह मे भी यह छद रामगोपाल के नाम से ही मिलता है। इस सवैया की तीसरी पंक्ति के पूर्वार्द्ध मे रायगोपाल (गुपाल) की छाप भी अंकित है।

दूसरा पद है—

'मीरा की चटक और लटक नव कुंडल की,
भौंह की मटक मोहि आँखिन दिखाउ रे।
मोहन सुजान गुन रूप के निधान कान्ह,
बाँसुरी बजाय तन तपन सिराउ रे।
ए हो बनवारी बलिहारी जाऊँ तेरी आज,
मेरी कुंज आय नेक मीठी तान गाउ रे।
नंद के किसोर चितचोर मोरपख बारे,
बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे॥'

'शिवसिंह-सरोजकार' ने इस कवित्त को आदिल कवि द्वारा रचित माना है। इसीलिए उसने 'मोहन सुजान' के स्थान पर 'आदिल सुजान' पाठ दिया है।

तीसरा छंद है—

'तट की न घट परैं मग की न पग धरैं,
घर की न कछु करैं बैठी भरैं सांसु री।
एकैं सुनि लोट गई एकै लोट पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आंसु री।
कहे रसखान सो सबै ब्रज वनिता वधि,
वधिक कहाय हाय भई कुल हांसु री।
करिये उपाय बांस डारियैं कटाय, नाहि
उपजैगो बांस नाहि बाजै फेरि बांसुरी॥'

'शिवसिंह-सरोजकार' ने इसे रसनायक कृत माना है और 'कहे रसखान' के स्थान पर 'कहे रसनायक' पाठ दिया है।

चौथा पद है—

'भिक्षुक तिहारो कहाँ बलि मखशाला जहाँ,
सर्पन को संगी कहाँ ह्वै है छीरनिधि मे।
ऐ री बहुरंगी बैलवारो कहाँ नाचत है,
कीने तिरभंगा कही ह्वै है ग्वालगन मे।
चाउर चबैया कहाँ होय है सुदामा पास,
विष को अहारी कहाँ पूतना के घर मे।
सिन्धु सुता आन मिली तर्क सो तरक करी,
गिरजा मुसकाति जाति क्षारी लिए कर मे॥

केवल प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा सम्पादित 'रसखान पदावली' मे यह कवित्त रसखान के नाम से मिलता है। यह कवित्त संस्कृत-कवियो की प्रवृत्ति के अधिक निकट है। अत: निश्चय ही यह संस्कृत के किसी श्लोक का अनुवाद है।

पाँचवा पद है—

'खेलिए फाग निसंक ह्वै आज मयंकमुखी कहे भाग हमारो।
लेहु गुलाल दुओ कर मे पिचकारिक रंग हिये महं डारो।
भावै सु मोहि करो रसखान जू पांव परो जनि घूंघट टारो।
वीर की सौंह हौं देखिहौं कैसे अबीर तो आंख बचाय के डारो॥'

'स्वतंत्र भारत'

५ मार्च सन् १९२८ के होली विशेषांक मे श्री पुत्तूलाल शर्मा ने यह सवैया रसखान के नाम से उद्धृत किया है। शर्मा जी को यह सवैया कहाँ से मिला, इसकी ओर कोई संकेत नही किया गया है। नवीन कवि इसे रसखान-कृत न मानकर किसी अन्य अज्ञात कवि द्वारा रचित मानते हैं। इस सवैये के अंश 'भावै सुमोहि करो रसखान' के स्थान पर 'भावै तुम्हे सु करो मुहि लालन' पाठ भी मिलता है। नवीन ने वसंत ऋतु के अन्तर्गत फाग-प्रसग मे इस सवैये को उद्धृत किया है।

छठा छद है—

'नन्द महर के बगर तनु, अब मेरे को जाय।
नाहक कहुँ गढि जायगो, हित काँटो मन पाय ॥'

यह दोहा रसनिधि-कृत 'रतन हजारा' का है। हिन्दी शब्द-सागरकार ने भूल से इसे रसखान का मान लिया है।

सातवाँ छंद है—

'सुरतर लतानि चार फल है ललित कैधौं,
कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी।
कैधौं चिन्तामनिन की माल उर सोभित,
विसाल कठ मे धरे है जोति झलकावनी।
प्रभु की कहानी ते गुसाई की मधुर बानी,
मुक्ति सुखदानी रसखानि मन भावनी।
खाँड की खिजावनी सी कद की कुढावनी सी,
सिता को सतावनी सी सुधा सकुचावनी ॥'

(वर्ष ५, खंड १, श्रावण १९८७ वि० मे)

'कल्याण' मासिक पत्रिका मे यह कवित्त प्रकाशित किया गया था। इसे रसखान-कृत मान लेने का भ्रम सभवत: 'मुक्ति सुखदानी रसखानि मनभावनी' के कारण हुआ है। इसे रसखान-कृत मान लेने का अभी तक कोई दृढ प्रमाण उपलब्ध नही हुआ है।

आठवाँ पद है —

'अंग भभूत लगाये महा सुख है कोउ ऐसो सो प्रेमहु पागै ।
नाथ को नाम सुनै बिगसै हियो कान्ह को नाम सुनै अनुरागै ।
जोग लिए हरि प्यारो मिलै तो पै कान कटाये कहा दुख लागै ।
मोहन के मन मानी यही तो सबै री कहो मिलि गोरख जागै ।।'

यह सवैया किसका रचा हुआ है, यह बताना असभव है । नवीन ने इसे किसी नाथ कवि का माना है । यह भ्रम नाथ शब्द के कारण हुआ है। यह शब्द नाथपथियो के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

नवॉ पद है—

'कैसा है यह देश निगोरा। जग होरी व्रज होरा ।
मै जल जमुना भरन जात रही, देखि वदन मेरा गोरा ।
मोसो कहै चलो कु जन मे, तनक-तनक से छोरा ।
परे आँखिन मे डोरा ।।
जियरा देखि डरात सखी री, लाज भरम को ओरा ।
का वूढे का लोग लुगाई, एक ते एक ठिठोरा ।
न काहू सो काहू को जोरा ।
मन मेरो हर्यो नन्द के ने सखि, चलत लगावत चोरा ।
कहै रसखान सिखाइ सखन सो, सब मेरा अग टटोरा ।
न मानत करत निहोरा ।।'

इस पद को श्री अखिलेश मिश्र ने १८ सितम्बर १९६० के 'स्वतत्र भारत' मे रसखान का मानकर उद्धृत किया है। इस भ्रम का कारण 'कहै रसखान' वाक्याश है। यहाँ रसखान का अर्थ कृष्ण है ।

दसवाँ पद है—

'परम चतुर पुनि रसिक वर, कैसो हू नर होय ।
बिना प्रेम रूखो लगै, बादि चतुरई सोय ।।'

गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'प्रेमयोग' नामक पुस्तक मे यह दोहा रसखान के नाम से दिया गया है। अन्यथा कोई प्रमाण उपलब्ध नही होता ।

———

: ४ :

रसखान का प्रेम-दर्शन

प्रेम शब्द 'प्रिय' का भाववाचक रूप है। 'प्रिय' शब्द का अर्थ है तृप्ति प्रदान करने वाला—प्रीणातिति प्रिय.। अतः प्रेम उस प्रभाव को कह सकते है जो हृदय को आनंन्द देकर तृप्त करने वाला हो।

प्रेम-भाव की महत्ता असदिग्ध है। इसीलिए भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य दोनो मे इसके स्वरूप का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। भारतीय आचार्यो के एतद्विषयक प्रमुख मत निम्नलिखित है—

१ चित्त रूपी समुद्र मे जब सत्व गुण का जल भर जाता है तो उसमें दृष्टि, परिचय, हार्द्र तथा प्रेम नाम की चार प्रकार की तरगे उठा करती है। प्रेम का मूलोपादान आत्मा का सत्व गुण है। विषय तो केवल निमित्त कारण है। वह उद्दीपन है और भाव की जिस स्थिति को प्रेम कहते हैं, वह अनुभूति की चरम कोटि है। उसमे पूर्व तीन विकास-क्रम दृष्टि परिचय और हार्द्र समाप्त हो लेते है। इनमे दृष्टि चित्त की वह वृत्ति है जिसमे चंचल चित्त विषय की ओर हठात् प्रवृत्तहोता है। परिचय से विषय के विविध संस्कार मन मे उत्पन्न होते है। दोषो पर ध्यान न देना हार्द्र है। जीव मे आत्मा का ही रूप जो रस है वह जिस उपाधि का आश्रय लेकर शृंगार बनता है, वह उपाधि प्रेम है; अर्थात् प्रेम रसमय आत्मा के बहिर्विकास का साधन है, उसी का अंभूगत तत्त्व है।

—प्रेमरसायनकार विश्वनाथ

२. अंत करण की वृत्ति जिससे वस्तु के संयोगकाल मे भी वियोग-सा बना रहता है, प्रेम है।

—शाडिल्य

३ चित्त की द्रवावस्था को प्रेम कहते है।

—आचार्य भरत

८. उन्माद—उन्माद का अर्थ है पागलपन। प्रेमी मे जब अपने प्रिय के प्रति इतना ममत्व आ जाता है कि वह उसके बिना पागल-सा बन जाता है तो उसकी यह दशा उन्माद कहलाती है। उन्माद गुण के उदय होने पर महाभाव की दशा आती है। इस दशा मे सयोग के कल्प निमेष की भाँति और वियोग के निमेष कल्प की भाँति प्रतीत होते हैं।

प्रेम के गुणो पर दृष्टिपात करने के उपरात अब यह जान लेना आवश्यक है कि प्रेम के कितने भेद होते है। इस वर्गीकरण के तीन आधार हो सकते हैं—

१. प्रेम की यात्रा का आधार।

२. प्रेम के आलम्बन का आधार।

३. प्रेम के स्वरूप का आधार।

प्रेम की मात्रा के आधार पर प्रेम के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। प्रेम के आलम्बन के आधार पर प्रेम के अपार भेद हो सकते है। यथा—देश-प्रेम, जाति-प्रेम, मानव-प्रेम, पशु-प्रेम, पक्षी-प्रेम, पुस्तक-प्रेम, दुग्ध-प्रेम, आदि। प्रेम के स्वरूप के आधार पर प्रेम के दो भेद है—पार्थिव प्रेम और अपार्थिव प्रेम। पार्थिव प्रेम के भी दो भेद होते है—प्राकृत प्रेम और सात्विक प्रेम। इन्हे पाश्चात्य आचार्यों ने क्रमश. 'नैच्यूरल लव' (Natural Love) और 'प्लेटोनिक लव (Platonic Love) कहा है।

सहज मानव-प्रेम ही को प्रकृत प्रेम कहा जाता है। पार्थिव आलम्बन के प्रति पार्थिव आश्रय की सहज वासनात्मक प्रणयाभिव्यक्तियाँ इसी प्रेम के अन्तर्गत आती हैं। दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं कि नर-नारी की सहज प्रीति ही प्रकृत प्रेम है। ऐसे प्रेम का आलम्बन पार्थिव होता है. अत शरीर-सुख की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर जिस प्रेम का निवेदन किया जाता है, वह स्वभावत ही वासनात्मक होता है। रीतिकालीन काव्य मे ऐसे ही वासनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति है।

सात्विक प्रेम इस प्रेम से भिन्न होता है। प्लेटो ने आत्मा की प्रीति का वर्णन किया है। उसने पार्थिव आलम्बन के प्रति अशरीरी अकाक्षा अथवा वासनायुक्त शुद्ध प्रीति और शुद्ध राग को ही सात्विक प्रेम की संज्ञा दी है।

सहज ऐन्द्रिय सुख से ऊपर का प्रेम ही आत्मा की प्रीति है। ऐसे प्रेम मे वस्तुतः वासना का परिष्कार एवं उन्नयन हो जाता है और वह वासना त्याग तथा सयम का प्रतिरूप बन जाती है।

जिस प्रेम का आलम्बन अपार्थिव हो, उसे अपार्थिव प्रेम कहते है। अपार्थिव प्रेम को चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

१ अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की वासनामूलक प्रणयाभिव्यक्ति।

२. सगुण साकार अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की दाम्पत्य प्रणयाभिव्यक्ति।

३. सगुण निराकार के प्रति मानव-आत्मा की रीति-भावना।

४. निर्गुण निराकार के प्रति मानव आत्मा की ज्ञानमूलक आनंदवद्ध प्रणयाभिव्यक्ति।

अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की वासनामूलक प्रणयाभिव्यक्ति सगुण साकार के प्रति ही सम्भव है। अत: सगुण और साकार अपार्थिव आलम्बन आश्रय की भावना के लिए नितात आवश्यक है। पार्वती-शिव, राधा-कृष्ण, सीता-राम का शक्ति और परम पुरुष के रूप मे वर्णन अपार्थिव प्रणयमूलक प्रेम है। सगुण साकार अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की दाम्पत्य प्रणयाभिव्यक्ति मे पार्थिव आश्रय सगुण और साकार अपार्थिव आश्रय मे वासना का आरोप कर लेता है। फलत. ऐसे प्रेम मे ऐन्द्रिय भावना का समावेश हो जाता है, किन्तु आलम्बन की अपार्थिवता के कारण ऐन्द्रिय भावना उदात्त रूप मे ही व्यक्त होती है। सगुण निराकार के प्रति मानव-आत्मा की रीति-भावना मे पार्थिव आश्रय का रति-भाव साकार के प्रति ही सम्भव है, निराकार के प्रति नहीं। इसका कारण यह है कि निराकार ब्रह्म प्रेम का आश्रय नही हो सकता। प्रेम के लिए प्रतिपादन, प्रतिक्रिया आवश्यक है जो सगुण द्वारा ही सम्भव है, निर्गुण द्वारा नही। अत· साहित्य मे कई स्थानो पर अपार्थिव आलम्बन को सगुण निराकार-रूप मे चित्रित करके आत्मा का उसमे रति-भाव आरोपित किया है। सूफी कवियों की प्रेममयी तथा सन्त-कवियो की रहस्यमयी भक्ति ऐसी ही है। निर्गुण और निराकार के प्रति रति-भाव का प्रद-

र्शन नही हो सकता, अत: निर्गुण निराकार के प्रति मानव-आत्मा की ज्ञानबद्ध प्रणयाभिव्यक्ति में प्रेम को आनंदमग्नता की संज्ञा दी जाती है। ज्ञानमूलक होने के कारण इस प्रेम के क्षेत्र से बाहर की वस्तु माना जा सकता है, किन्तु तथ्य यह नही है। इस अपार्थिव सम्बन्ध मे भावना की मग्नता है, इसीलिए इसे प्रेम ही कहा जायेगा। उपनिषदो मे आत्मा के इसी आनंद की व्याख्या की गई है।

रसखान का प्रेम-दर्शन

रसखान ने अपार्थिव प्रेम का निरूपण किया है। इन्होंने स्पष्ट कहा है कि राधा और कृष्ण ये दोनो ही प्रेम के आलम्बन है, प्रेम वाटिका के मालिन और माली है। प्रेम-तत्त्व सुबोध और सर्वगम्य नही है। अत: इस तत्त्व को सभी मनुष्य नही जान सकते। पर विडम्बना यह है कि प्रेम के ज्ञाता होने का सभी दावा करते है। जो व्यक्ति प्रेम-तत्त्व को जान जाता है, वह ससार के सभी दुखों एवं क्लेशो से मुक्त हो जाता है। प्रेम अगम, अनुपम, अमित और सागर के समान गंभीर होता है, जो इस प्रेम-सागर के समीप आ जाता है वह फिर यहाँ से लौट कर वापिस नही जाता। प्रेम कमल-नाल से भी पतला होता है, तलवार की धार पर चलने की भाँति दुष्कर होता है। इसका मार्ग सीधा भी है और टेढा भी। इस प्रकार प्रेम-तत्त्व अनुपम और विलक्षण है। ज्ञान की शोभा भी प्रेम से ही है। कोई व्यक्ति चाहे जितना गुणवान बन जाय, पर यदि उसमे प्रेम-तत्त्व नही है तो उसका ज्ञान फीका और निस्सार है। वेद, पुराण, आगम, स्तुति सभी का सार प्रेम है। बिना प्रेम के हृदय मे भगवद्-भक्ति का अंकुर प्रस्फुटित नही होता। प्रेम के बिना किसी भी प्रकार के आनन्द का अनुभव नही हो सकता। प्रेम ज्ञान, कर्म आदि सभी उपलब्धियो से श्रेष्ठ है, क्योकि ज्ञान, कर्म, उपासना ये सब अहंकार के कारण है। जब तक हृदय में प्रेमोत्पत्ति नही होती, तब तक किसी भी साधना अथवा कर्म के प्रति मनुष्य में दृढ निश्चय की भावना नही आती।

जो प्रेम संसारिक आकर्षणो से उत्पन्न हुआ करता है, वह पार्थिव प्रेम है। इसे सच्चा प्रेम नही कहा जा सकता। सच्चे प्रेम मे, अपार्थिव प्रेम में, गुण, यौवन, रूप, धन स्वार्थ और कामना आदि कारण नही होते; अर्थात् यह सबसे रहित मानस का सहज भाव होता है। प्रेम भगवान् की भाँति सर्व-

व्यापक तत्त्व है। इसीलिए इस ससार मे अन्य सभी वस्तुओ को देखा जा सकता है, उनका वर्णन किया जा सकता है, पर प्रेम और भगवान् ये दो तत्त्व ऐसे है जिन्हे न तो देखा जा सकता है और न जिनका वर्णन किया जा सकता है। प्रेम ऐसा ज्ञान है जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् अन्य किसी ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता नही रह जाती। मित्र, स्त्री, बन्धु, पुत्र, आदि के प्रति मनुष्य के मन मे यद्यपि स्वाभाविक प्रेम होता है, पर इसे सच्चा प्रेम नही कहा जा सकता। सच्चा प्रेम किसी भी प्रकार के कारण की अपेक्षा नही रखता। वह सदैव समान रहता है और सदैव प्रिय की हित-कामनाओ से परिपूर्ण होता है। इस ससार मे अपने तन की ममता सर्वाधिक मानी जाती है, पर सच्चा प्रेम इससे भी अधिक प्यारा होता है। इस प्रेम को प्राप्त कर लेने के पश्चात् प्रभु-प्राप्ति की भी इच्छा नही रह जाती। ऐसा ही प्रेम अलौकिक शुद्ध, शुभ और सरस कहलाता है।

इस प्रेम के अनेक नाम तथा रूप है। कोई इसे फाँसी कहता है कोई तलवार कहता है, कोई नेजा कहता है, कोई भाला कहता है, कोई बरछी कहता है, कोई तीर कहता है और कोई अनोखी रक्षा करनेवाली ढाल बताता है। इस प्रेम की मार इतनी सरस होती है कि जिसको यह मार पड जाये, वह इसके आनन्द मे सब कुछ भूल जाता है। इस प्रेम मे द्वैत भावना नही रहती, वरन् दोनो प्रेमी मिलकर एकाकार हो जाते है। जहाँ द्वैत-भावना बनी रहेगी, वहाँ सच्चे प्रेम का अभाव होगा। इसीलिए इस प्रेम को सब प्रकार की मुक्तियो से श्रेष्ठ माना गया है। प्रेम का अभाव नाश का कारण है। प्रेम से ही ससार की स्थिति हे। भगवान भी प्रेम के आधीन होते हैं। जो प्रेम आनन्दपूर्ण, स्वाभाविक, निस्वार्थ, अचल, महान् और एकरस होता है, वही शुद्ध प्रेम कहलाता है। शुद्ध प्रेम स्वय ही अकुर है, स्वय ही बीज है, स्वय ही सिचन है और स्वय ही डाल, पात, फल तथा फूल है। यही स्वय कारण और कार्य है, कर्त्ता, कर्म, क्रिया और करण भी यही स्वयं है। कहने का भाव यह है कि अलौकिक प्रेम की महत्ता, और उसका स्वरूप वैविध्यपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ईश्वर नाना रूपधारी एवं नामधारी है।

रसखान का यह प्रेम-दर्शन भारतीय पद्धति पर आधृत है। निम्नलिखि

कतिपय तुलनात्मक उद्धरणो से यह मान्यता सिद्ध होती है—

१. 'लोक वेद मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह॥'

—रसखान

'सर्वमेव तदा सिद्धं, कर्त्तव्यं ना विशिष्यते।'

—बोधसार

२ 'बिन गुन जोबन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि॥'

—रसखान

'गुणरहित, कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमानमविच्छन्न सूक्ष्मतरमनुभव-रूपम्।'

—नारद-भक्तिसूत्र

३ 'जिहि पाए बैकुण्ठ अरु, हरिहू की नहि चाहि।
सोइ अलौकिक शुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥'

—रसखान

'यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति, शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति।'

—नारद-भक्तिसूत्र

४. 'दो मन इक होतें सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि।
होय जबहि द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि॥'

— रसखान

'प्रेमानन्दप्रकारेण द्वैत विस्मरण गतम्।

—बोधसार

५. 'याही तें सब मुक्ति ते, लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भए नसि जाहि सब, बँधे जगत के नेम॥'

—रसखान

'सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जना:॥'

—भागवत

६. 'हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम आधीन।
याही तें हरि आपु ही, याहि बडप्पन दीन ॥'

—रसखान

'अहं भक्तपराधीनो ह्य स्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रिय: ॥'

—भागवत

अन्त मे, रसखान का प्रेम दर्शन भारतीय दर्शन पर आधृत है। भारतीय दर्शन मे प्रेम को जिस रूप मे वर्णित किया है, शुद्ध प्रेम का जो वैविध्य दिखाया है, वही रूप रसखान ने प्रेम-वाटिका मे प्रतिपादित किया है।

—

: ५ :

रसखान की भक्ति-पद्धति

'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजन। इसलिए भक्ति का अर्थ हुआ भगवान् का भजन अथवा स्मरण। मनुष्य आनन्द प्राप्त करने का अनादिकाल से ही इच्छुक रहा है और इसके लिए सदैव प्रयत्नशील रहा है। इन्द्रियो के सहयोग से भी आनन्द प्राप्त होता है, पर इसे वास्तविक आनन्द नही कहा जा सकता, क्योकि यह सासारिक, क्षणिक और दु ख-पर्यवसायी है। इसी सत्य को गीता मे इन शब्दो मे प्रतिपादित किया गया है—

'ये हि संस्पर्शजाभोगा दुखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेपु रमते बुध: ।।'

इसीलिए बुद्धिमान लोग इन सासारिक सुखो की ओर आकर्पित नही होते। महर्पि पतजलि ने भी विवेकी के लिए संसार के समस्त भोगो को दु ख का कारण बताया है—

'परिणामताप सस्कार दुखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वमेवदुःख विवेकिन ।'

सभी आचार्यो ने इस मत को एक स्वर से स्वीकार किया है कि वास्तविक आनन्द तो भगवत्सान्निध्य से ही प्राप्त हो सकता है। इसी सान्निध्य के सान्निध्य का प्रयास भक्ति है। इस सान्निध्य को प्राप्त करने के लिए दो मार्ग प्रमुख माने गये है—प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्तिमार्ग। प्रवृति मार्ग का अर्थ है शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियो द्वारा परमेश्वर को प्राप्त करना, अर्थात् विपयो को भगवदोन्मुख कर देना। इस मार्ग के दो भेद है—कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। निवृत्ति मार्ग का अर्थ है प्रतिकूल वृत्तियो की निवृत्ति करके विवेक द्वारा अनात्म को त्यागते हुए भगवान् का साक्षात्कार। इस मार्ग के भी दो भेद है—योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। योगमार्ग का अर्थ है विपयो से चित्तवृत्तियो का निरोध करके ईश्वर मे सगमन करना, और ज्ञानमार्ग का अर्थ है आत्म-अनात्म का भेद

करना। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भगवत्प्राप्ति के चार मार्ग है—कर्म-मार्ग, भक्तिमार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। इन मार्गो मे भक्तिमार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, क्योकि यह सहज साध्य है—

'अन्यस्मात् सौलभ्य भक्तौ।'

आचार्यो द्वारा भक्ति की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी गई है। महर्षि नारद के अनुसार भक्ति परमप्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा है जिसे प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध, अमर तथा तृप्त हो जाता है—

'त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।

भक्तराज शाडिल्य ने ईश्वर मे प्रगाढ अनुरक्ति को भक्ति कहा है—

'सापरानुरक्तिरीश्वरे।'

भागवतकार के अनुसार सासारिक विपयो का ज्ञान देने वाली इन्द्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप से जब भगवदोन्मुख हो जाती है तो उसे भक्ति कहते है—

'देवाना गुणलिगानामनुश्रविक कर्मणा सत्व एवैक मनसो वृत्ति: स्वाभाविकी तु याऽनिमित्ता भागवती भक्ति: सिद्धेर्गरीयसी।'

रूपगोस्वामी के मत से श्रीकृष्ण का अनुकूल रूप मे अनुशीलन जिसमे अन्य किसी प्रकार की अभिलाषा न हो और जिस पर ज्ञान, कर्म आदि का आवरण न हो, भक्ति कहलाता है—

'अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलं भक्तिरुत्तमा॥'

वल्लभाचार्य के अनुचार भगवान के महात्म्य का ज्ञान रखते हुए उनमे सबसे अधिक दृढ स्नेह करना भक्ति है—

'महात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ· सर्वतोऽधिक:।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तयामुक्तिर्न चान्यथा॥'

इन सभी परिभाषाओ मे एक तत्त्व सर्वथा विद्यमान है। वह है ईश्वर के प्रति अनुराग। प्राय. सभी भक्त-सम्प्रदायो ने अनुराग को भक्ति का अनिवार्य अग माना है। वल्लभीय सम्प्रदायी हरिराम अनुराग की महत्ता इन शब्दों मे प्रतिष्ठित करते हैं—

'सो ठाकुर जी भक्त के स्नेहवश होय भक्त के पाछे-पाछे डोलते है। सो जहाँ ताई ऐसो स्नेह नही होय तहाँ ताई महात्म्य रखनो......तासो महात्म्य विचारै और अपराध सो डरपै तो कृपा होय। जब सर्वोपरि स्नेह होयगो तब आपही ते स्नेह एसो पदार्थ जो महात्म्य कूँ छुडाय देयगो।'

भक्ति के अनेक भेद है। इसके विभाजन के मुख्यतया चार आधार माने जाते है—

१. साधना का आधार।

२. अधिकारी का आधार।

३ प्रेरणा का आधार।

४. विकास का आधार।

साधना के आधार पर, भागवतकार ने भक्ति के नौ भेद किये है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। अष्टछाप के प्रमुख कवि नन्ददास ने पहले छ भेदो को दो भागो के अन्तर्गत सपादित किया है—नादमार्ग और रसमार्ग। पहले तीन प्रकार अर्थात् श्रवण, कीर्तन और स्मरण नादमार्ग के और पादसेवा, अर्चन तथा वन्दन रसमार्ग के अन्तर्गत आते है।

अधिकारी के आधार पर भक्ति के चार भेद माने गये है—सात्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुण। जो भक्त पापो के नाश के लिए अपने पाप-पुण्य सब भगवदार्पित कर देता है और अनन्य भाव से ईश्वर मे आसक्ति रखता है, उसकी भक्ति सात्विकी कहलाती है, राजसी भक्ति लौकिक विषय, यश, ऐश्वर्य आदि को दृष्टि मे रखकर की जाती है। तामसी भक्ति मे हिसा, दम्भ, क्रोधादि के वशीभूत होकर इच्छाओ की पूर्ति के लिए भगवत-उपासना की जाती है। निर्गुण भक्ति में परमेश्वर को सब मे सम भाव से व्याप्त जानते हुए अपने समस्त कर्म परमेश्वर को अर्पित किये जाते है। इसमे निष्काम आसक्ति रहती है।

प्रेरणा के आधार पर भक्ति के अनेक भेद हो सकते है, क्योकि प्रेरणाओ की कोई संख्या निर्धारित नही की जा सकती। गीता मे आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्त बताये गये है—

'चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनार्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।'

इन्ही भक्तो के आधार पर भक्ति के भी चार भेद किये जा सकते है। आर्त भक्त की भक्ति तामसी, जिज्ञासु की सात्विकी, अर्थार्थी की राजसी और ज्ञानी की निर्गुण कहलाती है।

रूपगोस्वामी ने, विकास के आधार पर भक्ति के तीन भेद माने है—साधनरूपा, भावरूपा और प्रेमरूपा। साधनरूपा भक्ति भक्त की प्रथम अवस्था की द्योतिका है। इसमे भक्त का परमेश्वर से पूर्ण राग तो नही होता, किन्तु अर्चना आदि कर्मो के द्वारा वह उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। भावरूपा भक्ति उसका साध्य होती है। भावरूपा भक्ति के दो भेद है— वैधी और और रागानुग। जब परमेश्वर मे स्वतः राग नही होता, वरन् शास्त्रो के शासन से अर्जित किया जाता है तो उसे वैधी भक्ति कहते है। वैधी भक्ति मे शास्त्र-ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान होता है। रागानुसार भक्ति मे अनुराग का प्राधान्य होता है। इसमे शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा नही होती, वरन् भावना का अतिरेक आवश्यक है। परमेश्वर की ह्लादिनी, सगिनी और सवित् नाम की जो तीन शक्तियाँ है इनमे से पहली का जीवो मे प्रेम-रूप से प्रकट होने वाला अंश शुद्ध तत्त्व कहलाता है। यही भाव है। इसी भाव की भक्ति को भावरूपा भक्ति कहते है। हृदय जब भाव मे अत्यन्त द्रवीभूत और प्रगाढ ममता से सयुक्त हो जाता है तो यही प्रगाढावस्था प्रेम कहलाती है। इस भाव की भक्ति को प्रेमरूपा भक्ति कहते है। साधनारूपा भक्ति से प्रेमरूपा भक्ति तक आने के लिए भक्त को भक्ति-विकास के अनेक सोपानो को पार करना पडता है।

भक्ति के स्वरूप पर विहगम दृष्टिपात करने के पश्चात् अब उन कृष्ण-भक्ति के समुदायो का संक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है जिन्होने भक्ति-जगत् एव साहित्य को प्रचुरता से प्रभावित किया है। इन समुदायो मे से मुख्य सम्प्रदाय ये है—

१ वल्लभ सम्प्रदाय।
२. गौडीय सम्प्रदाय।
३. राधावल्लभीय सम्प्रदाय।

४. सखी-सम्प्रदाय ।

५ निम्बाक सम्प्रदाय ।

बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य है। वल्लभाचार्य ने प्रेम-लक्षणा भक्ति को महत्ता प्रदान की है और नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है। इस सम्प्रदाय मे कृष्ण-भक्ति को प्रधानता दी गई है और राधा को उनकी (भगवान् की) आल्हादिनी शक्ति अथवा रसशक्ति के रूप मे स्वीकार किया गया है। कृष्ण-भक्त साहित्य मे इस सम्प्रदाय को सर्वाधिक मान्यता मिली है और इसका प्रचार सबसे अधिक हुआ है।

गौडीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु है। इस सम्प्रदाय मे राधा और कृष्ण के समान महत्त्व को स्वीकार किया गया है और दोनो की समान पूजा का विधान माना गया है। इसमे सत्सग, नाम तथा लीला-कीर्तन, ब्रज-वृन्दावन, कृष्ण-मूर्ति की सेवा पूजा आदि भक्ति के साधनो को विशेष महत्त्व दिया गया है।

राधाबल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हितहरिवश है। इस सम्प्रदाय मे राधा की पूजा को प्रधानता दी गई है, यद्यपि कृष्ण-पूजा की भी उपेक्षा नही है। इसमे राधा-कृष्ण की कुंजलीला तथा शृंगारकेलि को प्रधानता देने के कारण रति-क्रीडा का ही एक मात्र आलबन ग्रहण किया गया है। इसमें विप्रलंभ शृगार का अभाव तो है, किन्तु सूक्ष्म विरह की अनोखी सृष्टि की गई है।

सखी सम्प्रदाय का दूसरा नाम हरिदासी सम्प्रदाय भी है, क्योकि हरिदास इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक है। इस सम्प्रदाय मे राधा-कृष्ण की युगल-उपासना का विधान सखी-भाव से किया गया है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य निम्बार्क है। बल्लभ और गौडीय सम्प्रदायो की भाँति इस सम्प्रदाय मे भी मधुर भाव की उत्कृष्टता स्वीकार की गई है। इस सम्प्रदाय मे कृष्ण को आराध्य माना गया है जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य अह्लादिनी गोपी-स्वरूपा शक्तियो से घिरे रहते है। इस सम्प्रदाय मे कृष्णोपासना के साथ-साथ राधा की उपासना का भी विशेष महत्त्व माना गया है।

रसखान की भक्ति-पद्धति

रसखान वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी है, अत: इनकी भक्ति-पद्धति वैष्णव-भक्ति है। वैष्णव भक्ति-पद्धति मे नवधा भक्ति को पूर्ण महत्त्व दिया गया है। नवधा भक्ति के नौ सोपान हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद-सेवा, अर्चन, वन्दन दास्य,सख्य और आत्मनिवेदन। सूरदास ने इसमे मधुर भाव को जोडकर इसके दस सोपान वना दिये है। श्रवण मे भक्त अपने आराध्य के गुणो को सुनता है, कीर्तन के द्वारा उन्हे प्रकट करना है,। नाचकर तथा गाकर सुनाता है। पद-सेवा का अर्थ है भगवान के चरणों की पूजा करना अथवा उनके चरणो की महत्ता का वर्णन करना। अर्चन का अर्थ है पूजा करना, वन्दन का अर्थ है स्तुति करना। दास्य मे भक्त दास-भाव से अपने आराध्य की सेवा करता है अथवा उसका गुण-गान करता है और आत्मनिवेदन मे भक्त अपने भगवान के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देता है। रसखान के काव्य मे ये सभी सोपान प्राप्त नही होते। वस्तुत रसखान किसी वाँधी हुई पद्धति पर चलनेवाले भक्त नही है। ये प्रेमोमग के भक्त है, अत इनके काव्य मे माधुर्य भक्ति ही अधिक दिखाई पडती है।

माधुर्य भक्ति के तीन अंग प्रमुख है— रूप-वर्णन, विरह.वर्णन और पूर्णतया आत्मसमर्पण। रसखान-काव्य मे ये तीनो अंग पाये जाते है। रूप-वर्णन के कुछ उदाहरण देखिए —

१. 'मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चार्यौ दिसानि की लै छवि आनि कै झांके झरोखे मैं बाँकेबिहारी॥'

२. 'गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल,
आगे गैयाँ पाछे ग्वाल गावै मृदु तानि री।
तैसी धुनि वाँसुरी की मधुर मधुर जैसी,
वक चितवनि मद मंद मुसकानि री।

कदम विटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि चाहि पीत-पट फहरानि री।
रस वरसावै तन तपनि वुझावै नैन,
आननि रिझावै वह आवै रसखानि री।

३ 'नैननि वक विसाल के वाननि झेलि सकै अस कौन नवेली।
लोलत है हिय तीछन कोर मुमार गिरी तिय कोटिक हेली।
छोड़ै नही छिनहूँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सौं जनु वेली।
रौरि परि छवि की व्रजमडल कुंडल गडंन कुंतल केली॥',

४ 'वांकी वडी अँखियाँ वडरारे कपोलनि वोलनि की कल वानी।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रंग सुधारस-सानी।
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ व्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डोलति है वन वीथिन मैं रसखानि मनोहर रूप लुभानी॥'

५. 'लाल लसै पगिया सव के पट कोटि सुगंधनि भीने।
अंगनि अग सजे सव ही रसखानि अनेक जराउ नवीने।
मुकता गल माल लसैं सवके सव ग्वार कुमार सिगार सो कीने।
पै सिगरे व्रज वेहरि ही हरि ही कै हरै हियरा हरि लीने॥'

६ 'सांझ समै जिहि देखती ही तिहि पेखन को मन यौं ललकै री।
ऊँची अटान चढी व्रजवाल सु लाज सनेह दुरै उझकै री।
गोधन धूरि की धूंधरी मैं तिनकी छवि यौं रसखानि तकै री।
पावक के गिरि ते वुझि मानो धुंवा-लपटी लपटै लपकै री॥'

जिस प्रकार रसखान ने कृष्ण के रूप का, सौन्दर्य का वर्णन किया है, उसी प्रकार राधा के सौन्दर्य का भी विस्तार से वर्णन किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

१. 'प्यारी की चाह सिगार तरंगनि जाय लगी रति की दुति कूलनि।
जोवन जेव कहा कहियै उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि।

कंचुकी सेत मे जावक बिन्दु बिलोकि मरै मघवानि की सूलनि ।
पूजे है आजु मनौ रसखान सुभूत के भूप बंधूक के फूलनि ।।'

२. 'बाँकी मरोर गही भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की ।
टाँक सी लॉक भई रसखानि सुदामिनि तें दुति दूनी हिमा की ।
सोहै तरग अनंग की अगनि ओप उरोज उठी छतिया की ।
जोबन-जोति सु यो दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की ।।'

३. 'बासर तू जु कहू निकरै रबि को रथ मांझ अकास अरै री ।
रैंन यहै गति है रसखानि छपाकर आँगन ते न टरै री ।
औस निस्वास चल्योई करै निसिद्यौस की आसन पाय करै री ।
तेरो न जात कछू दिन राति बिचारै बटोही की बाट परै री ।।'

४ 'प्रेम-कथानि की बात चले चमकै चित चचलता चिनगारी ।
लोचन बक बिलोकनि लोलनि बोलनि मै बतिया रसकारी ।
सोहै तरग अनग की अगनि कोमल यौ झमकै झनकारी ।
पूतरी खेतत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी ।।'

५ 'जाको लसै मुख चद समान कमानी सी भौह गुमान हरै ।
दीरघ नैन सरोजहु तै मृग खजन मीन की पॉत दरै ।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधिन जाहि टरै ।
जिहि नीकै नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै ।।'

इस प्रकार रसखान ने रूप का वर्णन काफी विस्तार से किया है । माधुर्य भक्ति की सफल अभिव्यजना के लिए यह विस्तार आवश्यक भी है ।

माधुर्य भक्ति का दूसरा अग है विरह-वर्णन । रसखान ने इस अग का भी काफी विस्तार से वर्णन किया है । सारे बागो मे फूल खिल गये है । बसन्त के आगमन के कारण भौरे उन पर गूँज रहे है । कोयल की कू-कू सुनकर सबके प्रिय विदेश से वापिस लौट चले है, लेकिन कृष्ण इतने कठोर हैं कि वे इस मादक ऋतु की तनिक भी चिन्ता नही करते । जब कोयल बोलती है तो कृष्ण की प्रियतमा के हृदय मे वह बरछी के समान लगती है—

'फूलत फूल सबै वन बागन बोलत भौर बसंत के आवत ।
कोयल की किलकार सुनै सब कंत बिदेसन ते सब आवत ।
ऐसे कठोर महा रसखान जू नेकहु मोरी ये पीर न पावत ।
हूक सी सालत है हिय मैं जब वैरिन कोयल कूक सुनावत ।।

वियोग के कारण विरहिणी के शरीर की द्युति मन्द पड गई है। उसका कमल जैसा कोमल मुख भी मुरझा गया है। उसके हृदय की साँसे लपट बनकर जलने लगी हैं। ऐसे ही अवसर पर जब उसे यह सूचना मिलती है कि उसका प्रियतम आ गया है तो उसकी क्षीण होती हुई शरीर द्युति इस प्रकार दमक उठती है मानो दिये की बाती उकसा दी हो—

'रसखान सुनाहु वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की ।
पंकज सी मुख गौ मुरझाय लगी लपटै बरै स्वास हिया की ।
ऐसे मे आवत कान्ह सुने हुलसै सुतनी तरकी अँगिया की ।
यो जग जोति उठी तन की उकसाय दई मनो बाती दिया की ।।'

विरह वर्णन मे कही-कही रसखान परम्परा से इतने जडीभूत हो गये है कि भावलोक की क्षति का ध्यान भी भूल गये है और परम्परा के अबाध प्रवाह मे बह गये है। यथा—

'विरहा की जु आँच लगी तन मे तब जाय परी जमुना जल मे ।
विरहानल तें जल सूखि गयौ मछली वही छाँड़ि गई तल मे ।
जब रेत फटी रु पताल गई तब शेष जर्‌यौ धरती-तल मे ।
रसखान तबै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगै गल मे ।।'

अर्थात् जब विरहिणी के शरीर मे वियोग-दुख की अग्नि बढ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना के जल मे कूद गई। तब विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के अभाव के कारण यमुना के तल मे बैठ गई। उस आग के कारण जब यमुना का जल अत्यन्त गरम हो गया तो उसकी गरमी से पाताल-लोक मे स्थित शेपनाग भी जलने लगा। रसखान कहते है कि यह ज्वाला तभी शात हो सकती है जब कृष्ण उसके गले से आकर लगेगे।

लेकिन सर्वत्र ऐसी ऊहात्मकता नही है। एक भावपूर्ण कवि के लिए यह

संभव भी नही था। यथा —

'बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हियै जिन ढारौ।
कंज की माल करौ जु बिछावन होत कहा पुनि चंदन गारौ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखान कों काहे को जारै पै जारौ।
चाहति हौ जु जिवायौ पटू तौ दिखावौ बडी बडी आँखिनवारौ।।'

इस सवैया मे हृदय की सहज भावनाएँ मुखरित है। विरहिणी के विरह का सच्चा इलाज यही है कि उसका प्रियतम उसे मिल जाये। अन्यथा अन्य इतर उपचारो मे कोई लाभ नही है। इसीलिए तो विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि मेरे हृदय पर गुलाबजल और खस छिडकना बेकार है। कज-माला का बिछावन करने मे तथा चदन का लेप करने से भी कोई लाभ नही है। ये सारे उपचार व्यर्थ है, वरन् ये तो मेरी पीडा को, जलन को, और भी अधिक बढाते है। हे सखि! यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मुझे विशाल नेत्र वाले कृष्ण का दर्शन करा दो। यही एकमात्र उपचार मेरे विरह-रोग को ठीक कर सकता है।

माधुर्य भक्ति का तीसरा प्रमुख अंग है पूर्णतया आत्मसमर्पण। जब तक भक्त स्वयं को अपने अराध्य के प्रति पूर्णतया समर्पित नही कर देगा, तब तक उसका उसके प्रति प्रेम और विश्वास अधूरा ही रहेगा। रसखान को अपने अपराध पर पूर्ण विश्वास है। उसके सरक्षण मे ये सब पकार के दुखो से तथा कष्टो से स्वय को सुरक्षित समझते है—

'कहा करै रसखानि को, कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है, माखनचाखनहार।।'

इसीलिए इनका मन कृष्ण के लिए चातक बना हुआ है —

'विमल सरस रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि।
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि।।'

अपने अराध्य के प्रति इनका इतना घनिष्ठ स्नेह है कि ये युग-युगान्त तक उसका सान्निध्य प्राप्त करना चाहते है। इनकी इच्छा है कि यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य-योनि मिले तो मैं व वही मनुष्य बनूँ जिसे ब्रज और गोकुल के ग्वालों के मध्य खेलने का अवसर मिले। यदि पशु-योनि मिले तो उस गाय का

जो नंद की गायो के साथ विचरण कर सके। यदि पाषाण-योनि मिले तो उसी पर्वत की शिला बनू जिसे कृष्ण ने इन्द्र का गर्व खडित करने के लिए अपने हाथ से उठाया था और यदि पक्षी बनू तो मुझे यमुना-तट पर उगे हुए कदम्ब-वृक्षो पर निवास करने का अवसर मिले –

'मानुष हौं तो वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौ तौ बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।।'

इसी प्रकार ये अपने शरीरावयवो की सार्थकता इस बात मे मानते है कि वे आराध्यदेव के काम आये –

'जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करै करनी जु पै-कुंज कुटीरन देहु बुहारन।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज-रेनुका-अंग-सवारन।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही कालिन्दी-कूल कदंब की डारन।।'

और—

बैन वही उनको गुन गाइ और कान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाप वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी।।

उस आराध्यदेव के समक्ष दुनिया का सारा वैभव तुच्छ और निस्सार है। कोई व्यक्ति चाहे जितना वैभव सचित कर ले, यदि उसकी कृष्ण मे भक्ति नहीं है तो उसके सचित वैभव का कोई मूल्य नही, क्योकि कृष्ण की भक्ति ही सर्वोच्च और सत्य वैभव है—

'संपति सौं सकुचाइ कुबेरहि रूप सौं दीनी चिनौती अनंगहि।
भोग कै कै ललचाइ पुरन्दर जोग कै गग लई घर मगहि।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि रसै रसना जौ जु मुक्ति-तरगहि।
पै चित ताके न रग रच्यौ जु रह्यो रचि राधिका रानी के रंगहि।।'

× × × ×

'कंचन-मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाय सदा झलकैयत।
प्रात ही ते सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि जौ साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत॥'

× × × ×

'कहा रसखानि सुखसम्पत्ति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोए वीच जल,
कहा जीति लाए राज सिन्धु आर-पार को।
जप बार बार तप सगम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को।
कीन्हौ नही प्यार नही सैयौ दरबार चित,
चाह्यौ न निहार्‌यौ जौ पै नन्द के कुमार को॥'

× × × ×

'कचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सो।
और प्रभुताई अब कहाँ लौ बखानौ, प्रति,
हारन की भीर भूप हटत न द्वारे सो।
गगाजी मैं न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद,
बीस बार गाई ध्यान कीजत सबारे सो।
ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जो पै,
चित्त दै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सो॥'

इन उद्धरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि रसखान के मन में अपने आराध्य के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, विश्वास एवं अनुराग है। किन्तु अन्य कृष्ण-भक्तो की भाँति इनका हृदय सकीर्ण नही है। सूरदास कृष्ण को छोडकर अन्य देव की उपासना इसी प्रकार हास्यास्पद समझते है जिस प्रकार कामधेनु को छोड-कर छेरी का दूध निकालना। पर रसखान मे यह सकीर्णता नही है। ये यद्यपि कृष्ण के प्रति अपनी पूर्ण आस्था प्रकट करते है, पर शिव और गंगा के प्रति

भी इनके मन मे श्रद्धा भाव है। शिव की स्तुति करते हुए ये कहते हैं—

'यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सो धूलि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अटकै लटकै फनि सो कफनी फहरावत है।
रसखानि जेई चितवै चित दै तिनके दुख-द्वन्द भजावत है।
गज-खाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत है।।'

गगा-महिमा से सम्बद्ध इनके दो सवैये उपलब्ध हैं। वे ये है—

१. 'इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि अधिक ओठ पै अधिक नाद से बाजत री।
रसखानि पितम्बर एक कँधा पर एक वघम्बर राजत री।
कोउ देखउ सगम लै वुडकी निकसे यहि भेख सो छाजत री।।'

२. 'वेद की औषद खाई कछु न करै वहु सजम री सुनि मोसे।
तो जल-पान कियो रसखानि सजीवनि जानि लियो रस तोसे।
ऐ री सुधामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य वनै तोहि पोसे।
आक धतूरो चवात फिरै विख खात फिरै शिव तेरे भरोसे।।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि रसखान वल्लभाचार्य की परम्परा में आते है, पर ये इस परम्परा के भक्तो की भाँति नियमो का कठोर पालन करके नहीं चले है। नियमो की अपेक्षा इनकी भक्ति पद्धति भावो पर अधिक आधृत है। यही कारण है कि इनके मन मे जितनी कृष्ण के प्रति आस्था है, उतनी ही अन्य देवताओ के प्रति विशेषत: गगा और शिव के प्रति। उदार मन की यह उदारता रसखान के अतिरिक्त न तो अन्य कृष्ण-भक्तो मे मिलती है और न स्वच्छन्दवादी कवियो मे।

रसखान की रस-योजना

रस काव्य की आत्मा है, अतः प्रत्येक सजीव काव्य के लिए रस-योजना अनिवार्य है। भावपूर्ण कवियो के काव्य मे रस-योजना श्रमसाध्य नही होती, वरन् स्वाभाविक होती है। विविध रसो की योजना रसखान का ध्येय नही है। ये तो भक्त है और भक्ति के आवेश मे आकर ही इनकी वाणी फूटी है। इनकी भक्ति माधुर्य भाव की है। अत· शृंगार रस की योजना ही इनके काव्य मे पाई जाती है। भक्त होने के नाते इनकी इस शृ गारिक योजना को अलौकिक शृंगार के अन्तर्गत ही परिगणित किया जायेगा।

शृंगार रस के दो भेद होते है—सयोग शृंगार और वियोग शृंगार। इन्हे ही क्रमशः सम्भोग शृ गार और विप्रलम्भ शृंगार कहते है।

संयोग शृंगार

सयोग शृंगार के अन्तर्गत नायक और नायिका के मिलन की अवस्था एवं तज्जन्य आनद का वर्णन होता है। यह मिलन-अवस्था एकदम नही आती, बल्कि इसे प्राप्त करने के लिए दोनो को अनेक सोपान पार करन पड़ते है। पहले वे अचानक मिलते हैं, एक-दूसरे को देखते है और पारस्परिक रूप का लावण्य उन्हे सान्निध्य प्राप्त करने को प्रेरित करता है। तत्पश्चात् उन दोनो की प्रेम-क्रीडाएँ चलती है। सयोग शृंगार के अन्तर्गत मुख्यतया तीन बातो का वर्णन किया जाता है—

१ रूप-वणन।

२ प्रेम-व्यापार का वर्णन।

३ नायिका-भेद-वर्णन।

१. रूप-वर्णन रूप अथवा सौन्दर्य के प्रति आकर्षण प्रेम का प्रथम सोपान है। नायक नायिका के सौन्दर्य से और नायिका नायक के सौन्दर्य के कारण ही दोनो एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। हिन्दी मे विशेषत. रीतिकालीन

साहित्य मे—केवल नायिका के सौन्दर्य का ही वर्णन किया गया है। यह वर्णन एकागी है। रसखान ने नायक और नायिका—कृष्ण और राधा—दोनो के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए इन्होंने बताया है कि उस नटवर कृष्ण के गले में मोतियों की माला पडी हुई है। उनकी घूँघरवारी केश-राशि लटक रही है। अंग के प्रत्येक भाग मे जड़ाऊ आभूषण और सिर पर जरी वाली पगडो सुशोभित है। ऐसे सौन्दर्य के दर्शन पूर्ण पुण्यो के कारण ही हुआ करते हैं—

'मोतिन माल बनी नट के लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अग ही अग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चार्‍यौ दिसानि की लै छबि आनि कै झाँके झरोखे मैं बाँके बिहारी॥'

कृष्ण जब शाम को गाय चराकर अपने अन्य साथियो के साथ वन से वापिस लौटते है तो उस समय उनका जो सौन्दर्य होता है, उसे देखकर ब्रज की बनिताएँ अपने सारे दिन की थकान को भूल जाती है—

'आवत हैं बन तें मनमोहन गाइन संग लसै ब्रज-ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याल।
हेरत हेरि ककै चहूँ ओर तें झाँकि झरोखन तें ब्रज-बाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यो सब द्योस को ताप-कसाला॥'

कृष्ण जितने सुन्दर है, उनकी वाणी में उतना ही माधुर्य है और कुंजो मे घूमने फिरने की उतनी ही आकर्षणमयी आतुरता है। जो भी गोपी उनके सौन्दर्य को तथा उनकी सुन्दर चेष्टाओ को देख लेती है, वह उनके सौन्दर्य-सागर मे डूबे बिना नही रह पाती—

'अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गांठन खोलत है।
सुन री सजनी अलबेलो लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है।
रसखानि लखें मन बूड़ि गयौ मधि रूप के सिन्धु कलोलत है॥'

जो भी गोपी कृष्ण के सौन्दर्य को देख लेती है, वह दीवानी बन जाती है, कृष्ण का सौन्दर्य उसके हृदय मे अटक जाता है—

'तैं न लख्यौ जब कुंजनि तें बनिकैं निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ उठ कैसो किरीट लसै लटक्यौ री।
को रसखानि फिटै फटक्यौ हटक्यौ ब्रजलोग फिरै भटक्यौ री।
रूप सबै हरि वा नट को हियरे अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री ।।'

जितना मधुर कृष्ण का शरीरगत सौन्दर्य है, उतना ही आकर्षक उनका चेष्टागत सौन्दर्य भी है। उनके वक्र नेत्रो की मार इतनी पैनी और प्रभावशाली है कि जिस गोपी पर भी वह पड जाती है, वह अपनापन भूल जाती है और क्षणभर को भी कृष्ण-स्मृति को नही छोड पाती—

'नैननि बक्र बिसाल के बाननि झेलि सकै अरु कौन नवेली।
बेधत है हिय तीछन कोर सुमार गिरी तिय कोटिक हेली।
छोडै नही छिनहूँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सो जनु बेली।
रौरि परी छबि की ब्रजमडल कुंडल गंडनि कुंतल केली ।।'

कृष्ण की वाणी और उनकी चंचल दृष्टि विलक्षण है। उनके कपोलो पर कुंडलो की छबि हाथी के गडस्थल पर पडी हुई छवि की भाँति अद्वितीय है। जव वे वृक्ष की डाली पकड़कर त्रिभंगिमा से खडे होते हैं तो उस समय उनकी जो शोभा होती है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उनकी सरस मुस्कान तो वशीकरण मत्र है ही—

'अलबेलो विलोकनि बोलनि औ अलबेलियै लोल निहारन को।
अलबेली सी डोलनि गडनि पै छबि सों मिलि कुंडल वारन की।
भटू ठाढौ लख्यौ छबि कैसे कहौ रसखानि गहे द्रुम डारन को।
हिय मैं जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की ।।'

उनके विशाल नेत्र सुख देने वाले है, उनके कपोल पुष्ट हैं, वाणी मे माधुर्य है, हँसी मे आकर्षण है, मुख मे चन्द्रमा जैसी सुन्दरता और स्निग्धता है। इस सौन्दर्य-राशि को देखकर सभी गोपियाँ इसकी मनोहरता पर मोहित हो जाती है—

'बाँकी बडी अँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि कों कल वानी।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रग सुधारस-सानी।
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डोलति है बन बीथिन मे रसखानि मनोहर रूप लुभानी ।।'

रसखान ने जिस प्रकार कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया है, उसी प्रकार राधा के सौन्दर्य के भी अनेक चित्र चित्रित किये है। राधा के नेत्रो मे वह सुन्दरता तथा मादकता है, मानो ब्रह्मा ने ससार को प्यासा जानकर उसकी तृप्ति के लिए उसके नेत्रो मे सुधा-सागर भर दिया है। मुख इतना सुन्दर है जैसे अपने समस्त अमृत-सार को सजोकर चन्द्रमा स्वय उपस्थित हो गया हो। उसके शरीर का गठन ऐसा है जैसे सोने मे मणिमुक्ताओ को जड़ने के लिए कुशल जड़िया यौवन ने रत्न जड़ने के लिए स्थान-स्थान पर सुन्दर स्थान निर्धारित किये हुए हो। उसके अधरो की लाली काम-कामना के समान सुशोभित है। उसकी नासिका का छिद्र उस भौरे के समान है जिसमे पड़कर ज्ञान की नौका का गर्व नष्ट हो जाता है और उसकी मनोहर चिबुक पर तो सैकड़ो रति और रम्भा की शोभा को न्यौछावर किया जा सकता है—

'कैधो रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि कै पियूष पूष कीनो विधि चंद घर।
कैधो मनि मानिक बैठारिबे को कंचन मैं,
जरिया जोवन जिन नरिपा सुघर घर।
कैधो काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैधो यह भौर ज्ञान बोहित गुमान हर।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रम्भा की,
वारि डारो तेरी चित्तचोरनि चिबुक पर॥'

राधा का मुख इतना सुन्दर है कि उसकी सुन्दरता का किसी भी प्रकार वर्णन नही किया जा सकता। उसका सौन्दय प्रकाशित करने वाला है। उसके रूप का बोध वही व्यक्ति कर सकता है जिसने नक्षत्रों की अनुपम शोभा को देखा है। उसके मस्तक पर लगा हुआ टीका इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो चन्द्रमा अपनी गोद मे मगल को लिये हुए हो—

'श्री मुख यो न बखान सकै वृषभान सुता जू को रूप उजारो।
हे रसखान तू ज्ञान सभार तरैनि निहार जु रीझनहारो।
चारु सिन्दूर को लाल रसाल लसै ब्रज बाल को भाल टिकारो।
गोद मे मानौं विराजत है घनश्याम के सारे की सारे को सारो॥'

राधा का यह स्वाभाविक सौन्दर्य सौन्दर्य-साधक उपकरणो से विभूषित होता है तो उसकी शोभा द्विगुणित हो जाती है। उसका गहरे लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है। उसकी काली केश-राशि भौंरो के समान सुशोभित है। काले रेशम की डोरियों मे बँधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भांति शोभा-सम्पन्न हैं। उसके मोती कदम्ब और आम की मंजरियो के समान शोभायमान है। उसकी वाणी मे इतना माधुर्य है कि उसके बचनो को सुनकर कोयल भी लज्जित हो जाती है—

'अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली ! अलि कुंतल राजत है।
मखतूल समान के गुंज धरानि मै किंसुक की छवि छाजत है।
मुकता के कदम्ब ते अम्ब के मौर सुने सुर कोकिल लाजत है।
यह आवनि प्यारी जु की रसखानि बसन्त-सी आज विराजत है।"

जब राधा ने अपने शरीर पर चन्दन का लेप कर लिया तो वह ऐसी प्रतीत होने लगी मानो चन्द्रमा की पत्नियो तारिकाओ को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी सात्विक शोभा को बाहर निकालकर वह सुधा की मानसपुत्री बैठी हो। उसके कुचो के बीच मे हार का चन्दा इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर मे जड दिया गया हो, अथवा वह दृग-बाणों का घाव दमक रहा हो, अथवा-श्वेत पर्वत के संधि-स्थान मे कोई जलाशय हो—

'तन चन्दन खौर के बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी,
मनो इन्दुबधून लजावन कौ सब ज्ञानिन काढि धरी गन-सी।
रसखानि बिराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन-सी।
दमकै दृग-बान के घायन कौ गिरि सेत के संधि के जीवन-सी'।

कहीं-कहीं राधा-सौन्दर्य का अत्त्युक्तिपूर्ण वर्णन श्री रसखान ने किया है—

'वासर तूँ जु कहूँ निकरै रवि को रथ माँझ अकास अरै री।
रैन महै गति है रसखानि छपाकर आँगन तैं न टरै री।
द्यौस निस्वास चल्यौई करै निसि द्यौस की आसन पाय धरै री।
तेरो न जात कछू दिन राति विचारे बटोही की बाट परै री।'

हे राधा ! यदि तू दिन मे अपने घर से बाहर निकल जाती है तो तेरे सौन्दर्य से सूर्य इतना चकित हो जाता है कि उसका रथ आकाश मे ही रुक

जाता है, अर्थात सूर्य अपनी गति भूलकर एकटक तुझे ही देखता रह जाता है। तेरा सौन्दर्य देखकर चन्द्रमा तेरे घर के आँगन मे ही ठहर जाता है और आगे नही बढता। दिन मे तो पवन चलता ही रहता है, पर रात मे भी वह दिन की आशा से तेरे पीछे लगा रहता है, अर्थात् तेरी सुगध का लोभी पवन रात-दिन तेरे इर्द-गिर्द चलता रहता है। इस पवन के रात-दिन चलते रहने के कारण तेरा तो कुछ नही बिगडता, पर बेचारे पथिक का रास्ता रुक गया है; अर्थात् पवन-वेग के कारण वह अपने माग पर नही चल पाता।

२. प्रेम-व्यापर का वर्णन — जिस प्रकार रसखान ने रूप का पर्याप्त विस्तार से वर्णन किया है, उसी प्रकार प्रेम-व्यापार का भी किया है। यह व्यापार कुंजलीला, रासलीला, दानलीला और फागलीला मे विशेष रूप से मुखरित हुआ है।

कोई गोपी कृष्ण से मिलकर आई है। अपनी मिलन-दशा का वर्णन वह अपनी सखी से करती है कि हे सखि! मैं आज प्रात काल जब कुंजगली से निकली तो अचानक कृष्ण से भेट हो गई। कृष्ण के मुख की मुस्कान मे मेरा मन इतना अधिक डूब गया कि वह उस मुस्कान की छवि पर मे नही हटता, हटाने पर भी नही हटता। उस मुस्कान ने मेरे नैनो को बाँध लिया, चित को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फंदा डाल दिया। तुम्ही बताओ, अब मैं क्या करूँ? मेरे चित्त मे बसा हुआ कृष्ण कैसे बाहर निकाला जा सकता है। उस आनद-सागर कृष्ण के सौन्दर्य ने तो मेरे सारे शरीर को ही घेर लिया है—

'कुंजगली मै अली निकसी तहाँ साँवरे ढोटा कियौ भटनेरो।
माई री वा मुख की मुसकान गयौ मन बूडि फिरै नहिं फेरो।
डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डार्‌यौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करौ अब क्यौ निकस्यो रसखानि पर्‌यौ तन रूप को घेरो।'

रासलीला मे प्रेम-व्यापारो का कुंजलीलाओ की अपेक्षा अधिक वर्णन है। रासलीला के समय नटखट कृष्ण अपनी बाँसुरी मे जिस गोपी का नाम ले देते हैं वह तो अपना सर्वस्य भूलकर कृष्ण के ऊपर न्यौछावर ही हो जाती है—

अधर लगाइ रस प्याइ बाँसुरी बजाइ,
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियौ मन मैं।

नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करिकै अचेत चेत हरिकै जतन मैं।
झटपट उलट पुलट पट परिधान,
जान लागी लालन पै सबै बाम वन मैं।
रस रास सरस रंगीलो रसखानि आनि,
जानि जोर जुगुति बिलास कियौ जन पै'।

कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि जब कृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजाई और मेरा नाम उसमे गाया तो मेरे मन पर वह जादू कर गया। नटखट, युवक और सुन्दर कृष्ण ने मुझे अचेत करके यत्नपूर्वक अपने ध्यान मे लगा लिया, अर्थात् मेरी वह अवस्था कर दी कि मै उसके बिना नही रह सकती थी। बासुरी की ध्वनि को सुनकर सारे ब्रज की स्त्रियाँ जल्दी से अपने वस्त्रो को उलटा-सीधा पहनकर वन मे पहुँच गईं। तब सुन्दर रास रचने वाले सरस और रंगीले कृष्ण ने वहाँ आकर रास-लीला की तथा युवतियों का समूह एकत्र करके उनके साथ आनन्द मनाया।

'आज भटू मुरली-बट के तट नन्द के साँवरे रास रच्यौ री।
नैननि सैननि बैननि सो नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री।
जद्यपि राखन कौं कुल-कानि सबै ब्रज-बालन प्रान बच्यौ री।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानी को अंत लच्यौ पै लच्यौ री॥'

अर्थात् जब कृष्ण ने मुरली-बट के नीचे रास रचा तो उन्होने प्रेम की सभी भंगिमाओ का प्रदर्शन किया, कोई भी भाव उनसे बचा न रह सका। उनकी भगिमाओ को देखकर ब्रज-वनिताएँ इतनी भाव-विभोर हुईं कि प्रयत्न करने पर भी वे अपनी कुल-मर्यादा को न बचा सकी, अर्थात् कृष्ण के वशीभूत हो ही गईं।

फागलीला मे प्रेम-व्यापारो का रूप और भी अधिक स्पष्ट है। इसी लीला का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! कल गोकुल का एक ग्वाला कृष्ण) चारो ओर की गोपियों को घेरकर, भाँवर रचा कर, धूम मचा गया। वह बाँकी बाँसुरी की तान सुनाकर तथा हृदय को उल्लसित करके सहज स्वभाव से सब गाँव वालो को ललचा गया है। वह अपनी

पिचकारी चलाकर तथा समस्त युवतियों को प्रेम से भिगोकर और अपनी आँखों को नचाकर मेरे सारे अंगों को नचा गया है। वह हमारी ही गली में मेरी सासु को तथा भोली ननद को नचाकर और पुराने वैरी को बदला लेकर मुझे लज्जित कर गया—

'गोकुल को ग्वाल काल्हि चौमुँह की ग्वालिन सों,
                    चाँचर रचाइ एक धूमहि मचाइगो।
हियो हुलसाय रसखानि तान गाइ बाँकी,
                    सहज सुभाइ सब गाँव ललचाइगो।
पिचका चलाइ और जुवती भिजाइ नेह,
                    लोचन नचाइ मेरे अंगहि नचाइगो।
सासहि नचाइ भोरी नंदहि नचाइ खोरी,
                    वैरनि सचाइ गोरी मोहि सकुचाइगो॥'

कृष्ण पर फागलीला का इतना अधिक भूत सवार है कि वे रास्ते में आती-जाती ग्वालिनों को भी नहीं छोड़ते। इतनी जबरदस्ती से उनके मुख पर गुलाल मलते हैं कि उनकी साड़ियाँ भी फट जाती हैं, पर वे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करते। यहाँ तक कि मनचाही किये बिना वे किसी को नहीं छोड़ते। ऐसी ही एक घटना का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से कर रही है—

'आवत लाल गुलाल लियें मग सूने मिली इक नार नवीनी।
त्यों रसखानि लगाइ हियें भटू मौज कियो मन माहि अधीनी।
सारी फटी सुकुमारी हटी अँगिया दरकी सरकी रंग भीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अक रिझाइ बिदा करिदीनी॥'

दानलीला में भी प्रेम के ये व्यापार पूर्णतया मुखरित हुए हैं। एक उदाहरण देखिए—

'छीर जो चाहत चीर गहे एजू लेउ न केतिक छीर अचैहौ।
चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहौ।
जानति हौं जिय की रसखानि सु काहे कौं एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्हजू नेकु न पैहौ॥'

अब हम देखते हैं कि रसखान ने प्रेम-व्यापारों का पर्याप्त और सफल

चित्रण किया है ।

३. नायिका-भेद—प्रेम-व्यापार में नायिका को प्रमुख स्थान दिया गया है, अत· इसके भेदों के वर्णन का विधान भी सयोग शृंगार के अन्तर्गत किया जाता है। रसखान आचार्य नही, कवि हैं। अत· यह आवश्यक नही कि सभी काव्यशास्त्रीय विधान इनके काव्य मे उपलब्ध हो। जहाँ तक नायिका-भेद का प्रश्न है, इस ओर से ये प्राय· उदासीन ही रहे हैं। इस उदासीनता का कारण इनका भक्त-हृदय है। फिर भी कुछ नायिकाओ के भेद इनके काव्य मे स्वतः आ ही गये हैं। यथा—

'बाँकी मरोर गही भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि ते दुति दूनी हिया की।
सोहैं तरग अनंग की अगनि ओप उरोज उठी छतिया की।
जोबन-जोति सु यौं दमकै उसकाइ दई मनोबाती दिया की।।'

इसमे मुग्धा नायिका की वय सधि का वर्णन है। और—

'जो कबहूँ मग पांय न देत सु तो हित लालन आपुन गौनै।
मेरो कह्यौ करि मौन तजौ कहि मोहन सो बलि बोल सलौने।
सौहैं दिवावत ही रसखानि तूँ सौहै करै किन लाखनि लौने।
नोखी तूँ मानिनि मान कहयो किन आन बसंत मै कीनो है कौने।।'

× × ×

'मान की औधि है आधी घरी अरी जौ रसखानि डरै हित कें डर।
कै हित छोडियै पारियै पाइनि ऐसे कटाछनही हियरा-हर।
मोहनलाल को हाल विलोकियै नेकु कछू किनि छ्वै कर सो कर।
नाँ करिबे पर वारे है प्रान कहा करि हैं अब हाँ करिबे पर।।'

इन सवैयो मे मानवती नायिका का वर्णन है।

'खेलै अलीजन के गन मै उत प्रीतम प्यारे सो नेह नवीनो।
बैनिन बोध करै इत कौ, उत सैननि मोहन को मन लीनो।
नैननि की चलिबी कछु जानि सखी रसखानि चितवै कौ कीनो।
जा लखि पाइ जंभाइ गई चुटकी चटकाइ बिदा कर दीनो।।'

यहाँ क्रियाविदग्धा नायिका है। यह नायिका अपने प्रेम-व्यापारो को अपनी क्रियाओ के द्वारा छिपाने का प्रयास करती है।

'नाह-वियोग बढ्यो रसखानि मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सो मुख गो मुरझाय लगी लपटैं बरि स्वास हिया की।
ऐसे मैं आवत कान्ह सुने हुलसैं तरकी सु तनी अंगिया की।
यो जग जोति उठी अंग की उसकाइ दई मनो बाती दिया की॥'

इसमे आगतपतिका है, क्योकि विरहिणी को उसके प्रियतम के आने का समाचार मिल गया है।

नायक और नायिका का सयोग कराने मे नायिका की सखियो का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वे उसे प्रेरित करके नायक के पास भेज ही देती हैं। निम्नलिखित सवैये मे अपनी सखी को प्रेरित करती हुई एक गोपी कहती है कि न जाने मिलन का ऐसा अवसर फिर मिले या न मिले, अत. तुम शीघ्र ही कृष्ण से जाकर मिल लो—

'सोई है रास मैं नैसुक नाचि कै नाच नचायो कितो सबनै जिन।
सोई है री रसखानि किते मनुहारिन सूधें चितौत न दो छिन।
तो मैं धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयौ बस हाहा करी तिन।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिरि लंगर मोड़ो कनौड़ो करै बिन॥'

संयोग-शृंगार के अन्तर्गत रसखान ने मिलन का वर्णन भी किया है और सुरत का भी। मिलन का वर्णन इस सवैये मे निहित है—

'एक समै इक ग्वालिन को ब्रजजीवन खेलत दृष्टि पर्यो है।
बाल प्रवीन सकै करिकै सरकाइ कै चीरन चीर धर्यौ है।
यौ रस ही रस ही रसखानि सखी अपनो मनभायो कर्यो है।
नन्द के लाडिले ढाँकि दै सीस हहा हमरो उरु हाथ भर्यौ है॥'

रसखान ने सुरत और सुरतान्त का भी वर्णन किया है। यथा—

'वह सोई हुती परजंक लली लला लीनो सु आइ भुजा भरिकै।
अकुलाइ कै चौंकि उठी सु डरी निकरी चहै अंकनि तें फरिकै।
झटका झटकी मैं फटी पटुका दरकी अंगिया मुकता फरिकै।
मुख बोल कढे रिस से रसखानि हटो जू लला निबिया धरिकै॥'

इस सवैये मे सुरत का वर्णन है। नायिका पलंग पर सोई हुई थी कि अचानक कृष्ण वहाँ पहुँच गए और उसे अपनी बाहुओ के पाश मे बाँध लिया। वह

आकुल होकर और भयभीत होकर जग गई। उसने काफी जोर लगाया कि वह स्वय को उस आलिंगन से मुक्त कर ले, पर उस सघर्ष मे उसकी चोली और फट गई। तब उसने रोष मे भरकर कृष्ण की भर्त्सना करनी शुरू कर दी। सुरत का यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है। और—

'सोई हुती पिय की छतियां लगि बाल प्रवीन महा मुद मानै।
केस खुले छहरै बहरै फहरै छबि देखत मैन अमानै।
वा रस मैं रसखानि पगी रति रैन जगी अँखियाँ अनुमानै।
चन्द पै बिम्ब और बिम्ब पै कैरव कैरव पै मुकतान प्रमानै॥'

इन विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि रसखान का संयोग-वर्णन पूर्ण और सफल है। रूप-प्रभाव से लेकर सुरतान्त तक के चित्रण इनके काव्य म मिलते है।

वियोग-वर्णन

जब किसी कारण से नायक और नायिका एक-दूसरे से दूर हो जाते है तो इस दशा को वियोग की दशा कहते है और यह दशा वियोग या विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत आती है। प्राय सभी कवियो ने संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग-शृंगार को अधिक महत्त्व दिया है। इसका कारण यह है कि सयोग की अपेक्षा वियोग में पुन स्थितियाँ अधिक व्यापक और भावुक बन जाती है। जिस प्रकार अग्नि मे तपाने पर रग मे उज्ज्वलता और परिपक्वता आती है, उसी प्रकार वियोगाग्नि मे जलकर मन के सात्विक भाव शुद्ध, परिष्कृत और परिपक्व बन जाते है।

वियोग-शृंगार के चार भेद माने गये है—

१. पूर्वराग
२. मान
३. करुण
४. प्रवास

पूर्णराग मे प्रिय के गुण-कथन अथवा श्रवणमात्र से ही उससे मिलने की इच्छा उत्कट हो जाती है और उसका अभाव खटकने लगता है। मान मे नायिका का रूठना आता है। कुछ आचार्य मान विप्रलंभ को अधिक महत्त्व नहीं देते।

इसका कारण यह है कि मान की स्थिति मे वस्तुत वियोग होता ही नही है, क्योकि रूठने पर भी नायक और नायिका साथ-साथ तो रहते ही है और एक दूसरे के दर्शन करते रहते है। अत यह स्थिति न तो करुण है और न प्रभाव शाली। प्रवास विप्रलम्भ तब होता है जब किसी कारण से नायक विदेश चला जाता है। किसी शाप या प्रेम-मात्र की मृत्यु के कारण जो विरह-भावना होती है, वह करुण विप्रलम्भ के अन्तर्गत आती है। इस स्थिति को भी आचार्य अधिक महत्त्व नही देते, क्योकि मृत्यु के उपरान्त तो सारा खेल ही समाप्त हो जाता है और तब सन्तोष तथा धैर्य की भावना का प्राधान्य हो जाता है। ये भावनाएँ कारुणिक भावो को जागृत करने मे बाधक है।

रसखान-काव्य मे वियोग की पृथक तीन स्थितियाँ ही मिलती है। यथा—

पूर्वराग—

१ 'लोक की लाज तज्यौ तबही जब देख्यौ सखी ब्रजचन्द सलोनो।
खंजन मीन सरोजन की छवि गजन नैन लला दिन होनो।
हेरे सम्हारि सकै रसखानि सो कौन तिया वह रूप सुठोनो।
भौह कमान सो जोहन को सर बेधत प्राननि नन्द को छोनो॥'

२. 'उनही के सनेहन सानी रहैं उनही के जु नेह दिवानी रहैं।
उनही की सुनै न औ बैन त्यौ सैन सो चैन अनेकन ठानी रहैं।
उनही सग डोलन मैं रसखानि सबै सुख सिन्धु अघानी रहै।
उनही बिन ज्यौ जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी अँसुवानी रहै॥'

मान—

'प्रिय सों तुम मान कर्यौ कत नागरि आजु कहा किनहूँ सिख दीनी।
ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनी बरुनी पग पोछै नवीनी।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख नैननि चैन महारस भीनी।
रसखानि न लागत तोहि कछू अब तेरी तिया किनहूँ मति छीनी॥'

प्रवास—

उपर्युक्त दोनो स्थितियो की अपेक्षा रसखान ने प्रवास-विप्रलभ का अधिक वर्णन किया है प्रियतम के विदेश चले जाने पर बीती बातें एक एक करके विरहिणी के मस्तिष्क मे आती रहती हैं और उसे व्यथित करती रहती हैं,

उसकी व्यथा को बढाती रहती हैं। जब भी प्रिय की बाते चलती हैं, विरहिणी को बीती घटनाएँ स्मरण हो आती है—

'प्रेम कथानि की बात चलै चमकै चित चंचलता चिनगारी।
लोचन बक विलोकनि लोलनि बोलनि मे बतियाँ रसकारी।
सोहै तरग अनग की अगनि कोमल यौ झमकै झमकारी।
पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी॥'

लेकिन अब चौपड खेलने का अवसर कहाँ? उसका प्रिय तो विदेश मे बैठा हुआ है। केवल स्वप्न मे ही उससे मिलन हो सकता है—

'काहू कहूँ रतियाँ की कथा बतियाँ कहि आवत है न कछू री।
आइ गोपाल लियौ परि अक कियौ मनभायो पियौ रस कूँ री।
ताही दिना सो गडी अखियाँ रसखानि मेरे अग-अंग मे पूरी।
पै न दिखाई परै अब बावरी दै कै वियोग बिथा की मजूरी॥'

'वियोग बिथा की मजूरी, देने वाला प्रियतम अपनी क्रूरता का संबल लेकर नायिका को सदैव तडपाता रहता है, उसे अहर्निश व्यथित करता रहता हैं। नायिका का भोलापन केवल इतना था कि वह उसकी मुस्कान पर, उसकी बाँसुरी की तान पर और उसके मंजूल मुख पर स्वय को न्यौछावर कर बैठी। इससे वियोग-व्यथा भी मिली और समाज मे बदनामी भी हुई—

'वा मुसकान पै प्रान दियौ जिय जान दियौ वहि तान पै प्यारी।
मान दियौ मन मानिक के संग वा मुख मजु पै जोबन हारी।
वा तन कौ रसखानि पै री तन ताहि दियौ नहि आन बिचारी।
सो मुँह मोरि करी अब का हहा लाल लै आज समाज मे ख्वारी।"

कृष्ण के बिना विरहिणी ने खाना और पहनना सब कुछ छोड दिया है—

'मोहन सो अटक्यौ मनु री कल जाते परै सोई क्यौ न बतावै।
व्याकुलता निरखे विन मूरति भागति भूख न भूषन भावै।
देखे ते नेकु सम्हार रहै न तबै झुकि कै लखि लोग लजावै।
चैन नही रसखानि दुहूँ विधि भूली सबै न कछु बनि आवै॥'

वियोग-श्रृंगार के अन्तगत प्रकृति का उद्दीपन रूप म वणन करने की काव्यशास्त्रीय परम्परा है। रसखान ने इस परम्परा का भी पालन किया है। यथा—

'फूलत फूल सबै बन बागन बोलत भौंर बसंत के आवत ।
कोयल की किलकार सुनै सब कंत विदेसन तें सब धावत ।
ऐसे कठोर महा रसखानि जु नेकहू मोरी ये पीर न पावत ।
हूक सी सालत है हिय मैं जब वैरिन कोयल कूक सुनावत ॥'

प्रिय का पथ देखते-देखते विरहिणी की आँखें धुँधली पड़ गई हैं। जीभ उसके गुणों को रटते-रटते थक गई है, लेकिन अभी तक प्रिय के आने का कोई सन्देश ही नहीं मिलता है—

'मग हेरत धूँधरे नैन भये रसना रट वा गुन गावन की ।
अँगुरी गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहि पावन की ।
पथिको कोउ ऐसो जु नाहि कहै सुधि है रसखान के आवन की ।
मनभावन आवन सावन मैं कही औधि करी डग चावन की ॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान के वियोग-वर्णन में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता है। लेकिन सर्वत्र ऐसा नहीं हुआ है। कहीं-कहीं रसखान पर रीतिकालीन जादू सर पर चढ़कर बोल उठा है। ऐसे स्थलों पर उनका वर्णन ऊहात्मक बन गया है। यथा—

'विरहा की जु आँच लगी तन मैं तब जाय परी जमुना जल मे ।
विरहानल तें जल सूखि गयो मछरी वहि छाँडि गई तल मे ।
जब रेत फटी रु पताल गई तब सेस जर्‌यो धरती तल मे ।
रसखान तबै इहि आंच मिटै जब आय कै स्याम लगैं गल मे ॥'

× × × ×

'गोकुलनाथ वियोग प्रलै जिमि गोपिन नंद जसोमति जू पर ।
बाहि गयो अँसुवान प्रवाह भयो जल मे ब्रजलोक तिहूँ पर ।
तीरथराज सी राधिका प्रान सु तो रसखान मनौ ब्रज भू पर ।
पूरन ब्रह्म ह्वै ध्यान रह्यो पिय औधि अखैवट पात के ऊपर ॥'

लेकिन एसे स्थल कम ही हैं।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि रसखान ने अपने काव्य मे केवल एक रस की—शृंगार रस की—योजना की है और इसमे ये भावुकता एवं स्वाभाविकता की दृष्टि से भी और परम्परा के पालन की दृष्टि से भी पूर्णतया सफल सिद्ध हुए हैं।

: ७ :

रसखान के कृष्ण

भारतीय साहित्य मे कृष्ण के स्वरूप का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। वैदिक साहित्य मे कृष्ण का जिस रूप मे उल्लेख हुआ है, उससे उमे न तो अवतार की संज्ञा दी जा सकती है और न देवता की ही। महाभारत मे कृष्ण के अवतारी रूप का अवश्य उल्लेख मिलता है पर इस रूप के वर्णन की सीमा कम ही है, अर्थात् इस रूप मे इनका वर्णन थोडा ही हुआ है। महाभारत के अनन्तर कृष्ण की गणना पूर्ण अवतारो मे होने लगती है। गोपाल-रूप मे उनकी उपासना की पद्धति प्रचलित करना पुराणकाल की ही देन है। हरिवंश-पुराण मे कृष्ण के स्वरूप का सबसे अधिक विस्तार और वर्णन पाया जाता है। इस पुराण मे कृष्ण के चरित को गोपियो से आबद्ध किया गया है। विष्णु-पर्व' के १२८ अध्यायो मे कृष्ण की जीवन-गाथा वर्णित है जिसमे कृष्ण के चरित के अनेक पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है। यथा – 'पूतनावध, शकटवध, ममलार्जुन-पतन, माखन-चोरी, कालिय-मर्दन, धेनुक वध प्रलम्ब-वध, गोवर्धन-धारण इत्यादि। कृष्ण की इन लीलओ का वर्णन करते समय पुराणकार ने यथास्थल प्रकृति के भी मनोरम चित्रण प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त पद्म पुराण, वायुपुराण, वामनपुराण, सूर्य पुराण, गरुड-पुराण और विष्णुपुराण, मे भी कृष्ण से सम्बद्ध अनेक गाथाओ का वर्णन किया गया है। पद्मपुराण मे अध्याय ६९ से ७२ तक श्री कृष्ण के महात्म्य का वर्णन है और अध्याय ७२ से ८३ तक वृन्दावन आदि के महत्त्व का तथा कृष्ण की लीलाओ का विवेचन किया गया है। इसी पुराण मे गोपियो के अध्यात्मपक्ष और उनकी उत्पत्ति के विषय मे भी विस्तार से उल्लेख किया गया है। द्वारिका, गोकुल, मथुरा, वृन्दावन आदि का भी सुन्दर वर्णन है तथा द्वादश वनो का भी उल्लेख है। इस अध्याय के श्लोक ८८ से १०२ तक कृष्ण के सौन्दर्य का अत्यन्त मनोरम चित्रण किया गया है। कृष्ण भक्त साहित्य पर इस पुराण का काफी प्रभाव है। पुष्टिमार्गीय आचार्यो ने इसमे से अनेक बातो को तो ज्यों का त्यो ही अपना लिया है। वायुपुराण मे स्यमन्क मणि की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन करके फिर कृष्ण जन्म का वर्णन किया गया है। इसके

पश्चात् कृष्ण की सोलह सहस्र रानियो तथा उनके पुत्रो आदि का वर्णन है। वामनपुराण मे कृष्ण जीवन से सम्बद्ध केवल केशी, मुर और कालनेमि के वध की कथाओ का वर्णन है। कूर्मपुराण मे यदुवश वर्णन के अन्तर्गत कृष्ण के पुत्रो की कथा वर्णित है गरुणपुराण के १४८ वें अध्याय मे कृष्ण की लीलाओ का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इस पुराण मे कृष्ण-विषयक कथाएँ ये हैं— पूतना-वध, यमलार्जुनोद्धार, गोवर्धन-धारण, केशी-चाणूर-वध, कालिय मर्दन, शकटासुर-वध, कृष्ण की रुकिमणी सत्यभामा आदि आठ रानियो का उल्लेख और सदीपन गुरु के पास विद्याध्ययन। विष्णुपुराण मे चौथे अंश के पन्द्रहवे अध्याय मे श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है। पाँचवे अश मे कृष्ण-चरित का विशेष रूप से अंकन हुआ है। इसमे कृष्ण की लीलाओ के साथ-माथ रासलीला का भी वर्णन है।

कृष्ण-चरित से सम्बद्ध भागवतपुराण सब पुराणो से अधिक महत्त्वपूर्ण है। कृष्णभक्तो ने अपने मार्ग में इसी को आधार के रूप मे ग्रहण किया है। महाभारत से लेकर पुराणकाल तक जितना भी कृष्ण का विवेचन हुआ है, वह सब इस पुराण मे सग्रहीत है यद्यपि इस पुराण मे कृष्ण के सभी रूप आ गये हैं, पर प्रमुखता रसिकराज कृष्ण की ही है। डा० हरवमलाल शर्मा ने बाल-लीलाओ को छोडकर कृष्ण के शेष जीवन चरित की दृष्टि से भगवन के प्रतिपाद्य को घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक इन चार भागो मे विभाजित किया है और इनका विवेचन निम्नलिखित शब्दों मे किया है —

१. घटनात्मक—श्रीमदभागवन के वे स्थल घटना-प्रधान स्थल हैं जो ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन करने हैं। परन्तु जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के चरित्र को चित्रित करते हुए 'रामचरितमानस मे ग्रन्थ के प्रधान सूत्र भक्ति को नही छोडते और उसी भावना से अभिभूत होकर अनजाने ही राम के चरित मे अलौकिकता का रूपादेश कर जाते हैं, उसी प्रकार व्यास जी का लक्ष्य भी भगवत भक्त-निरूपण द्वारा भक्तिरस का परिपाक करना है। अतएव भागवतकार ने घटनात्मक स्थलो पर भी भगवान के दिव्य मंगल-स्वरूप की कई वार स्तुति कराई है। जैसे—भोमासुर-वध के समय, वाणासुर-सग्राम के समय तथा वेद-स्तुति आदि। इन घटनाओ मे अलौकिक घटनाओ का भी सम्मिश्रण है। जैसे स्वर्ग से कल्पवृक्ष लाना, देवकी के मृतक पुत्रो को लाना आदि। ऐसे स्थलो पर कवि की प्रतिभा सजग हो उठती है और वह भगवान के स्वरूप मे इतना तन्मय हो जाता है कि अन्य सब भाव अभिभूत हो जाते हैं तथा हृदयानुभूति रागात्मिका वृत्ति के साथ उन स्तुतियो और स्तोत्रो के रूप मे साक्षात् रूप धारण कर लेती है। श्रीमद्भागवत मे जहाँ-जहाँ भी इन घटनाओ का उल्लेख है, वही वही कवि की इस अनुभूति का परिचय मिलता है। इस घटनात्मक भाग मे

भागवतकार का उद्देश्य भी भक्ति की दृढता ही है।

२ **उपदेशात्मक**—भागवत के उपदेशात्मक भाग मे हमे श्रीकृष्ण योगेश्वर, उपदेष्टा तथा विज्ञानी के रूप मे मिलते है। श्रीमद्भागवत मे दो प्रकार के उपदेश है—साधारण तथा विशेष। साधारण उपदेश वे उपदेश है जो साधु, महात्माओ, गुरुजनो या मित्रो ने दिए है। इन उपदेशो का अभिप्राय कर्त्तव्यकर्म का अनुष्ठान करते हुए भगवद्भक्ति करना है। विशेष उपदेशो के रूप मे वे स्थल आते हैं, जहाँ उपदेश किसी व्यक्ति विशेष को विशेष रूप से दिये गए हैं। जैसे उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेश, ध्रुव को नारद का उपदेश, चतुश्लोकी भागवत तथा कपिलगीता आदि। ये उपदेश बड़े महत्वपूर्ण है क्योकि इनसे दो बातो की व्याख्या हुई है—परमतत्व की और ज्ञान-भक्ति कर्म की।

३. **स्तुत्यात्मक**—भागवत का स्तुत्यात्मक भाग भी बडा महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसके द्वारा भी कृष्ण के वास्तविक रूप की व्याख्या की गई है। ये स्तुतियाँ दो प्रकार की है—सकाम और निष्काम। सकाम स्तुतियाँ वे है जो किसी कामना से प्रेरित होकर की गई है। जैसे—कारागार से मुक्त होने के लिए, किसी आपत्ति या दैहिक, दैविक, भौतिक तापो की निवृति के लिए की गई है। निष्काम स्तुतियाँ दो प्रकार की होती है—एक तो वे जिनमे तत्त्व-ज्ञान की प्रधानता है और दूसरी वे जिनमे साधन की प्रधानता है। वेद-स्तुति तत्वज्ञान-प्रधान स्तुति कही जायेगी, क्योकि इसमे सब तत्वो का पर्यवसान एक ही तत्त्व मे दिखाया गया है। प्रह्लाद अम्बरीष, ब्रह्मा, ध्रुव आदि की स्तुतिया साधन-प्रधान कही जायेगी क्योकि इनमे भक्त मुक्ति का इच्छुक न होकर केवल भगवान के रूप तथा लीला के स्मरण, कीर्तन मे आनन्द लेता है।

४ **गीतात्मक**—श्रीमद्भागवत का चौथा भाग गीतात्मक है। इन गीतों मे ग्रन्थकार का हृदय साक्षात् रूप से द्रवित होता हुआ प्रतीत होता है। उसकी अन्तरात्मा इन गीतो मे पूर्णरूपेण प्रस्फुटित है। ये हृदय के वे स्वत प्रवाही स्रोत हैं जिनका अवरोध कवि के वश की बात नही थी। उसकी आत्मा की व्यथा एव अन्तर्वेदना के ये गीत साकार प्रतिबिम्ब है। प्रेम और विरह की भावनाओ से ओतप्रोत इन गीतो की सख्या अधिक नही है। पाँच गीत गोपियो के तथा एक द्वारिका की कृष्ण-पत्नियो का है। ये छ गीत दशम स्कन्द मे

आए हैं। एकादश स्कन्ध मे भी दो गीत आये है—एक पिंगला का और दूसरा एक भिक्षुक ब्राह्मण का। पिंगला का गीत निर्वेद-गीत है जो ससार के कटु अनुभवो से उत्पन्न अन्तर्वेदना का अभिव्यजन करता है। सात्विक और सदाचारी होने पर भी दुनिया के हाथो अपमानित होने वाले ब्राह्मण भिक्षुक के गीत मे भी वेदना की झलक है। कृष्ण की पत्नियो का गीत दशम स्कन्द के ९०वे अध्याय मे है। उनका मन भगवान की लीला मे इतना तन्मय हो जाता है कि वे अपने को भूल जाती है। सासारिक अनुभवो का ज्ञान लुप्त ह जाता है और आत्म-विभोरता की अनिर्वचनीय दशा मे उनके हृदय-हृद से अनायास ही भावधारा वह निकलती है। समस्त प्रकृति उन्हे कृष्णमयी लगती है और वे प्रकृति के सब पदार्थो को सम्बोधित करके उनका कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करती है। वे यह भी भूल जाती है कि कृष्ण उनके समीप हैं। गोपी गीतो का वर्णन तो वर्णनातीत है। उनके पांचो गीतो मे अनुपम प्रेम की झलक है। प्रतीत होता है हृदय वाणी के साथ लिपटा हुआ चला आया है।

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

१ कृष्ण के दो रूप है—सगुण कृष्ण और निर्गुण कृष्ण।

२ कृष्ण का सौन्दर्य अमिट है।

३ कृष्ण और गोपियो मे घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध है।

४ कृष्ण अनेक प्रकार की लीलाएँ करते है।

रसखान ने भी कृष्ण के स्वरूप मे इन्ही विशेषताओ को प्रतिष्ठित किया है।

सगुण कृष्ण

सिद्धान्तत कृष्णभक्त-कवि कृष्ण का निर्गुण रूप ही स्वीकार करते हैं, पर व्यवहारत उन्हे कृष्ण का सगुण और साकार रूप ही मान्य है। इसका कारण यह है कि भक्ति के लिए किसी साकार आलम्बन की आवश्यकता होती है, क्योकि निराकार आराध्य पर मन की एकाग्रता प्रतिष्ठित नही हो सकती। सूरदास के शब्दो मे—

'रूप रेख गुन जाति जुगति विनु निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै॥'

इस सगुण कृष्ण मे कृष्णभक्तो ने अनेक प्रकार की विशेषताओ का समावेश किया है। ये विशेषताएँ ही कृष्ण की विविध लीलाओ के नाम से

पुकारी जाती है। यथा—बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला आदि। रसखान ने अपने काव्य की सीमित परिधि मे इन सभी लीलाओ को समाविष्ट करने का प्रयास किया है।

बाललीला मे कृष्ण के बचपन की विभिन्न झाँकियाँ हैं। कृष्ण को खिलाते समय यशोदा किसी गाय की ओट लेकर 'ता' शब्द कहती है जिसे सुनकर कृष्ण अपनी और सब बातो को भूलकर यशोदा को ढूँढने लगते है। वे कुछ पग चलकर जब यशोदा जी को नही देखते तो मचल जाते है और पृथ्वी पर लोटकर अपने वस्त्रो को धूल-धूसरित्त कर लेते है। तब यशोदा जी उसके पास आती है, कृष्ण हँसने लगते है। यशोदाजी अपना सारा मातृत्व कृष्ण पर बलिहार कर देती है—

'ता' जसुदा कह्यौ धेनु की ओट ढिढोरत ताहि फिरै हरि भूलै।
ढूँढन कूँ पग चारि चलै मचलै रज पाँहि विधूरि दुकूलै।
हेरि हँसे रसखान तबै उर भाल तै टारि कै बाद लटूलै।
सो छवि देखि अनन्दब नन्दजू अगनि अग समात न फूलै।'

जब कृष्ण बड़े हो जाते है तो उनकी शोभा मे भी अभिवृद्धि हो जाती है। धूल से सना हुआ उनका शरीर, सिर पर बनी हुई चोटी, पैरो मे पहनी हुई पैजनी और धारण किया हुआ पीला वस्त्र अत्यन्त ही शोभायमान लगता है। वह प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर माखन और रोटी लिए हुए अपने आँगन मे घूम-घूमकर खा रहे है कि अकस्मात् एक कौवा आता है और उनके हाथ से माख़न और रोटी छीनकर ले जाता है—

'धूरि भरे अति सोभित स्यामजू तैसी वनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना पग पैजनी वाजति पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखान विलोकत बारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बडे सजनी हरि-हाथ सौ लै गयौ माखन रोटी।'

कृष्ण जब किशोरावस्था को प्राप्त कर लेते है तो उनका नटखटपना बहुत अधिक वढ जाता है। वे गोपियो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विविध लीलाओ की सयोजना करते है। जिनमे से एक रासलीला भी है। रासलीला मे कृष्ण अनेक प्रकार से गोपियो को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते है। कभी वे अपनी बाँसुरी के स्वरो मे किसी गोपी का नाम ले देते है और कभी अपनी अन्य चेष्टाओ से उन्हे रिझाने की कोशिश

करते हैं। यथा—

१. 'अधर लगाइ रस प्याइ बाँसुरी बजाय,
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियो मन मैं।
नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करि कै अचेत चेत हरि कै जतन मैं।
झटपट उलटि पुलटि पट परिधान,
जानि लागी लालन पै सबै बाम बन मैं।
रस रास सरस रंगीलो रसखानि आनि,
जानि जोर जुगुति बिलास कियौ जन मैं।

२. 'आज पदू मुरली-बट के तट नन्द के साँवरे रास रच्यौ री।
नैननि सैननि बैननि सो नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री।
जद्यपि राखन कौं कुल-कानि सबै ब्रज-बालन प्रान पच्यौ री।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानी को अंत लच्यौ पै नच्यौ री।

३ 'कीजै कहा जु पै लोग चवाव सदा करिबो करि हैं ब्रजमारो।
सीन न रोकत राखत कागु सुगावत ताहि री गावनहारो।
आप री सीरी करै अँखियाँ रसखान घनै धन भाग हमारो।'
आवत है फिरि आज बन्यौ वह राति के रास को नाचनहारो॥

४ 'देखत सेज बिछी ही अछी सु बिछी बिष सो भिदिगो सिगरे तन।
ऐसी अचेत गिरी नहिं चेत उपाय करे सिगरी सजनी जन।
बोली सयानी सखी रसखानि बचै यो सुनाइ कह्यो जुवती गन।
देखन को चलियै री चलो सब रस राच्यो मनमोहन जू बन॥'

रासलीला की भाँति फागलीला में भी कृष्ण और गोपियों के प्रेम की मनोहर झाँकियाँ प्रस्तुत की गई हैं। होली आ गई है। गोपियाँ कृष्ण से और कृष्ण गोपियों से फाग खेलते हैं। उस समय कृष्ण की जो शोभा होती है उसका वर्णन करना आसान नहीं है—

'खेलतु फागु लख्यौ पिय प्यारी को ता सुख की उपमा किहि दीजै।
देखत ही बनि आवै भलै रसखान कहा है जो वारि न कीजै।
ज्यौं ज्यौं छबीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यौं त्यौं छबीलो छकै छकि छाक सो हेरै हँसे न टरै खरो भीजै।'

वस्तुत: जब से फागुन का मास प्रारम्भ होता है, कृष्ण फागलीला में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि ब्रज की शायद ही कोई नवयुवती बचती हो जो

कृष्ण के साथ फागलीला न करे—

'फागुन लाग्यौ सखी जब ते तब ते ब्रजमण्डल धूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचै नहि एक बिसेख मरै सबै प्रेम अँच्यौ है।
साँझ सकारे वही रसखानि सुरग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है।'

कृष्ण की कुंज-लीलाएँ भी वैसी ही आकर्षक है जैसी अन्य लीलाएँ। जब मुस्कराते हुए कृष्ण कुंज से निकलते है तो उनकी शोभा को जो भी गोपी देख लेती है वह इतनी भाव-विभोर हो जाती है कि उसे कृष्ण के अतिरिक्त और कोई बात ही याद नही रह पाती। उसके सारे सामाजिक बन्धन टूट जाते है और नारी सुलभ लज्जा की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती हैं—

'रग भर्यो मुस्कात लला निकस्यौ कल कुंजन ते सुखदाई।
मैं तबही निकसी घर ते तकि नैन बिसाल की चोट चलाई।
घूमि गिरी रसखानि तबै हरिनी जिमि बान ललजै गिरि जाई।
टूटि गयौ घर को सब बन्धन टुटिगौ आरज-लाज बडाई।'

इन लीलाओ के अतिरिक्त दानलीला, चीरहरण-लीला आदि का वर्णन भी रसखान ने किया है।

निर्गुण कृष्ण

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कृष्णभक्त-कवियो को सिद्धान्ततः कृष्ण का निर्गुण स्वरूप ही मान्य है। इस स्वरूप का प्रतिपादन सभी कवियो ने किया है। सूरदास की विशेषता तो यह रही है कि वे कृष्ण के साकार अथवा अवतारी-रूप का वर्णन करते-करते बीच-बीच मे उनके अलौकिकत्व का भी सकेत देते जाते है। यथा—

'जसोदा तेरौ मुख हरि जोवै।
कमलनैन हरि हिचिकिनि रोवै, बन्धन छोरि जसोवै।
जो तेरौ सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोखि को जायौ।
कहा भयौ जो घर कै ढोटा, चोरी माखन खायौ।
कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ, जाख न पूजन पायौ।
तिहि घर देव पितर काहे को, जा घर कान्हर आयौ।

जाको नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फन्द सब काटै ।
सोई इहाँ जेवरी बाँधे, जननी साँटि लै डाटै ।
दुखित जानि दोउ सुत कुवेर के ऊखल आपु बँधायौ ।
सूरदास प्रभु भक्त हेत ही देह धारि कै आयौ ।'

× × × ×

'भीतर तै बाहर लौ आवत ।
घर-आँगन अति चलत सुग भए, देहरि अँटकावत ।
गिरि-गिहि परत, जात नहि उलघी, अति श्रम होत नचावत ।
अहुँठे पैग वसुधा सब कीनी, धाम अवधि विरमावत ।
मन ही मन बलवीर कहत है, ऐसे रग बनावत ।
सूरदास-प्रभु-अगनित-महिमा, भगतनि कै मन भावत ।

रसखान ने पूर्णरूप से और स्पष्ट रूप से कृष्ण के अलौकिकत्व का वर्णन किया है। ये कहते है कि जिस कृष्ण का जप शकर जैसे देव करते है, जिनका ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म मे वृद्धि करते है, जिनका तनिक-सा ध्यान भी हृदय मे लाते ही अत्यन्त मूर्ख भी निपुण ज्ञान के भण्डार बन जाते हैं, जिस पर देव, किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणो को न्यौछावर करके सजीवता प्राप्त करती है, उसी कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोड़ी-सी छाछ के लिए नाच नचाती है—

'सकर से सुर जाहि जपै, चतुरानन ध्यानन धर्म बढावै ।
नैक हिये जिहि आवत ही जड मूढ महा रसखानि कहावै ।
जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्रानन प्रानन पावै ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ।'

जिस कृष्ण के गुणो का शेपनाग, गणेश, शिव, सूर्य और इन्द्र निरन्तर स्मरण करते हैं, वेद जिसके स्वरूप का निश्चित ज्ञान प्राप्त करके उसे अनादि अनन्त, अखण्ड, अछेद्य, अभेद्य आदि विशेप विशेषणो से पुकारते है। नारद, शुकदेव और व्यास जैसे प्रचण्ड पण्डित भी अपनी पूरी कोशिश करके जिसके स्वरूप का पता न लगा सकने के कारण द्वार पर बैठ गये है, उसी कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोडी-सी छाछ के लिए नाच नचाती है—

'सेप, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सु वेद बतावैं ।

नारद से सुक व्यास रहै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।'

जिस कृष्ण के गुणो का गान अप्सरा, गधर्व, शारदा और शेपनाग सभी करते है गणेश जिसके अनन्त नामो का स्मरण करते है, ब्रह्मा और शिव भी जिसके स्वरूप को नही जान पाते, जिसे प्राप्त करने के लिए योगी, यति, तपस्वी और सिद्ध निरन्तर समाधि लगाये रहते है, फिर भी उसका भेद नही जान पाते, उन्ही कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोडी सी छाछ के लिए नाच नचाती है—

'गावैं गुनी गनिका गधरव औ सारद सेस सबै गुन गावत ।
नाम अनन्त गनत गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ।'

ब्रह्मा आदि अनेक योगी, जिस कृष्ण के स्वरूप को जानने के लिए समाधि लगाये रहते है पर उसका पार नही पाते, शेषनाग अपनी सहस्रो जिह्वाओ से जिसका निरन्तर जाप करते रहते है, महर्षि नारद अपने हाथ मे वीणा लेकर और उसे बजाते हुए तीनो लोको मे फिरते है पर कोई भी ऐसी साक्षी नही मिलती जिसके आधार पर वे यह दावा कर सके कि उन्होने कृष्ण के स्वरूप को जान लिया है । ऐसे दुर्बोध्य और अनत कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोडी सी छाछ के लिए नाच नचाया करती है ।

शिव जिनको आराध्य मानकर उनका ध्यान करते है, सारा ससार जिनकी पूजा करता है, जिनसे महान् और कोई दूसरा देव नही है, वही कृष्ण साकार रूप धारण करके अवतरित हुआ है और जो विराट् पुरुष है, वही अपनी लीला दिखाने के लिए माटी खाता फिरता है—

'सभु धरै ध्यान जाको जपत जहान सब,
तातें न महान् और दूसर अब देख्यौ मैं ।
कहै रसखान वही बालक सरूप धरै,
जाको कछु रूप रग अद्भुत अवलेख्यौ मैं ।
कहा कहूँ आली कछु कहती बनै न दसा,
नन्द जी के अगना मे कौतुक एक देख्यौ मै ।

जगत को ठाटी महापुरुप विराटी जो,
निरजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं ॥'

कृष्ण की प्राप्ति के लिए ही सारा जगत प्रयत्नशील है । ये वही कृष्ण हैं जिनकी पूजा ब्रह्मा जी रात-दिन किया करते है, सदा भक्त-वत्सल शिव जिनका पूर्ण तन्मयता से ध्यान करते है, जिनके लिए अहकारी, मूर्ख, राजा, निर्धन सभी प्रकार के लोग योगी बनकर शीतादि के द्वारा अपने अगो को शिथिल बनाते हैं, वही आनन्द के भण्डार कृष्ण प्राणो के प्राण है जिन्हे देखने के लिए लाखो अभिलाषाएँ लाखो प्रकार से बढती है, जो पृथ्वी पर रहने वाले लोगो का अहकार मिटाने वाले है, कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले है, वे ही यशोदा जी के आगे खुरचनी लेने के लिए मचल कर खडे हुए हैं—

'वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन,
सदा सिव सदा ही धरत ध्यान गाढे है ।
वेई विप्नु जाके काज मानी मूढ राजा रक,
जोगी जती ह्वै के सीत सह्यौ अग डाढे है ।
वेई व्रजचन्द रसखानि प्रान प्रानन के,
जाके अभिलाख लाख लाख भाँति बाढे है ।
जसुधा के आगे वसुधा के मान-मोचन ये,
तामरस-लोचन खरोचन को ठाढे है ॥'

इसके अतिरिक्त कृष्ण का अलौकिकत्व प्रतिपादन करने के लिए रसखान ने कालिय-दमन और कुवलियपीड-वध जैसी कथाओ का भी उल्लेख किया है ।

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य कृष्ण-भक्त कवियो की भाँति रसखान ने भी कृष्ण के लौकिक और अलौकिक दोनो प्रकार के रूपो का वर्णन किया है । वस्तुत इनके कृष्ण है तो अलौकिक ही, पर अपने भक्तो को अलौकिक आनन्द प्रदान करने के लिए और लोक की रक्षा करने के लिए वे साकार रूप ग्रहण करके अवतार लेते है ।

: ८ :

रसखान का सौन्दर्य-चित्रण

कृष्ण-भक्ति प्रेम-मूलक भक्ति है। प्रेम के लिए आकर्षण एक प्रमुख तत्व है और आकर्षण के लिए सौन्दर्य का होना अनिवार्य है। सौन्दर्य दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तरिक सौन्दर्य और वाह्य सौन्दर्य। आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत मन की उदात्त भावनाएं आती है। वाह्य सौन्दर्य शारीरिक सौन्दर्य है। कृष्ण-काव्य मे इन दोनो प्रकार के सौन्दर्यो का विस्तार से चित्रण हुआ है। रसखान ने भी अपने सौन्दर्य चित्रण मे इस परम्परा का पालन किया है।

आभ्यन्तरिक सौन्दर्य

जैसा कि ऊपर वताया जा चुका है, आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत मन की उदात्त भावनाएँ आती है। भक्त की इससे अधिक उदात्त भावना और क्या हो सकती है कि वह स्वय को सर्वरूपेण अपने आराध्य के प्रति समर्पित कर दे। रसखान-काव्य मे, अन्य कृष्ण-भक्तो की भाँति समर्पण की यह भावना पूर्णरूपेण लक्षित होती है। इन्होने जिस प्रकार स्वयं को अपने आराध्य के प्रति समर्पित किया है, उसी प्रकार अपनी गोपियो मे भी समर्पण की यह भावना समाविष्ट की है। पहले कवि की समर्पण-भावना को देखिए।

रसखान का अपने आराध्य के प्रति इतना गम्भीर लगाव है कि ये प्रत्येक स्थिति मे उसी का सान्निध्य चाहते है, चाहे इसके लिए इन्हे किसी भी प्रकार का फल भुगतना पडे। इसीलिए ये कहते है कि आगामी जन्म मे यदि मुझे मनुष्य योनि मिले तो मै वही मनुष्य बनू जिसे व्रज और गोकुल के ग्वालो के साथ रहने का अवसर मिले। यदि मुझे पशु-योनि मिले तो मेरा जन्म व्रज मे ही हो, ताकि मै नन्द की धेनुओ के मध्य विचरण कर सकूँ। यदि मै पत्थर बनूँ तो उसी पर्वत का बनूँ जिसे इन्द्र का गर्व खंडित करने के लिए कृष्ण

ने अपनी अगुलियो पर धारण किया था और यदि मै पक्षी बनू ँ तो सदैव यमुना के किनारे उगे हुए वृक्षो की शाखो पर चहकता रहूँ—

'मानुप हौ तौ वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन ।
जो पसु हौ तौ कहा वस मेरो चरौ नित नन्द की धेनु मझारन ।
पाहन हौ तौ वही गिरि को जो धर्‌यौ कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौ तौ बसेरो करौ मिलि कालिन्दी कूल-कदब की डारन ।।'

इसी प्रकार रसखान अपने शरीरावयवो की सार्थकता तभी मानते है जब उनसे किसी प्रकार आराध्यदेव की सेवा की जाये। ये अपने आराध्यदेव से विनती करते है कि मुझे सदा अपने नाम का स्मरण करने दो ताकि मेरी जीभ इन्द्रियो से प्राप्त आनन्द मे न डूब जाये। मुझे कुंजो मे बनी हुई अपनी कुटी मे झाड् लगाने दो, जिससे मेरे हाथ सत्कर्म मे सदैव प्रवृत्त रहे। मुझे. ब्रज की धूल मे अपने शरीर को धूसरित करने दो, जिससे मुझे अणिमा आदि आठो सिद्धियो का सुख मिल जाये। यदि आप मुझे निवास करने के लिए कोई विशेप स्थान देना चाहते है तो यमुना तट पर खडे हुए उन्ही कदम्ब वृक्षों की डालियो पर दीजिए जहाँ पर आप अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे—

'जो रसना रस ना विलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।
मो कर नीकी करै करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन ।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज-रेनुका अग सवारन ।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही कालिन्दी-कूल-कदब की डारन ।।'

जिस प्रकार कवि ने कृष्ण के प्रति अपनी उदात्त भावनाओ की अभिव्यक्ति की है, उसी प्रकार गोपियो की उदात्त भावनाओ को भी व्यक्त किया है। ये भावनाएँ कृष्ण के प्रति आकर्पण मे परिलक्षित होती है। गोपियाँ जब भी कृष्ण को देखती है, तभी उनके हृदय का सौन्दर्य उमड पडता है और वे कृष्ण के प्रत्येक अग मे, उसकी प्रत्येक वस्तु मे सौन्दर्य का अपार पारावार तरगित देखती है, यदि कभी वे कृष्ण की अलकावलि पर, विशाल भाल पर, हृदय पर, फूलती हुई वनमाल पर भाव-विभोर हो उठती है—

'सखि गोधन गावत हो इक ग्वार लख्यो वहि डार गहे वट की ।
अलकावलि राजति भाल विसाल लसै वनमाल हिये टटकी ।

जब ते वह तानि लगी रसखानि निवारै को या मग हौ भटकी।
लटकी लट सो दृग-मीननि सो बनसी जियवा नट की अटकी ॥'

तो कभी उसे देखते ही उसके सौन्दर्य का ऐसा समन्वित प्रभाव होता है कि उनका शरीर रॉग की भाँति ढर जाता है—

'गाइ दुहाइ न या पै कहू, न कहूँ यह मेरी गरी निकरयौ है।
धीरसमीर कलिन्दी के तीर खर्यौ रहै आजु ही डीठि पर्यौ है।
जा रसखानि विलोकत ही सहसा ढरि रॉग सो आँग ढर्यौ है।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत टेरत आनि अर्यौ है ॥'

इसी प्रकार के अन्य अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते है जिनमे गोपियो की उदात्त भावनाएँ—भावो का सौन्दर्य—पूर्णतया व्यक्त हुआ है।

बाह्य सौन्दर्य

बाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत रसखान ने कृष्ण और राधिका के सौन्दर्य का वर्णन किया है। यह वर्णन दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

१. शारीरिक सौन्दर्य
२. चेष्टागत सौन्दर्य

रसखान ने कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए जिन अंगो को चुना है, वे बहुत सीमित और परम्परागत है। अत इनके इस वर्णन मे अपेक्षित व्यापकता का अभाव है। प्राय इतर शब्दो मे पुनरावृत्ति-सी ही हुई है। पर यह पुनरावृत्ति भी भावपूर्ण और कवित्वपूर्ण है। कुछ उदाहरण देखिए।

यशोदा जी के द्वारा सज्जित कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि ऐ सखि ! मैं आज ही प्रात काल नन्द के उस भवन मे गई थी जहाँ रस-सागर कृष्ण थे। मै उन्हे देखते ही उनमे अनुरक्त हो गई। उन जैसा पुत्र पाकर यशोदा जी को जो सुख मिला है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। मै तो भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि उनका यह पुत्र लाख करोड युगो तक जीवित रहे। यशोदा जी ने उनके सिर पर तेल लगाकर और आँखो मे काजल डाल कर उनके मुख पर डिठौना लगा दिया। उनके गले मे हमेल और हार डालकर यशोदा जी उसके सौन्दर्य को निहारती रही, उन पर स्वय को न्योछावर करके उन्हे चूमती रही—

'आजु गई हुती भोर ही हौ रसखान रई वहि नन्द के भौनहि।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यौ नहि ॥

तेल लगाइ लगाइ कै अंजन, भौंहे बनाइ-बनाइ डिठौनहि ।
डालि हमेलनि हार निहारत, वारत ज्यों चुमकारत छौनहि ।।

कृष्ण का सौन्दर्य वस्तुत इतना अमित है कि उस पर कामदेव भी अपनी करोडो सुन्दरताओ को न्योछावर करने के लिए विवश हो जाता है—

"धूरि भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी वनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरै अगना, पग पैंजनि वाजति पीरी कछोटी ।।
वा छवि को रसखान विलोकत, वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग वडे सजनी, हरि हाथ सो लै गयो माखन-रोटी ।"

कृष्ण के गले की मोतियो की माला का, घू घरदार केशराशि का, जडाऊ आभूषणो का, सिर पर जरीदार पगडी का सौन्दर्य भी कुछ कम नही है। इस सौन्दर्य का दर्शन तो पूर्व-सचित पुण्यो से ही होता है—

'मोतिन माल वनी नट के, लटकी लटवा लट घू घर वारी ।
अग ही अग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी ।।
पूरव पुन्यनि ते रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी ।
चार्यौ दिसानि की लै छवि, आनिकै झांके झरोखे मैं वांकि विहारी ।।'

इनके मस्तक पर लगी हुई गोधूलि को, हृदय पर लहराती हुई वनमाला को, सुरीली वशी को और पीले वस्त्र की फहराहट को देखकर गोपियाँ इतनी भाव-विभोर हो जाती हैं कि वे सब प्रकार के दुखो को भूलकर आनन्द मे डुबकियाँ लेने लगती है—

गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल,
आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तानि री ।।
तैसी धुनि वाँसुरी की मधुर-मधुर जैसी,
वक चितवनि मद मद मुसकानि री ।।
कदम विटप के निकट तटनी के तट,
अटा-चाढि चाहि पीत पट फहरानि री ।।
रस वरसावै तन-तपनि वुझावै नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री ।।'

कृष्ण के नेत्रो की वक्रता इतनी तीक्ष्ण है कि कोई गोपी उसकी चोट को सहन नही कर सकती, इसीलिए उनकी शोभा से समूचे व्रज मे कोलाहल मचा हुआ है—

'नैननि बक विसाल के बाननि झेलि सकै अस कौन नवेली ।
वेधत है हिम तीछन कोर सुमार गिरी तिम कोटिक हेली ।।
छोडै नही दिनहूँ रसखानि सु लाग फिरै द्रुम सो जनु वेली ।
रौरि परी छवि की व्रज-मडल कुडल गडनि कुतल केली ।।'

उनकी दृष्टि और वाणी विलक्षण है, उनकी चचल दृष्टि भी विलक्षण-सी है। उनके कपोलो पर कुण्डलो की छवि हाथी के गडस्थल पर पडी हुई छवि की भाँति विलक्षण है। जिस समय वे पेड की डाली पकड कर खडे होते है तो उस समय उनकी जो शोभा होती है, उसका वर्णन करना कठिन है। कोई भी गोपी उनकी उस समय की शोभा से और उनकी मधुर मुस्कान से अपने को नही बचा सकती—

'अलवेली विलोकनि वोलनि औ अलवेलियै वोल निहारन की ।
अलबेली सी डोलति गजनि पै छवि सो मिल कुण्डल बारन की ।।
भटू ठाढौ लख्यौ छवि कैसे कह्यौ रसखानि गहे द्रुम डारन की ।
हिय मै जिय मै मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की ।।

कृष्ण की विशाल आखे, पुष्ट कपोल, मधुर भाषण, सुन्दर हँसी, सुन्दर मुख को जो भी गोपी एक बार देख लेती है, वह पागल होकर उसे गली गली मे ढूँढती फिरा करती है—

'बाँकी वडी अँखियाँ वडरारे कपोलनि बोलनि कोकिल बानी ।
सुन्दर हार सुधानिधि सो, मुख मूरति रग सुधारस-सानी ।।
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी ।
डोलति है बन बीथिन मे रसखानि मनोहर रूप लुभानी ।।

कृष्ण के नेत्र इतने विशाल है कि वे कानो तक खिचे रहते है। उनके केश मुख पर लहराते रहते है। उनकी सुन्दर शोभा की क्रान्ति चारो ओर बिखर कर करोडो प्रकार के खेल दिखाती है। वास्तविकता तो यह है कि उसकी शोभा झुक कर, झूमकर और अमृत को चूमकर चन्द्रमा की चाँदनी को चुराने वाली है—

'दृग दूने खिचे रहै कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही ।
छकि छैल छबीली छटा घहराय कै कौतुक कोटि दिखाइ रही ।।
झुकि झूमि झमाकनि चूमि अमी चहि चाँदनी चद चुराई रही ।
मन भाइ रही रसखानि महा छबि मोहन की तरसाइ रही ।।'

सध्या समय जब कृष्ण गायो को चराकर वापिस लौटते है तो सारे गोरज से धूसरित हो जाते है। उस समय कृष्ण की शोभा ऐसी दिखाई देती है मानो आग के पहाड से बुझकर धुएँ के बादल चढे चले आ रहे हो—

सांझ समै जिहि देखति ही तिहि देखन को मन मा ललकै री।
ऊँची अटान चढी व्रजवाम सु लाज सनेह दुरै उभकै री॥
गोधन धूरि की धूँधरि मै तिनकी छवि यो रसखानि तकै री।
पावक के गिरि ते बुझि मानो धुवां-लपटी लपटै लपकै री॥'

कृष्ण का शारीरिक सौन्दर्य स्वाभाविक रूप मे बहुत ही आकर्षक है। पर इस पर स्वाभाविक गति से धारण किये हुए आभूषण इसे और भी अधिक आकर्षक बना देते है। कृष्ण के कानो मे पडे हुए कुण्डल बिजली के समान चमकते है। गौवो के पैरो से उठी हुई धूलि बादलो के उमडने के समान प्रतीत होती है—

'दमकै रवि कुण्डल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजत है।
मुकताहल-दारन गोपन के सु तौ बूँदन की छवि छाजत है॥
व्रजबाल नदी उमही रसखानि मयक वधू दुति लाजत है।
यह आवन श्री मनभावन की बरखा जिमि आज विराजत है।'

शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त रसखान ने चेष्टागत सौन्दर्य का भी पर्याप्त वर्णन किया है। जिस प्रकार कवि ने शारीरिक सौन्दर्य की परिधि को सीमित रखा है, अर्थात् इने-गिने शरीरावयवो का ही परम्परागत अनुमानो के द्वारा चित्रण किया है; अथवा परम्परागत आभूपणो का उल्लेख किया है, उसी प्रकार चेष्टाएं भी इनी-गिनी है। वक्र-दृष्टि, वंशीवादन, मुस्कराना आदि तक ही कवि ने अपने चेष्टागत सौन्दर्य को सीमित रखा है। निम्नलिखित सवैये मे वशी-वादन के सौन्दर्य का वर्णन है—

आवत है वन ते मनमोहन गाइन सग लसै व्रज-ग्वाला।
वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला॥
हेरत हेरि ककै चहुँ ओर ते झांकि झरोखन तै व्रजबाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यौ सब द्योस को ताप-कसाला॥

और—

अति सुन्दर री व्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाठन खोलत है॥

सुन री सजनी अलबेलो लला वह कुजनि-कुजनि डोलत है।
रसखानि लखे मन बूडि गयौ मधि रूप के सिन्धु कलोलत है।

इसमे वक्रदृष्टिगत चेष्टा के सौन्दर्य का वर्णन है।

कृष्ण के द्वारा गायो के घेरने मे, लाठी को घुमाने मे, वक्रदृष्टि से देखने मे, सगीत की ताने बजाने मे और पीले वस्त्रो के फहराने मे भी गोपियो को अपार सौन्दर्य के दर्शन होते है—

'वह घेरनि धेनु अबेर सवेरनि फेरनि लाल लकुट्टनि की।
वह तीछन चच्छु कटाछन की छवि मोरनि भौह भृकुट्टनि की॥
वह लाल की चाल चुभी चित मे रसखानि सगीत उघुट्टनि की।
वह पीत पटक्कनि की चटकानि लिटक्कनि मोर मुकुट्टनि की।'

कृष्ण की वक्रदृष्टि मे इतना सोन्दर्यपूर्ण आकर्षण है कि उसे देखते ही समस्त व्रज बालाएँ अपनो कुल लाज और अपने गृह-काज को छोड बैठती हैं—

भटू सुन्दर श्याम सिरोमनि मोहन जोहन मै चित चोरत है।
अवलोकन वक विलोचन मे व्रजबालन के दृग जोरत है॥
रसखानि महावत रूप सलोनो को मारग ते मन मोरत है।
गृहकाज समाज सबै कुल लाज लला व्रजराज को तोरत है॥

वक्रदृष्टि का यही प्रभाव निम्नलिखित सवैये मे वर्णित है—

आली लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना।
गडनि पै छलकै छवि कुण्डल मडित कुतल रूप की सेना॥
दीरघ वक विलोकनि की अवलोकनि चोरित चित्त को चैना।
मो रसखानि हर्यौ चित की मुसकाइ कहे अधरामृत बैना॥

कही-कही रसखान ने अनेक चेष्टाओ का एक साथ ही वर्णन किया है। निम्नलिखित सवैये मे वक्रदृष्टि, कटाक्ष मारना, मुस्कराना इन तीनो चेष्टाओ का एक साथ वर्णन किया है—

मोहन रूप छकी बन डोलति घूमति री तजि लाज विचारै।
वक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै।
रग भरी मुख की मुसकान लखै सखि कौन जु देह सम्हारै।
ज्यौ अरविन्द हिमत करी झकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारै।'

कृष्ण की चेष्टाओ में मुसकान और वक्र दृष्टि का वर्णन कवि ने सबसे

अधिक किया है।

कृष्ण के सौन्दर्य के अतिरिक्त कवि ने राधा के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। राधा के सौन्दर्य के उपमान और उन्हे प्रस्तुत करने की रीति प्राय. परम्परागत है। यथा—

'कैधो रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि के पीयूष पूष कीनो विधि चद घर।
कैधो मनि मानिक वैठारिवो को कचन मैं,
जरिया जोवन जिन गढिया सुघर घर।
कैधो काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैधो यह भौर ज्ञान वोहित गुमान हर।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रम्भा की,
वारि डारी तेरी चित चोरिन चिवुक पर।

इस कवित्त मे नेत्र, मुख, शरीर-गठन, अधरो की लाली, नासिका का छिद्र और चिवुक की शोभा का वर्णन किया गया है। इनकी शोभा का वर्णन करने के लिए जिन उपमानो की संयोजना की गई है वे सभी प्राय. परम्परागत हैं।

'श्री मुख सौ न वखान सकै वृपभान सुताजू को रूप उजारो।
हे रसखान तू ज्ञान सभार तरैनि निहार जु रीझनहारो।
चारु सिन्दूर को लाल रसाल लसै व्रजवाल को भाल टिकारो।
गोद मैं मानो विराजत है घनस्याम के सारे की सारे को सारो॥'

इस सवैये मे राधा के समस्त सौन्दर्य के साथ उसके मस्तक पर लगे हुए सिन्दूर के टीके की शोभा का वर्णन किया गया है जो ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा की गोद मे मगल सुशोभित हो।

'अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली ; अलि कुंतल राजत है।
मखतूल समान के गुज छरानि मैं किसुक की छवि छाजत है।
मुकता के कदम्व ते अक के मौर सुने सुर कोकिल लाजत है।
यह प्राननि प्यारी जु की रसखानि वसत-सी आज विराजत है॥'

इस सौन्दर्य-वर्णन मे साग रूपक की योजना के द्वारा राधा को वसन्त वताया गया है। कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती है कि हे सखी ! राधा का अत्यन्त लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाव के लाल फूल की भाँति शोभायमान है। उसकी काली केश-राशि भौरो के समान सुशो-

भित है। काले रेशम की डोरियो मे बँधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा से सम्पन्न है। उसके मोती कदम्ब और आम की मजरियो के समान शोभायमान है। उसकी वाणी मे इतना माधुर्य है कि उसके वचनो को सुनकर कोयल भी लज्जित हो जाती है।

'तन चदन खोर कै बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी।
मनौ इदुबधून लजावन कौ सब ज्ञानिन काढि धरी गन-सी।
रसखानि विराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन-सी।
दमकै दृग-बान के घायन कौ गिरि सेत के सधि के जीवन-सी ॥'

अपने शरीर पर चन्दन लगाकर बैठी हुई वह सुधा की मानस-पुत्री राधा ऐसी प्रतीत हो रही है मानो चन्द्रमा की पत्नियो तारिकाओ को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी समग्र सात्विक शोभा को बाहर निकालकर बैठी हुई हो। उसके कुचो के बीच मे हार का चदा इस प्रकार सुशोभित है जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर मे जड दिया गया हो। वह चन्दा ऐसा प्रतीत होता है मानो दृग वाणो का घाव दमक रहा हो, अथवा श्वेत पर्वत के सधि-स्थान मे कोई जलाशय हो।

'आज सँवारति नेकु भटू तन, मद करी रति की दुति लाजै।
देखत रीझि रहे रसखानि सु, और कहा विधिना उपराजै।
आए है न्यौते तरैयन के मनो सग पतग पतग जुराजै।
ऐसे लसै मुकुतागन मैं तिल तेरे तरौना के तीर विराजै ॥'

कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज तनिक अपना शरीर सभाल लो, क्योकि इसके समक्ष रति का सौन्दर्य भी मद हो गया है और वह इसी कारण लज्जित हो रही है। आनन्द-सागर कृष्ण तुम्हारी शोभा को देखकर रीझ रहे है। तुम ब्रह्मा की सौन्दर्य-सृष्टि की चरम पराकाष्ठा हो। मोतियो से युक्त तुम्हारे तरौना के किनारे पर सुशोभित तिल इस प्रकार शोभा दे रहा है मानो सूर्य के साथ सारे नक्षत्र आकर एकत्र हो गये हो।

यह राधिका का स्वाभाविक सौन्दर्य है, किन्तु कवि ने उस सौन्दर्य का भी वर्णन किया है जो आभूपणो एव परिधानो के कारण द्विगुणित हो रहा है। यथा —

'प्यारी की चारु सिगार तरगन जाय लगी रति की दुति कूलनि।
जोवन जेव कहा कहिए उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि।

कचुकी सेत मैं जावक-विन्दु बिलोकि मरै मघवानि की सूलनि ।
पूजे है आजु मनौ रसखान सु भूत के भूप वघूक के फूलनि ॥'

अर्थात् राधा के सुन्दर सौन्दर्य की लहरें रति की शोभा के किनारो से जा लगी ह । उसके यौवन की काति का तो कहना ही क्या ? उसके हृदय पर अनेक वस्त्रो की शोभा सुशोभित है । उसकी श्वेत कचुकी मे लाल रग के विन्दु को देखकर तो मनुष्य इन्द्र के वज्र की चोट की भाँति भारी चोट खाकर मर जाता है । उसके कुचो पर पडा हुआ लाल वस्त्र इस प्रकार प्रतीत हो रहा है मानो बधूक के फूलो स शिव की पूजा की गई हो ।

राधा की शरीर-काति इस प्रकार चमकती है जैसे दिये की बाती उकसा दी गई हो—

'बाँकी मरोर गही भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की ।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिन तैं द्युति दूनी तिया की ।
सौहैं तरग अनग की अगनि ओप उरोज उठी छतिया की ।
जोवन-जोति सु यौं दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की ॥'

राधा के शरीरावयवो के सौन्दर्य-वर्णन मे परम्परागत उपमानो का ही प्रयोग किया गया है । यथा—

'जाको लसै मुख चद समान कुमानी सी भौंह गुमान हरै ।
दीरघ नैन सरोजहुँ तैं मृग खजन मीन की पाँत दरै ।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै ।
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहे सब काम करै ।

इस सवैये मे मुख के लिए चन्द्रमा का, भौंह के लिए कमानी का, नेत्रो के लिए कमल, खजन, मृग और मीन का उपमान ग्रहण किया गया है । ये उपमान उपर्युक्त उपमेयो के लिए परम्परागत है ।

इस विवेचन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि यद्यपि रसखान ने सौन्दर्य के दोनो पक्षो का—आन्तरिक पक्ष और बाह्य पक्ष का—वर्णन किया है, पर इनके वर्णन मे व्यापकता नही है । गिने-चुने शरीरावयवो की तथा भावो की परम्परागत उपमानो के द्वारा शोभा वर्णित की गई है अत. पुनरावृत्ति भी पाई जाती है । यह पुनरावृत्ति मुक्तक काव्य में किसी प्रकार की वाधा भी नही है । निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि अपनी सौन्दर्य-भावना को व्यक्त करने के लिए कवि ने जिस सीमित क्षेत्र को चुना है, उसमे वे काफी सफल रहे हैं ।

: ९ :

रसखान की अलंकार-योजना

'अलकार' शब्द दो शब्दो के योग से बना है—अलकार, जिसका अर्थ है अलकृत अथवा विभूपित करने वाला। जिस प्रकार शरीर की शोभा के लिए हारादिक का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार वाणी की शोभा के लिए—सशक्त अभिव्यजना के लिए—उपमा आदि अलंकारो का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक है कि यदि आभूषणो का उचित प्रयोग न होगा तो वे शरीर की शोभा मे बाधक ही होगे। इसी प्रकार वाणी के अलकार भी तभी अभिव्यजना मे सहायक होते है, जब उनका प्रयोग स्वाभाविक रीति से होता है। प्रयत्न साध्य अलकार-प्रयोग काव्य के काव्यत्व को हानि ही पहुँचाते है।

अलकारो के मुख्यतया दो भेद माने गये है—शब्दालकार और अर्थालकार। जब चमत्कार शब्द पर आश्रित होता है तो वहाँ शब्दालकार माना जाता है और जब वह अर्थ पर आश्रित होता है तो वह अर्थालकार माना जाता है। कुछ आचार्यो की मान्यता यह है कि शब्दालकार केवल चमत्कारक होते है, भाव-वर्द्धक नही, पर यह मान्यता उचित नही है। स्वाभाविक रीति से प्रयुक्त शब्दालकार भी भावो को सबल बनाते हैं, उनकी प्रेषणीयता में सहायक सिद्ध होते है।

रसखान के काव्य मे दोनो ही प्रकार के अलकारो का प्रचुर प्रयोग मिलता है। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि रसखान का साध्य भावो की अभिव्यक्ति थी, चमत्कारो का प्रदर्शन नही। अत इनके काव्य मे प्रयुक्त अलकार भाववर्द्धक है।

शब्दालकार

रसखान के काव्य मे शब्दालकारो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। अनुप्रास, यमक, सिहावलोकन, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति आदि अलकारों

को इन्होंने बहुत ही सफलता से प्रयोग कियाहै। यह बात निम्नलिखित विवेचन से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

१. अनुप्रास—जहाँ समान व्यजनो की स्वर-सहिता अथवा स्वर-रहित आवृत्ति हो, वहाँ अनुप्रास अलकार होता है। इसके पांच भेद माने गये हैं—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास। जहाँ अनेक वर्णो की एक वार रूपता हो, वहाँ छेकानुप्रास होता है। जहाँ वृत्तिगत अनेक वर्णो का एक वर्ग की अनेक वार समता हो, वहाँ वृत्यनुप्रास होता है। जहाँ कण्ठ, तालु आदि किसी एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णो की आवृत्ति हो, वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है। जहाँ आवृत्त वाक्यो मे तात्पर्य भेद से अर्थ की भिन्नता हो, वहाँ लाटानुप्रास होता है। छन्द की अन्तिम तुक को अन्त्यानुप्रास कहते है। रसखान-काव्य मे ये सभी भेद उपलब्ध हैं। यथा—

'मानुप हौं तौ वही रसखानि वसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा वस मेरो चरौं नित नद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरदर धारन।
जौं खग हौं तौ वसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंव की डारन।

इस सवैये मे 'वसौं ब्रज' मे 'व' की, 'गोकुल गाँव' मे 'ग' की, 'नित नद' मे 'न' की और ,कालिंदी कूल मे 'क' वर्णो की आवृत्ति है। अत यहाँ छेकानुप्रास है। इसी प्रकार—

'सकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म वढावैं।
नैक हिये जिहि आनत ही जड मूढ महा रसखानि कहावैं।
जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्रानन प्रानन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरी छाछ पै नाच नचावैं॥

इसमे 'संकर से सुर' मे 'स' की, 'ध्यानन धर्म' मे 'ध' की, 'देव अदेव' मे 'द' और 'व' की, 'प्रानन पावैं' मे 'प' की 'छोहरिया छछिया' मे 'छ' की 'नाच नचावे' मे 'न' की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

वृत्यनुप्रास मे वृत्तिगत अनेक वर्णो की या एक वर्ण की अनेक वार समता होती है। यथा—

'सेप गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनत अखड अछेद अभेद सुवेद वतावैं।

नारद से सुनि व्यास रहै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥'

इस सवैये मे 'स', 'अ' 'द', 'प', और 'घ' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति है। अत' यहाँ कोमलावृत्ति से युक्त वृत्यनुप्रास है। इसी प्रकार—

'गावै गुनि गनिका गधरब औ सारद सेप सबै गुन गावत ।' मे 'ग' और "स' वर्ण की अनेक वार आवृत्ति होने के कारण वृत्यनुप्रास है।

वृत्यनुप्रास के अन्य उदाहरण ये है—

१ 'साज समाज सबै सिरताज औ छाज की बात नही कहि आवै।'

२ 'सेष सुरेस दिनेस गनेस अजेस धनेस महेस मनावौ।

३. 'है कुच कचन के कलसा न ये आम की गाँठ मढीक की चाम मे।'

४. 'लाडली लाल लसै लखियै अलि पु जनि कु जनि मै छवि गाढी।'

५ 'वालन लाल लिये विहरै छहरै वर मोरपखी सिर ठाढी।'

'मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अग ही अग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरब पुन्यनि ते रसखानि सु मोहिनी भूरति आनि निहारी।
चार्यौ दिसनि को लै छबि आनि कै झाँके झरोखे मै वाँके बिहारी ॥'

इस सवैये मे 'त, न, ल' वर्ण दन्त्य स्थान के, 'ट और र, मूर्धन्य स्थान के 'प ब, म' ओष्ठ्य स्थान के है। अत' यहाँ श्रुत्यनुप्रास है।

५. **यमक**—जहाँ एक ही शब्द की दो बार आवृत्ति हो, किन्तु आवृत शब्द भिन्नार्थक हो, वहाँ यमक अलकार होता है। यह आवृत्ति तीन प्रकार से हो सकती है—

१. जहाँ दोनो शब्द सार्थक हो।

२. जहाँ दोनो शब्द निरर्थक हो।

३. जहाँ एक शब्द सार्थक औन एक निरर्थक हो।

रसखान के काव्य मे तीनो प्रकार के यमक पाये जाते है।

'बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौ रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी ॥'

इस सवैये की अंतिम पक्ति मे 'रसखानि शब्द की आवृत्ति है। दोनो

शब्द सार्थक है। अत यहाँ यमक अलकार है।

'आजु गई हुती भोर ही हौ रसखानि रई वाहि नद के भौनहि।
वाकौ जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहि।
तेल लगाइ लगाइ के अजन भोहे बनाइ बनाइ डिठौनहि।
आलि हमेलनि हारि निहारत वारत ज्यौ पुचकारत छौनहि॥'

इस सवैये की अतिम पक्ति मे प्रयुक्त 'वारत' और 'पुचकारत' इन शब्दों मे 'आरत' शब्द की आवृत्ति है। दोनो ही शब्द निरर्थक है। अत यमक अलकार है।

'लाल लसै पगिया सबके सबके पट कोटि सुगन्धनि भीनें।
अगनि अग सजै सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने।
मुकता गलमाल लसै सब के सब ग्वार कुमार सिंगार सो कीने।
मै सिगरे ब्रज केहरि की हरि ही के हरै हियरा हरि लीने॥'

यहाँ अंतिम पक्ति मे 'केहरि' मे 'हरि' और 'हरि' शब्द की आवृत्ति है। 'केहरि' का 'हरि' निरर्थक है। अत यहाँ पर एक निरर्थक और एक सार्थक पद की आवृत्ति है। यहाँ यमक अलंकार है।

यमक के अन्य कुछ उदाहरण ये है—

१. 'जो रसना रस ना विलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।'
२ 'जो पै राखनहार है माखन चाखनहार।'
३. 'बिमल सकल रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि।
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि॥'
४ 'तामरस-लोचन खरोचन को ठाढे है।'
५. 'ताते तिन्है तजि जनि गिर्यौ गुन सौगुन औगुन गाँठि परैगी।'
६ 'सो कवि देखि आनन्दन नन्द जू अगनि अंग समात न फूलै।'
७ राधिका जी है तो जीहै सबै न तौ पीहै हलाहल नन्द के द्वारै।'
८. 'यो पछितावो यहै जु सखी कि कलंक लग्यौ पर अंक न लागी।'

३. सिंहावलोकन—जिस प्रकार सिंह पीछे मुडकर देखता है, उसी प्रकार अलंकार मे एक चरण के वर्णो की दूसरे चरण के प्रारम्भ मे आवृत्ति होती है। इसे सस्कृत आचार्यो ने मुक्तपदग्राह्य यमक कहा है। रसखान-काव्य मे इस अलंकार का केवल एक उदाहरण मिलता है जो यह है—

'भेती जु पै कुबरी ह्याँ सखी भरि लातन मूका बकोटती लेती ।
लेती निकारि हिये की सबै नक छेदि कै कौडी पिराइ कै देती।
देती नचाइ कै नाच वा रॉड को लाल रिझावन को फल सेती ।
सेती सदा रसखानि लिये कुबरी के करेजनि सूल सी भेती ।।'

इस सवैये मे 'भेती', 'लेती', 'देती' और 'सेती' वर्णो की आवृत्ति है ।

४. वीप्सा—जहाँ किसी भाव को सबल बनाने के लिए उन्ही शब्दो की आवृत्ति की जाती है, वहाँ वीप्सा अलंकार होता है । रसखान ने इस अलकार का भी बडी कुशलता से भावपूर्ण प्रयोग किया है । यथा—

'तै न लख्यौ जब कुंजनि ते बनिके निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री ।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ अरु कैसो किरीट लसै लटक्यौ री ।
को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ ब्रज-लोग फिरै भटक्यौ री ।
रूप सबै हरिवा नट को हियरे भटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री ।।'

इस सवैये मे 'अटक्यौ' शब्द की तीन बार आवृत्ति के कारण कृष्ण के प्रति गोपी के प्रेम की अधिक प्रगाढता व्यजित हुई है । इसी प्रकार—

'काननि दै अँगुरी रहिबो जबही मुरली धुनि मद बजै है ।
मोहनी ताननि सो रसखानि अटा चढि गोधन गैहै तो गैहै ।
टेरि कहौ सिगरे ब्रज-लोगनि काल्हि कोऊ सु कितौ समुझैहै ।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै ।

इस सवैये की चतुर्थ पक्ति मे 'न जैहै' शब्द की तीन बार अवृत्ति है जो कृष्ण की मुस्कान के आकर्षण को कई गुना बढा देती है ।

५ श्लेष—जहाँ कोई शब्द एक से अधिक अर्थो का द्योतन करने के कारण चमत्कारक होता है, वहाँ श्लेष अलकार होता है । इसके दो भेद किये गये है—सभंग श्लेषऔरअभग श्लेष । सभग श्लेष मे पद को भग करने से एकाधिक अर्थ की प्राप्ति होती है और अभग श्लेष मे पद को भग नही करना पड़ता । सभग श्लेप की अपेक्षा अभग श्लेप मे अर्थ की रमणीयता अधिक रहती है । इसीलिए भाव-प्रवण कवियो की रचनाओ मे सभग श्लेप की अपेक्षा अभग श्लेप के उदाहरण ही मिला करते है । रसखान मे तो केवल अभग श्लेप ही मिलता है । यथा—

'ए सजनी लोनो लला, लह्यौ नद के गेह ।
चितयौ मृदु मुसकाइ कै, हरी सबै सुधि देह ।।'

यहाँ पर 'हरी' शब्द के हरण 'करना' और 'प्रसन्न होना' ये दो अर्थ हैं। इसी प्रकार—

'स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यौ रसखानि।
भई दिमानी पानि करि, प्रेम मद्य मन मानि॥'

इस दोहे मे 'स्याम' और 'रस' शब्द श्लिष्ट है।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी रसखान-काव्य से प्रस्तुत किये जा सकते है।

६ वक्रोक्ति—जब वक्ता कोई बात कहे और श्रोता उस बात का अन्य अर्थ, जो वक्ता का अभीष्ट नही है, काकु या श्लेप के बल से ग्रहण करता है, तो वक्रोक्ति अलकार होता है। वक्रोक्ति अलकार के दो भेद है—श्लेप वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति। श्लेप वक्रोक्ति की अपेक्षा काकु वक्रोक्ति मे अर्थ की अधिक रणमीयता होती है। इसी कारण अनेक आचार्यो ने काकु कक्रोक्ति को अर्थालकारो के अन्तर्गत माना है। रखसान-काव्य मे काकु-वक्रोक्ति के ही उदाहरण मिलते है। यथा—

'कौन ठगौरी भरि हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रग-भीनी।
तान सुनी जिनही तिनही तबही तित लाज विदा करि दीनी।
धूमै घरि घरि नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या ब्रज-मडल मै रसखानि सु कौन भटू जू लटू नही कीनी॥'

इस सवैये की अतिम पक्ति मे गोपी ने अपनी सखी को काकु के द्वारा बताया है कि इस ब्रज-मडल की प्रत्येक गोपी को कृष्ण ने मोहित कर रक्खा है। इसी प्रकार—

'फागुन लाग्यौ सखी जब तै तब तै ब्रज मडल धूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचै नहि एक विसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है।
साँझ सकारे वही रसखानि सुरग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है॥'

इसमे 'को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है' मे काकुवक्रोक्ति अलकार है।

'वा रसखानि सुनौ सुनिकै हियरा सत टूक है फाटि गयौ है।
जानति है न कछू हम ह्याँ उनवाँ पढि मत्र कहा धौ दयौ है।

साँची कहैं जिय मैं निज जानि कै जानति है जस जैसो लयौ है ।
लोग लुगाई सबै ब्रज माँहि कहै हरि चेरी को चेरो भयो है ।।'

यहाँ पर 'जस जैसो लयौ है' मे काकु के द्वारा यह बताया गया है कि वे बहुत बदनाम हो गए है । अत काकु वक्रोक्ति अलकार है ।

अर्थालकार

रसखान जैसे भावुक कवि की भाषा मे अर्थालकारो का प्रवाह आ जाना स्वाभाविक है । इनके द्वारा प्रयुक्त कुछ अर्थालकारो के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है ।

१. **उपमा**—उपमान और उपमेय के सादृश्य वर्णन मे उपमा अलंकार होता है । रसखान ने इस अलकार का बहुत मात्रा मे और बहुत कुशलता से प्रयोग किया है । यथा—

'सुनियै सबकी कहिये न कछू रहियै इमि या भव-बागर मै ।
करियै व्रत-नेम सचाई लिये जिनते तरियै भव-सागर मै ।
मिलियै सबसो दुरभाव बिना रहियै सतसग उजागर मै ।
रसखानि गुबिन्दहि कौ भजियै जिमि नागरि कौ चित्त गागर मै ।।'

भगवद्-भजन के लिए नागरी के चित्त की एकाग्रता का सादृश्य दिखलाया गया है । अत यहाँ उपमा अलंकार है । इसी प्रकार—

'लाडली लाल लसै लखियै अलि पुजनि कुजनि मै छबि गाढी ।
ऊजरी ज्यौ बिजुरी सी जुरी चहूँ गुजरी केलि-कला सम काढी ।
त्यौ रसखानि न जानि परै सुखमा तिहुँ लोकन की अति बाढी ।
बालन लाल लिये बिहरै छहरै बर मोरपखी सिर ठाढी ।'

'ऊजरी ज्यौ बिजुरी सी जुरी चहूँ गुजरी केलि-कला सम काढी' मे उपमा अलकार है । इस अलकार के अन्य उदाहरण ये है—

१ सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रग सुधारस-सानी ।'
२. 'ऐंचे आवत धनुष से छूटे सर से जाहि ।'
३ 'जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढरि राँग सो आँग ढर्यो है ।'
४ 'तिरछी बरछी सम मारत है दृग-बान कमान सुकान लग्यौ ।'
५ 'जाको लसै मुख चन्द समान सुकोमल अगनि रूप लपेटी ।'
६ 'चन्द सो आनन मैन मनोहर बैन मनोहर मोहत हौ मन ।'

२. रूपक—उपमेय मे उपमान के निषेध-रहित आरोप को रूपक अलकार कहते है। इसके मुख्यतया दो भेद है— साग रूपक और निरग रूपक। जहाँ उपमेय के अवयवो के सहित उपमान के अवयवो का आरोप किया जाता है, वहाँ साग अथवा सावयव रूपक होता है और जहाँ अवयवो से रहित उपमान का उपमेय मे आरोप किया जाता है, वहाँ निरग अथवा निरवयव रूपक अलकार होता है। रसखान ने इस अलकार का भी प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। यथा—

'अति सुन्दर री ब्रजराज कुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइकै लाज की गाँठन खोलत है।
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है।
रसखानि लखे मन बूडि गयो मधि रूप के सिन्धु कलोलत है॥'

यहाँ सौन्दर्य पर सागर का आरोप किया गया है, पर अवयवो का उल्लेख नही है। अत. यहाँ निरग रूपक है। और—

'नैन दलालनि चौहटें, मन-मानिक पिय हाथ।
रसखान ढोल बजाइकै, बेच्यो हिय जिय साथ॥'

यहाँ भी नैनो पर दलालो का, मन पर माणिक का आरोप किया गया है। अत यहाँ पर निरग रूपक अलकार है।

'दमकै रवि कुंडल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजत है।
मुकताहल-वारन गोपन के सु तौ बून्दन की छवि छाजत है।
ब्रजबाल नदी उमही रसखानि मयक-वधू दुति लाजत है।
यह आवन श्री मनभावन की बरषा जिमि आज विराजत है॥'

इस सवैये मे कृष्ण के आगमन पर वर्षा-ऋतु का आरोप किया गया है। सभी अगो का वर्णन है। अत यहाँ साग रूपक अलकार है।

इस अलकार के अन्य उदाहरण ये है—

१ 'मत्त भयो मन सग फिरै रसखानि सरूप सुधारस घूट्यौ।'
२. 'लटकी लट यो दृग-मीननि सो बनसी जियवा नट की अटकी।'
३. 'मो मन-मानिक लै गयौ चितै चोर नदनद।'
४. 'रसखानि महावत रूप सलोने को मारग ते मन मोहत है।'
५. 'तिरछी बरछी सम मारत है दृग-बान कमान सुकान लग्यौ।'
६. 'भौह कमान सो जोहन को सर बेधत आनन नन्द को छौनो।'

३. उत्प्रेक्षा—जहाँ प्रस्तुत की—उपमेय की—अप्रस्तुत रूप मे—उपमान रूप मे—सभावना की जाये, वहाँ उत्प्रेक्षा अलकार होता है। इस अलकार के प्रयोग मे भावो मे प्रभावशीलता आती है। अत रसखान ने उपमा और रूपक की भाँति इस अलंकार का प्रयोग भी वहुलता से किया है। यथा—

'साँझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौ मन यौ ललकै री।
ऊँची अटान चढी ब्रजवाम सु लाज सनेह दुरै उझकै री।
गोधन धूरि की धूँधरि मैं तिनकी छवि यौ रसखान तकै री।
पावक के गिरि ते बुछि मानौ धुँवा-लपटी लपटै लपकै री।।'

यहाँ गोरज से धूसरित कृष्ण की छवि मे आग के पहाड से बुझकर उठते हुए धुँए के बादल की सभावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलकार है। इसी प्रकार—

'मैन-मनोहर बैन बजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यौ दमकै चमकै झमकै दुति दामिन की मनो स्याम घटा है
ए सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढि फेरत लाल बटा है।
रसखानि मठा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुलकानि कटा है।।'

यहाँ पर कृष्ण की पीत-वस्त्र से चमकती हुई कांति मे बादल मे चमकती हुई बिजली की सभावना के कारण उत्प्रेक्षा अलकार है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये है।—

१ 'टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख-पेटी।'
२. 'नटक ते सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भाँति कँपै डरपै।
मनौ दामिनि सावन के घन मैं निकसै नही भीतर ही तरपै।।'
३ 'कंचुकी सेत मे जावक बिन्दु बिलौकि मरै मघवानि की सूलनि।
पूजे है आजु मनौ रसखान सु पूत के भूप बधूक के फूलनि।।'
४. 'जोवन-जोति सु यौ दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की।'

४. अतिशयोक्ति—लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करने को—प्रस्तुत को बढा-चढाकर कहने को—अतिशयोक्ति अलकार कहते है। रसखान ने इसका भी सफलता से प्रयोग किया है। यथा—

'या छवि पै रसखानि अब, वारौ कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहि पाई रहे सुखोज।।'

कृष्ण की छवि की उपमा अभी तक कवियो को नही मिली और वे अभी

तक पूर्ण परिश्रम के साथ उस उपमा को खोज रहे हैं। यह कथन प्रस्तुत को बढा-चढाकर कहने का द्योतक है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलकार है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये है—

१. 'जाको लसै मुख चंद समान कमानी सी भौंह गुमान हरै।
दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पात दरै।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै।"

२. गोकुल नाथ वियोग प्रलै जिमि गोपिन नद जसोमतिजू पर।
बहि गयौ अँसुवान प्रवाह भयौ जल मैं ब्रजलोक तिहूँ पर।
तीरथराज सी राधिका प्रान सु तो रसखान मनौ ब्रज भू पर।
पूरन ब्रह्म है ध्यान रह्यौ पिय औधि अखैंवट पात के ऊपर॥

५. **विरोधाभास**—जहाँ कथन मे विरोध का आभास हो, पर वास्तव मे विरोध न हो, यहाँ विरोधाभास अलकार होता है। रसखान ने इसका कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

'सकर से सुर जाहि जपै चतुरानन ध्यानन धर्म बढावे।
नैक हिये जिहि आवत ही जड मूढ महा रसखान कहावै।
जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्रानन प्रानन पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै॥'

इस सवैये की तीसरी पक्ति मे प्रयुक्त 'वारत प्रानन प्रानन पावै' ये विरोधाभास अलकार है। इसी प्रकार—

'एरी चतुर सुजान, भयौ अजान हि जान कै।
तजि दीनी पहचान, जान अपनी जान को॥

मे पी 'भयौ अजान हि जान कै' के कारण विरोधाभास अलकार है।

६ **समाधि**—जहाँ अचानक और कारणो के आ पडने से काम सुगम हो जाये, वहाँ समाधि अलकार होता है। इसे समहित अलकार भी कहते है। रसखान ने इस अलकार का अधिक प्रयोग नही किया, फिर जो उदाहरण है, वे पूर्णतया प्रभावपूर्ण है। यथा—

'कम कुढ्यौ सुनि बानी अकास की ज्यावनहारहिं मारन धायौ।
भादव साँकरी आठई को रसखान महाप्रभु देवकी जायौ।

रैनि अँधेरी मे लै बसुदेव महावन मैं अरगै धरि आयौ ।
काहु न चौजुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ ।।'

जिस कृष्ण को योगी भी अपनी जागृत अवस्था मे प्राप्त नही कर सकते, वही यशोदा को आसानी से प्राप्त हो गया । अत यहाँ समाधि अलकार है ।

७. **उल्लेख**—जहाँ एक ही वर्णनीय विषय का विभिन्न-भेद से अनेक प्रकार का वर्णन हो, वहाँ उल्लेख अलकार होता है । निम्नलिखित सवैये मे कृष्ण के अनेक रूपो का वर्णन है—

'वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन
सदाशिव सदा ही भरत ध्यान गाढै है ।
वेई विष्नु जाके काज मानी मूढ राज रक,
जोगी जती है कै सीत सह्यौ अग डाढै है ।
वेई ब्रजचद रसखानि प्रान प्रानिन के,
जाके अभिलाख लाख लाख भाँति बाढै हैं ।
जसुधा के आगे वसुधा के मान-मोचन ये,
तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढै है ।।'

इसी प्रकार—

'सोई है रास मैं नैसुक नाचि कै नाच नचायौ कितौ सबको निज ।
सोई है की रसखानि किते पउहारनि सूधे चितौत न हो छिन ।
तो पै धौ कौन मनोहर भाव बिलोकि भयौ बस हा हा करी तिन ।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिर लगर मौडो कनौडो करै किन ।।'

मे भी उल्लेख अलंकार है ।

८. **अत्युक्ति**—सम्पति, सौन्दर्य, शौर्य, औदार्य, सौकुमार्य आदि गुणो के मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति अलकार कहते है । रसखान ने कृष्ण-प्रीति के प्रतिपादन में इस अलकार का प्रयोग किया है । यथा—

'कचन-मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा झलकैयत ।
प्रात ही ते सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
यद्यिप दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसे भये तौ कहा रसखानि जौ साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत

इस सवैये मे ककृष्ण की प्रीति बढा-चढाकर वर्णन करने के कारण अत्युक्ति अलकार है ।

९. अपन्हुति—जहाँ प्रकृत का—उपमेय का—निषेध करके अप्रकृत का—आरोप किया जाता है, वहाँ अपन्हुति अलकार होता है। रसखान ने इस अलंकार का प्रयोग निम्नि लिखित सवैये मे किया है।

'है छल की अप्रतीत की सूरति मोड बढावै बिनोद कलाम मे।
हाथ न ऐहै कछू रसखान तू क्यो वहकै विष पीवत काम मे
है कुच कचन के कलसा नये आम की गाठ मढीक की चाम मे।
बैनी नही मृगनैननि की ये नसैनी लगी यमराज के धाम मे।

यहाँ पर कुच और चोटियो का निषेध करके इन पर आम की गाँठ और नसैनी का आरोप किया गया है। अतः अपन्हुति अलकार है।

१०. व्यतिरेक—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाये, वहाँ व्यतिरेक अलकार होता है। यथा—

'धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अगना पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी।
वा छवि को रसखानि बिलोकत बारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बडे सजनी हरि-हाथ सो लै गयो माखन-रोटी।"

इस सवैये मे कामदेव के सौन्दर्य की अपेक्षा कृष्ण के सौन्दर्य का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है। इसी प्रकार—

'जाको लसै मुख चन्द समान कमानी सी भौंह गुमान हरै।
दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पाँत दरै।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै।
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै।"

इस सवैये मे मृग, खजन और मीन की अपेक्षा राधा के नेत्रो की शोभा का उत्कर्पपूर्ण वर्णन है। अतः यहाँ व्यक्तिरेक अलकार है।

११. दृष्टांत—जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का विम्ब-प्रतिविम्व भाव हो, वहाँ दृप्टात अलकार होता है। यथा—

'जा दिन तै निरख्यौ नन्दनन्दन कानि तजी घर बधन छूट्यौ।
चारु विलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन यार ने लूट्यौ।
सागर को सलिला जिमि धावै न रोकी रहै कुल को पुल टूट्यौ।
मत्त भयौ मन संग फिरै रसखान सरूप सुधारस घूट्यौ॥"

१२. अर्थान्तरन्यास—जहाँ विशेष से सामान्य का, या सामान्य से विशेष्य

का साधर्म्य वा वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाये, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होता है। यथा—

'मोहक रूप छकि बन डोलति घूमति री तजि लाज विचारै।
बक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै।
रगभरी मुख की मुसकान लखे सखी कौन जू देह सम्हारै।
ज्यौ अरविन्द हिमन्त-करी झकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारै।'

यहाँ मुसकान विशेष का हिमन्त-करी सामान्य से साधर्म्य के द्वारा समर्थन किया गया है। अत अर्थान्तरन्यास अलकार है।

१३. **प्रतीप**—जहाँ उपमेय को उपमान कल्पित कर लिया जाये, वहाँ प्रतीप अलकार होता है। यथा—

'मोहन के मन की सब जानति जोहन के पग मोहि लियो मन।
मोहन सुन्दर आनन चद ते कुंजन देख्यौ मै स्याम सिरोमन।
ता दिन ते मेरे नैननि लाज तजी कुलकानि की डोलति हौं बन।
कैसी करौ रसखानि लगी जकरी पकरी पिय के हित को मन।।'

यहाँ चन्द्र की अपेक्षा आनन का उत्कर्ष वर्णित है। अत. प्रतीप अलकार है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये है—

१. 'कल काननि कुडल मोरपखा उर पै बनमाल विराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि-तरग महाछवि छाजति है।
रसखानि लखै तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है।
वहि बाँसुरी की धुनि कान परै कुलकानि हियो तजि भाजति है।।'

२. 'सोई हुती पिय की छतियाँ लगि बाल प्रवीन महा मुद मानै।
केस खुले घहरै बहरै फहरै छवि देखत मैन अमानै।
वा रस मे रसखानि पगी रति रैन जगी अखियाँ अनुमानै।
चन्द पे विम्ब औ विम्ब पै कैरव कैरव पै मुकता न प्रमानै।'

१४ **सदेह**—जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध मे सादृश्य-मूलक सदेह हो, वहाँ सदेह अलकार होता है। यथा—

'वा मुख की मुसकानि भटू अखियानि ते नेकु टरै नहि टारी।
जौ पलकै पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी।
दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ बजमारी।
प्रेम की बानि कि जोग कलानि गही रसखानि विचार विचारी।।'

इस सवैये की अन्तिम पक्ति मे सदेह अलकार है। इस अलकार का एक अन्य उदाहरण और देखिये—

'दूव दुह्यौ सीरो पर्यौ तातो न जमायो कर्यो,
जामन दयौ सो घर्यौ धर्यौई खटाइगौ।
आन हाथ आन पाइ सब ही के तब ही ते,
जब ही ते रसखानि तानिन सुनाइगौ।
ज्यौंही नर त्यौंही नारी तैसी यै तरुन वारी,
कहियै कहा री सब ब्रज बिललाइ गौ।
जानियै न आली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगौ कि विष बगदरइ गौ॥'

१५. असंगति—कारण-कार्य की स्वाभाविक सगति के अभाव मे असगति अलकार होता है। यथा—

'श्री वृषभान की छान धुजा अटकी लरकान ते भान लई री।
वा रसखान के पानि की जानि छुडावति राधिका प्रेम मई री।
जीवन-मूरी सी नेम लिये इनहूँ चितयौ उनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही सुरझानि गुडी उरझाय दई री।"

यहाँ सुलझाने वाली गुडी उलझा देती है। अत असगति अलकार है।

इस विवेचन के पश्चात् यह कहना कठिन नही कि रसखान की अलकार योजना बहुत ही सफल और प्रभाववर्द्धक है। इन्होने अलकारो का प्रयोग श्रम द्वारा नही किया, वरन् ये तो स्वत भावावेग मे आ गये है। स्वाभाविक रूप से आये हुए अलंकार भाषा मे अधिक प्रभाव और गति उत्पन्न कर देते है। यह निर्विवाद मत है। जहाँ अलकार अभिव्यक्ति के साधन और सहायक होते है, वही इनका प्रयोग सार्थक होता है। रसखान की अलकार-योजना ऐसी ही है।

: १० :

रसखान की भाषा

भाषा भावो की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। जो कवि जितना अधिक समर्थ होता है, उतना ही अधिक उसका भापा पर अधिकार होता है। शब्द, अलकार, गुण, छद, लोकोक्ति और मुहावरे भाषा के प्राणदायक अग होते है। अत किसी कवि की भापा की समीक्षा करने के लिए इन अंगो का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। रसखान की भाषा का विवेचन भी इसी आधार पर करना उचित है।

शब्द-योजना

यह सच है कि शब्द-समूह से भापा का निर्माण होता है, पर प्रत्येक शब्द-समूह सफल एव प्रभावशाली भापा को जन्म नही दे सकता। सफल भापा के लिए भावानुसारिणी शब्द-योजना की सयोजना भी आवश्यक है। जहाँ तक शब्द-योजना का प्रश्न है, रसखान इस कसौटी पर खरे उतरते है। इनका शब्द-चयन अभीसित भावो को व्यक्त करने मे पूर्णतया समर्थ एव सफल है। यथा—

'बात सुनी न कहूँ हरि की, न कहूँ हरि सो मुख बोल हँसी है।
कालिह ही गोरस बेचन कौ निकसी व्रजवासिनि बीच सखी है।
आजु ही बारक 'लेहु दही' कहिकै कछु नैनन मै बिहँसी है।
बैरिनि वाहि भई मुसकानि जुवा रसखान के प्रान बसी है॥'

यहाँ पर 'बैरिनि' शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक एव भावपूर्ण है। इस शब्द से आक्रोश और आत्मीयता दो विरोधी भाव परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हो गये है।

'अत मे न लयौ माही गाँवरे को जायौ,
माई बापरे जिवायौ प्याइ दूध बारे-बारे को।

सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे-द्वारे को।'
मैया की सौं सोच कछू मटकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर भीरि द्वारे को।
सहै दुख भारी गहै डगर हमारी मांझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को॥'

इस कवित्त मे शब्दो की योजना अत्यन्त भावपूर्ण है। 'नचैया' शब्द आत्मीयता का सूचक है।

'कान्ह भरा बस बांसुरी के अब कौन सखी हमको चहि है।
निसद्यौस रहे संग-साथ लगी यह सौतिन तापन क्यौं सहि है।
जिन मोहि लियौ मनमोहन को रसखानि सदा हमको दहि है।
मिलि आओ सबै सखी[1] भागि चले अब तौ ब्रज मैं बँसुरी रहि है॥'

इस सवैये मे बाँसुरी के प्रति गोपियो का सपत्नी-भाव व्यंजित है। इनमे 'कौन' शब्द कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है जो अत्यन्त आत्मीयता का सूचक है। 'मनमोहन' शब्द का प्रयोग भी साभिप्राय है, इनसे बाँसुरी की महत्ता सूचित होती है, क्योंकि जो कृष्ण सबका मन मोहने के कारण मनमोहन बने हुए है, वे स्वय बाँसुरी द्वारा मोहित कर लिये गए है। 'मिलि आओ सबै' से सभी सखियो के दुख की तथा समान दुख होने से उनकी एकता की व्यजना होती है।

'कल काननि कुंडल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि-तरंग महाछवि छाजति है।
रसखानि लखें तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है।
वहि बाँसुरी की धुनि कानि परें कुल-कानि हियो तजि भाजति है॥'

इसमे 'वहि' शब्द का प्रयोग बाँसुरी के उन प्रभावो की ओर संकेत करता है जिनसे प्रभावित होकर गोपियाँ अपने कुल की लाज छोडकर कृष्ण के आगे पीछे दौडने लगती हैं।

शब्द-योजना के द्वारा वर्ण्य वस्तु का चित्र प्रस्तुत करने मे भी रसखान सिद्धहस्त दिखाई पडते है। चित्रात्मकता का यह उदाहरण देखिए—

'जल की न घट परैं पग की न पग धरैं,
घर की न कछु करैं बैठी भरैं साँसु री।

एकै सुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।
कहै रसखानि सो सबै व्रज-वनिता बधि,
वधिक कहाय हाय भई कुल हाँसु री।
करियै उपाय बाँस डारियै कटाय,
नाहि उपजैगी बाँस नाहि बाजे फेरि वाँसुरी॥'

रसखान की शब्द-योजना भावाभिव्यक्ति मे पूर्णतया समर्थ एव सफल है। साग रूपक की योजना प्रस्तुत करते समय प्राय: दुरुहता आ जाती है, पर रसखन के काव्य मे यह दोष भी दिखाई नहीं देता। वर्षा-विषयक यह साग रूपक देखिए—

'दमकै रवि कुंडल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजति है।
मुकताहल-वारन गोपन के सु तौ बूँदन की छवि छाजत है।
ब्रजबाल नदी उमही रसखानि मयकबधू-दुति लाजत है।
यह आवन श्री मनभावन की बरखा जिमि आज बिराजत है॥'

संगीतात्मकता भी रसखान की शब्द योजना की एक प्रमुख विशेषता है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर इस प्रकार बिठाया गया है कि क्या मजाल, कही भी सगीतात्मकता को क्षति पहुँचे अथवा जिह्वा तथा स्वर की गति मे बाधा पडे। रसखान का समूचा काव्य इसका उदाहरण है, फिर भी दो सवैये प्रस्तुत है—

१ 'नद को ंदन है दुसकदन प्रेम के फदन बाँधि लई हौ।
एक दिना ब्रजराज के मदिर मेरी अली इक बार भई हौ।
हेर्यौ लला ललचाइ कै मोहन जोहन की चकडोर पई हौ।
दौरी फिरौ दृग डोरनि मैं हिय मै अनुराग की बेलि बई हौ॥'

२. 'दृग दूने खिचे रहै कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही।
छकि छैल छबीली छटा लहराइ कै कौतुक कोटि दिखाइ रही।
झुकि झूमि झमाकनि चूमि अमी चहि चाँदनी चद चुराइ रही।
मन पाइ रही रसखानि महा छवि मोहन की तरसाइ रही॥'

इस विवेचन के उपरात यह कहना अन्यथा न होगा कि रसखान की शब्द-योजना भावानुसारिणी, भावाभिव्यजक एव सफल है।

अलंकार-योजना

काव्य मे अलकारो का प्रयोग भाव-समृद्धि के लिए किया जाता है। जो अलकार श्रमसाध्य होते है, अथवा भाव-सौन्दर्य मे किसी प्रकार से सहायक नही होते, वे हेय समझे जाते है। सफल कवियो की वाणी मे भावो के साथ अलंकार भी स्वत फूटते चलते है। अलकारो का यह स्वत. स्फुटन काव्य और साहित्य की अमर एव भव्य निधि है।

अलकारो के मुख्यतया दो भेद किये गये है—शब्दालकार और अर्थालंकार। जो अलकार शब्दाश्रित होते है, उन्हे शब्दालकार और जो अर्थाश्रित होते है, उन्हे अर्थालकार कहते है। रसखान ने दोनो प्रकार के अलकारो का ही प्रयोग किया है। पहले हम शब्दालंकारो को लेते है।

शब्दालंकारो मे रसखान ने अनुप्रास और यमक का सबसे अधिक प्रयोग किया है। इस प्रयोग को देखकर यदि इन्हे अनुप्रास और यमक सम्राट् कहा जाये तो अनुचित न होगा। अनुप्रास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है .

'गावै गुनी गनिका गधरब्ब औ सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनत गनेस ज्यौ ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया परि छाछ पै नाच नचावत॥'

इस सवैये मे 'ग', 'स', 'न' 'त', 'प', 'ज', 'द' और 'न' वर्णो की आवृत्ति है। अत यह वृत्यनुप्रास है।

मानुप हौ तौ वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौ तौ कहा बस मेरो चरौ नित नद की धेनु मँझारन।
पाहन हौ तो वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौ तौ बसेरो करौ मिलि कालिन्दी कूल-कदम्ब की डारन॥'

इस सवैये मे 'व', 'ग', 'न' और 'क' वर्ण की आवृत्ति है। यह छेकानुप्रास है।

अनुप्रास की भाँति रसखान ने यमक का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है। यमक के मुख्यतया तीन भेद होते है—

१. जहाँ दोनो आवृत्त वर्ग सार्थिक हो।
२. जहाँ दोनो आवृत्त वर्ग निरर्थक हो।

३, जहाँ आवृत्त वर्गो मे से एक वर्ग सार्थक और एक वर्ग निरर्थक हो।

रसखान ने इन तीनो प्रकार के यमको का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। यथा—

'बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी।'

इस सवैये की अन्तिम पक्ति मे 'रसखानि' शब्द की आवृत्ति है। दोनो शब्द सार्थक है।

आजु गई हुती भोर ही हौ रसखानि रई वहि नन्द के भौनहि।
वाकौ जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहि।
तेल लगाइ लगाइ कै अजन भौहे बनाइ बनाइ ढिठौनहि।
डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौ चुचकारत छौनहिं।'

इस सवैये की अन्तिम पक्ति मे 'वारत' और 'चुचकारत' मे 'रत' वर्णो की आवृत्ति है। दोनो ही आवृत्ति निरर्थक है।

'लाल लसै पगिया सबके सबके यह कोटि सुगन्धनि भीने।
अगनि अग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने।
मुकता गलमाल लसे सबके सब ग्वार कुमार सिगार सो कीने।
पै सिगरे व्रज केहरि हो हरि ही के हरै हियरा हरि लीने।

इस सवैये की अन्तिम पक्ति मे 'केहरी' और 'हरी' शब्द की आवृत्ति है। 'केहरी' का 'हरी' निरर्थक है।

अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त रसखान ने सिहावलोकन, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति शब्दालकारो का भी प्रयोग किया है। इन अलकारो के उदाहरण निम्नलिखित है—

सिहावलोकन—

'होती जु पै कुबरी ह्याँ सखी भरि लातनि मूका बकोटती लेती।
लेती निकारि हिये की सबै नक छेदि कै कौड़ी पिराइ कै देती।
देती नचाइ कै नाच वा रॉड को लाल रिझावन को फल सेती।
सेती सदा रसखान लिये कुबरी के करेजनि सूल सी भेती।'

वीप्सा

'तै न लख्यौ जब कुंजनि ते बनिके निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ अरु कैसो किरीट लसै लटक्यौ री।
को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ ब्रजलोग भिरै भटक्यौ री।
रूप सबै हरि या नट को हियरे अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री।'

श्लेष—

'स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यौ रसखानि।
भई दिमानी पानि करि, प्रेम मद्य मन मानि।'

वक्रोक्ति—

'कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रग-भीनी।
तान सुनी जिनही तिनही तबही तित लाज विदा करि दीनी।
घूमै घरी घरी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या ब्रजमण्डल मे रसखानि सु कौन पटू जु लटू नहिं कीनी।'

रसखान द्वारा प्रयुक्त शब्दालकार केवल चमत्कारक नही, जैसा कि प्राय. शब्दालंकारो के विषय मे कहा जाता है, वरन् ये भावो का उत्कर्ष करने वाले भी है। इनके द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास शब्दो को सगीत प्रदान करके भावो को और भी अधिक ग्राह्य बना देते है। सगीतात्मकता अनुप्रास का गुण है और रसखान द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास मे यह गुण प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। यमक को क्लिष्टत्व का रूप माना जाता है। इसीलिए सुकर और दुष्कर भेद इसके किये गये है। लेकिन रसखान ने यमक का स्वाभाविक और भावपूर्ण प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि यमक भी अन्य अलकारो की भाँति प्रसादगुण-सम्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार रसखान ने अन्य शब्दालकारो का प्रयोग भी भावपूर्ण किया है।

शब्दालकारो की भाँति अर्थालकारो का प्रयोग भी रसखान ने भावोत्कर्ष के लिए किया है। ये प्रयोग कवि की वाणी से स्वत प्रस्फुटित हुए है, उसे इनके लिए कोई श्रम नही करना पडा है। यही कारण है कि जो भी अलकार जहाँ प्रयुक्त हुआ है, वह अपने स्थान पर ठीक युक्ति-सगत और भावपूर्ण है। रसखान ने अनेक अर्थालकारो का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए कुछ अलंकारो के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है।

उपमा

उपमान और उपमेय के सादृश्य वर्णन मे उपमालकार होता है । रसखान के इस अलकार का बहुत मात्रा मे और बहुत कुशलता से प्रयोग किया है । यथा—

'सुनियै सबकी कहिये न कछु रहिए इमि या भव-बागर मै ।
करिए व्रत नेम सचाई लिये जिनते तरियै भव-सागर मै ।
मिलियै सबसो दुरभाव बिना रहिए सत सग उजागर मैं ।
रसखानि गुबिन्दहि यौ भजियै जिमि नागरि को चित गागर मै ॥'

भगवद्-भजन के लिए नागरी के चित्र की एकाग्रता का सादृश्य दिखलाया गया है ।

रूपक

उपमेय मे उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलकार कहते है । इसके मुख्यतया दो भेद है—साग रूपक और निरग रूपक । जहाँ उपमेय अवयवो के सहित उपमान के अवयवो का आरोप किया जाता है, वहाँ साग अथवा सावयव रूपक होता है और जहाँ अवयवो से रहित उपमान का उपमेय मे आरोप किया जाता है वहाँ निरग अथवा निरवयव रूपक अलकार होता है । रसखान ने इस अलकार का भी प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है । यथा—

'अति सुन्दर री व्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है ।
सखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाठन खोलत है ।
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुजनि कुंजनि डोलत है ।
रसखानि लखे मन बूडि गयौ मधि रूप के सिंधु कलोलत है ।'

यहाँ सौन्दर्य पर सागर का आरोप किया गया है, पर अवयवों का उल्लेख नही अत यहाँ निरग रूपक है ।

उत्प्रेक्षा

जहाँ प्रस्तुत की—उपमेय की—अप्रस्तुत रूप मे—उपमान रूप मे—सभावना की जाए, वहाँ उत्प्रेक्षा अलकार होता है । इस अलकार के प्रयोग से भावों में प्रभावशीलता आती है । अत. रसखान ने उपमा और रूपक की भाँति इस

अलकार का प्रयोग भी वहुलता से किया है। यथा—

'साझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौ मन भौ ललके री।
ऊँची अटान चढी व्रजवाम सुलाज सनेह दुरै उझके री।
गोधन धूरि की धू धरि मै तिनकी छवि यौ रसखान तकै री।
पावक के गिरि ते बुझि मानौ धुँवा-लपटी लपटै लपकै री ।।'

यहाँ गोरज से धूसरित कृष्ण की दृष्टि मे आग के पहाड मे बुझकर उठते हुए धुँए के वादल की सभावना की गई है, अत उत्प्रेक्षा अलकार है।

अतिशयोक्ति

लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करने को—प्रस्तुत को वढा-चढाकर कहने को—अतिशयोक्ति अलकार कहते है। रसखान ने इसका भी सफल प्रयोग किया है—

"या छवि पै रसखानि अव, वारौ कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहि पाई रहे सु खोज ।।"

कृष्ण छवि की उपमा अभी तक कवियो को नही मिली है। वे अभी तक पूर्ण परिश्रम के साथ उस उपमा को खोज रहे है। यह कथन प्रस्तुत को वढ़ा-चढाकर कहने का द्योतक है। अत यहाँ अतिशयोक्ति अलकार है।

विरोधाभास

जहाँ कथन मे विरोध का आभास हो, पर वास्तव मे विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलकार होता है। रसखान ने इसका कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

'सकर से सुर जाहि जपं चतुरानन ध्यानन धर्म वढावै।
नैक हिये जिहि आनन ही जड मूढ महा रसखानि कहावै।
जा पर देव अदेव-भू अगना वारत आनन आनन पावै।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै।'

इस सवैये की तीसरी पक्ति मे प्रयुक्त—वारत आनन आनन पावै' में विरोधाभास अलंकार है।

समाधि

जहाँ अचानक और कारणो के आ पड़ने से काम सुगम हो जाये, हाँ समाधि अलकार होता है। इसे समाहित अलकार भी कहते हैं। रसखान ने

इस अलंकार का अधिक प्रयोग नही किया, परन्तु जो उदाहरण है वे पूर्णतया प्रभावपूर्ण है । यथा—

'कस कुढ्यौ सुनि बानि अकास की ज्यावनहारहि मारन धायौ ।
भादव साँवरी आठई को रसखानि महा प्रभु देवकी जायौ ।
रैनि अँधेरी मैं लै वसुदेव महाबन मै अरगै धरि आयौ ।
काहु न भौ जुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ ।'

जिस कृष्ण को योगी भी अपनी जागृत अवस्था मे प्राप्त नही कर सकते, वही यशोदा को आसानी से प्राप्त हो गया । अत. यहाँ समाधि अलकार है ।

उल्लेख—

जहाँ एक ही वर्णनीय विषय का निमित्त भेद से अनेक प्रकार का वर्णन हो, वहाँ उल्लेख अलंकार होता है । निम्नलिखित सवैये मे कृष्ण के अनेक रूपो का वर्णन है—

'वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन,
सदा शिव सदा ही धरत ध्यान गाढै है ।
वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राजा रक,
जोगी जती ह्वै कै सीत सतयौ अग डाढै है ।
वेई ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्राननि के,
जाके अभिलेख लाख लाख भाँति बाढै है ।
जसुधा के आगे वसुधा के मान मोचन पै,
तामरस-लोचन खरोचन को ठाढै है ॥'

अत्युक्ति

संपति, सौंदर्य, शौर्य, औदार्य सौकुमार्य आदि गुणो के मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति अलंकार कहते है । रसखान ने कृष्ण प्रीति के प्रतिपादन मे इस अलकार का प्रयोग किया है । यथा—

'कचन-मदिर ऊँचे बनाइ कैं मानिक लाइ सदा झलकैयत ।
प्रात ही ते सदा सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
जदपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसे भये तो कहा रसखानि जौ सावरे ग्वार सों नेहन लैयत ।'

इस सवैये में कृष्ण की प्रीति का बढा-चढाकर वर्णन करने के कारण अत्युक्ति अलकार है ।

अपह्नुति—

जहाँ प्रकृत का—उपमेय का—निषेध करके अप्रकृत का—उपमान का—आरोप किया जाता है वहाँ अपन्हुति अलंकार होता है। रसखान ने इस अलंकार का प्रयोग निम्नलिखित सवैये मे किया है।—

"है छलकी अप्रतीत की मूरति मोद बढावै विनोद कलाम मे।
हाथ न एहै कछु रसखान तू क्यो बहकै विष पीवत धाम मे।
है कुच कंचन के कलसा न ये आम की गाठ मठीक की चाम मे।
बैनी नही मृगनैननि की ये नसैनी लगी यमराज के धाम मे।।'

यहाँ पर कुच और चोटियो का निषेध करके इन पर आम की गांठ और नसैनी का आरोप किया गया है।

व्यतिरेक

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाए, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यथा—

'धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अगना पग पैंजनी बाजत पीरी कछौटी।
या छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सो लै गयो माखन रोटी।'

इस सवैये मे कामदेव के रूप की अपेक्षा कृष्ण के सौन्दर्य का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है।

दृष्टांत

जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टात अलकार होता है। यथा—

'जा दिन तै निरख्यो नन्द नन्दन कानि तजी घर बंधन छूट्यो।
चारु विलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन मोर न लूट्यो।
सागर को सलिला जिमि धावे न रोकी रहै कुल को पुल टूट्यो।
मत्त भयो मन संग फिरै रसखान सरूप सुधारस छूट्यो।"

अर्थान्तरन्यास

जहाँ विशेष से सामान्य का, या सामान्य से विशेष साधर्म्य का वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाए, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यथा—

'मोहन रूप छली वनी डोलति घूमति री तजि लाज विचारै।
वंक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारैं।
रगभरी मुख की मुसकान लसै सखी कौन जू देह सम्हारै।
ज्यो अरविन्द हिमत करी झकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारै।'

यहाँ मुस्कान विशेष का हिमत करी सामान्य से साधर्म्य के द्वारा समर्थन किया गया है।

प्रतीप

जहाँ उपमेय को उपमान कल्पित कर लिया जाए, वहाँ प्रतीप अलकार होता है। यथा—

'मोहन के मन की सब जानति जोहन के मग मोहि लियो मन।
मोहन सुन्दर आनन चन्द ते कु जन देख्यौ मै स्याम सिरोमन।
ता दिन ते मेरे नैननि लाज तजि कुल कानि की डौलत ही बन।
कैसी करौ रसखानि लगी जकरी पकरी पिय केहित को पन॥'

यहाँ चन्द्र की अपेक्षा आनन का उत्कर्ष वर्णित है, अत. प्रतीप अलकार है।

संदेह

जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध मे सादृश्य-मूलक सदेह हो, वहाँ सदेह अलकार होता है। यथा—

"वा मुख की मुसकानि पटू अखियनि ते नेकु टरै नहि टारी।
जो पलकैं पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी।
दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ वज्र मारी।
प्रेम की बानि की जोग कलानि गहि रसखानि विचार विचारी।"

इस सवैये की अतिम पक्ति मे सदेह अलकार है।

असगति

कारण कार्य की स्वाभाविक सगति के अभाव मे असंगति अलंकार होता है। यथा—

'श्री वृषभान की छान छुजा अटकी सरकान ते आन लई री।
वा रसखान के पानि की जानि छुड़ावति राधिका प्रेममयी री।
जीवन मूरि सी नेज लिये इनहूँ चितयौ उनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही मुरझानि गुड़ी उरझाय दई री।'

यहाँ सुलझाने वाली गुडी उलझा देती है। अत. असंगति अलकार है।

इस विवेचन के पश्चात यह कहना कठिन नही कि रसखान की अलंकार योजना बहुत ही सफल और प्रभाववर्द्धक है। इन्होने अलकारो का प्रयोग श्रम द्वारा नही किया वरन् ये तो स्वत भावावेग मे आगए है। स्वाभाविक रूप से आए हुए अलकार भावो मे प्रभाव और गति उत्पन्न कर देते है, यह निर्विवाद मत है। जहाँ अलंकार अभिव्यक्ति के साधन और सहायक होते है वही इनका प्रयोग सार्थक होता है। रसखान की अलकार-योजना ऐसी ही है।

गुण-योजना

रस के उत्कर्ष को बढाने वाले धर्मों को गुण कहा जाता है। वस्तुतः गुण शब्द-योजना का ही दूसरा नाम है। वही काव्य सर्वोत्तम माना जाता है जो भाव-गरिमा से भी मडित हो और क्लिष्ट भी न हो; अर्थात् प्रसादगुण-सम्पन्न हो। रसखान के काव्य मे यह विशेषता पाई जाती है। उनका शब्द-चयन अत्यन्त प्रचलित शब्दो का है। संस्कृत, उर्दू तथा फारसी के वे ही शब्द इन्होने अपनाए है जो खूब प्रचलित है। इनके पदो की भाव-मयता और सरलता मे प्राय: होड सी लगी हुई है। प्रसादगुण के उदाहरणार्थ इनका समूचा काव्य प्रस्तुत किया जा सकता है; फिर भी कुछ पदो को उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है। नायिका की सुकुमारता से सम्बद्ध दो सवैये देखिए—

'कौन की नागरि रूप की आगरि जाति लिये सग कौन की बेटी।
जाको लसै मुख चन्द समान सुकोमल अगनि रूप-लपेटी।
लाल रही चुप लागिहै डीठि गुजाके कहुँ उर बात न पेटी।
टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख-पेटी॥'

× × ×

'यह जाको लसै मुख चन्द समान कमान सी भौह गुमान हरै।
अति दीरघ नैन सरोजहू तै मृग खजन मीन की पाँति दरै।
रसखानि उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै।
कही नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै॥'

छन्द-योजना

छन्द और काव्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आदिकाल से ही काव्य मे छन्द की महिमा मानी गई है। वेदो मे एक कथा आती है जिसमे बताया गया है कि देवताओ ने अपनी रक्षा के लिए छन्द का परिधान ग्रहण किया

था । इसका तात्पर्य यह है कि छन्द काव्य को अमरता प्रदान करता है । प्राचीन साहित्य की जीवन-रक्षा के एकमात्र आधार छन्द ही है । छन्द-प्रयोग से ही काव्य मे सरसता, सजीवता एव प्रभावोत्पादकता आती है ।

रसखान ने अपने काव्य मे तीन छन्दो का प्रयोग किया है—सवैया, कवित्त और दोहा । सवैया वर्णिक वृत्त है । इसके लय तथा सौष्ठव की आचार्यो द्वारा भारी प्रशसा की गई है । लय के आरोह और अवरोह के साथ पाठक अथवा श्रोताओ के हृदयो को चमत्कृत कर देना इस छन्द की प्रमुख विशेषता है । इसमे एक निश्चित स्वर-विधान होता है जिसके कारण इसमे एक अनूठे संगीत का जन्म होता है । गणो तथा अन्त के गुरु-लघु अक्षरो की दृष्टि से सवैया के अनेक भेद हो सकते है, पर इसके तान भेद मुख्य है—

१. भगणाश्रित सवैया
२ सगणाश्रित सवैया
३ जगणाश्रित सवैया

भगणाश्रित सवैया के मदिरा, मोद, मत्तयमद, चकोर, अरसात और किरीट छ भेद माने गये है । मदिरा मे सात भगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है । मोद मे पाँच भगण, एक मगण, एक सगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है । मत्तगमंद मे सात भगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है । चकोर मे सात भगण और अन्त के अक्षर गुरु-लघु होते है । अरसात मे सात भगण और अन्त मे रगण होता है । किरीट मे आठ भगण होते है । भगणाश्रित सवैया के इन भेदो को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

मदिरा	भगण ७+S
मोद	भगण ५+मगण+सगण+S
मत्तगयद	भगण ७+S
चकोर	भगण ७+S ।
अरसात	भगण ७+ रगण
किरीट	भगण ८

जगणाश्रित सवैया के तीन भेद होते है—सुमुखी, मुक्तहरा और बाम । सुमुखी मे सात जगण और अंत के अक्षर लघु-गुरु होते है । मुक्तहरा मे आठ जगण होते है । बाम मे सात जगण और एक यगण होता है । ये भेद इस प्रकार दिखाये जा सकते है—

सुमुखी	जगण ७+७ । ऽ
मुक्तहरा	जगण ८
वाम	जगण ७+यगण

सगणाश्रित सवैया के भी तीन भेद होते है—दुर्मिल, सुन्दरी और अरविन्द। दुर्मिल मे आठ सगण होते है। सुन्दरी मे आठ सगण और अन्त का अक्षर लघु होता है। अरविन्द मे आठ सगण और अंत का अक्षर लघु होता है। इन भेदो को इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

दुर्मिल	सगण ८
सुन्दरी	सगण ८+ऽ
अरविन्द	सगण ८+।

रसखान के काव्य मे इनमे से अधिकाश भेद मिल जाते है। सवैया लिखने मे इन्हे जैसी सफलता मिली है, वैसी हिन्दी के बिरले कवियो को ही मिल पाई है। इसलिए रसखान और सवैया दोनो शब्द पर्यायवाची मे बन गये है।

कवित्त के अनेक भेद हो सकते है, पर मुख्य दो ही माने जाते हैं—मनहर और घनाक्षरी। मनहर मे ३१ तथा घनाक्षरी मे ३२ अक्षर होते हैं। आठ-आठ अक्षरो के बाद यति का विधान है। पर यह विधान लय पर निर्भर होता है, इसीलिए कभी-कभी १६ अक्षर के बाद भी विराम दिया जाता है। कहीं-कही पर आठ के स्थान पर ७ या ९ पर भी यति पड जाती है। इनके अतिरिक्त इनके विषय मे और भी अनेक सूक्ष्म नियम है जो लय माधुरी के आधार पर निर्धारित किये गये हैं। दोहे मे विषम चरणो मे तेरह-तेरह मात्राएँ और सम चरणों मे ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती है। रसखान ने कवित्त और दोहे का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है। प्रेम-वाटिका तो दोहो मे ही रची गई है।

अत. कहा जा सकता है कि छन्द-योजना की दृष्टि से भी रसखान सफल है।

लोकोक्तियाँ

लोकोक्तियो के प्रयोगो से भाषा मे सजीवता आती है। रसखान ने अपने कवित्तो मे और सवैयो मे यथावसर लोकोक्तियो के प्रभावशाली प्रयोग किये है। यथा—

१. 'मोल कला के लला न बिकैहो'

२. नाहि उपजैगो बाँस नाहि बाजै फेर बाँसुरी'

३. 'छोरा जायो कि मेव मँगायो'

४. 'नेम कहा जब प्रेम कियो'

इस विवेचन के उपरान्त यह कहना अनुचित नही कि रसखान की भाषा सभी दृष्टियो से सफल एव सार्थक है। एक विशिष्ट भाषा मे जिन गुणो की अपेक्षा होती है, वे सब रसखान की भाषा मे मिलते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे—

'इनकी (रसखान की) भाषा बहुत चलती, सरल और शब्दाडम्बर मुक्त होती थी। शुद्ध व्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई रसखान और घनानंद की रचनाओ मे है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।'

: ११ :

स्वच्छन्दधारा और रसखान

रीतिकाल मे दो धाराएँ प्रमुख थी—रीतिबद्ध धारा और रीति-मुक्तधारा रीतिबद्ध धारा के कवि और आचार्य परम्परा के निर्वाह मे सदैव सतर्क और जागरूक रहते थे। भावो की अपेक्षा वे परम्परा तथा काव्य शास्त्रीय नियमों को प्राथमिकता देते थे। रीतिमुक्तधारा के कवियो के आदर्श रीतिबद्धधारा के कवियो के आदर्शो के बिल्कुल विपरीत थे। वे काव्यशास्त्रीय नियमो तथा परम्परा की अपेक्षा भावो को अधिक महत्व देते थे। इसीलिए इस धारा को स्वच्छन्दधारा भी कहा जाता है। इस धारा की निम्नलिखित विशेपताएँ है—

१. भावावेश का प्राधान्य
२ कृत्रिम व्यापारो का त्याग
३. भावो की प्रधानता
४ आत्म-निवेदन
५. विरह-वेदना
६. आत्मानुभूति
७. प्रेम का स्वस्थ निरूपण
८ भक्ति का वास्तविक रूप

१ भावावेश का प्राधान्य—रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों के काव्य-रचना के प्रयोजनो मे आकाश-पाताल का अन्तर था। रीतिबद्ध कवि केवल दो प्रयोजनो से काव्य-रचना किया करते थे—आश्रयदाता का मनोरजन और पाडित्य-प्रदर्शन। इसलिए इनके काव्य प्राय श्रमसाध्य होते थे। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवि भावावेश के कारण ही काव्य-रचना करते थे। इस विपय की ओर सकेत करते हुए घनानन्द ने लिखा है—

'लोग है लाग कवित्त बनावत मोही तो मेरे कवित्त बनावत।'

यही कारण है कि रीति बद्ध कवियो की अपेक्षा रीति मुक्त कवियो के काव्यो मे अधिक भावप्रवणता है।

२. **कृत्रिम व्यापारो का त्याग**—रीतिमुक्त कवियो का काव्य भावनापूर्ण था, अत इसमे अभिव्यक्ति व कृत्रिम व्यापारो का त्याग स्वाभाविक ही था। इन कवियो ने न तो श्रम करके शब्दो की योजना की है और न भाषा के रूप को सँवारा है। इनकी भाषा सहज और स्वाभाविक है। उसमे कही भी कृत्रिमता दृष्टिगोचर नही होती। अलकार और लोकोक्तियाँ आदि के प्रयोग भी स्वाभाविक होने के कारण भावाभिव्यक्ति मे पूर्णत सहायक हुए है।

इनके अतिरिक्त विषयो की कृत्रिमता भी इन कवियो को ईप्सित नही थी। बाह्य कृत्रिमताओ को सोचना और उनका वर्णन करना इन कवियो को न तो रुचता था और न वे इस ओर ध्यान ही देते थे। ये उन व्यापारो के प्रदर्शन की चेष्टाओ को भी निरर्थक मानते थे। यही कारण है कि स्वच्छन्द-धारा के कवियो मे विरह और मिलन दोनों मे प्रेमियो के हृदय के आन्तरिक पक्षो को उद्घाटित करने की होड सी लगी रही है।

३. **भावो की प्रधानता**—इन कवियो के काव्यो मे भावो की प्रधानता है। भाव-प्रधान होने के कारण इनके काव्यो मे चिन्तन-पथ दुर्बल है। रीतिबद्ध कवि बुद्धि के बल से ही भावो का अनुमान करते थे और बुद्धि के बल से ही प्रेम के बाह्य रूप का विधान करते थे। रीतिमुक्त कवि हृदय को ही प्रधान मानते थे और अपने समूचे काव्य की रचना हृदय की प्रेरणा के आधार पर ही करते थे।

४. **आत्म-निवेदन**—अपने भावो को अभिव्यक्ति मे ये कवि इतने निर्भीक है कि जो कुछ कहना चाहते है, स्पष्ट कह देते है। किसी अन्य माध्यम का सहारा नही लेते। रीतिवद्ध कवि अपनी प्रेमाभिव्यजना के लिए, सामाजिक भय के कारण जिन आवरणो को लपेटते चलते है, उनका इन कवियो के काव्यो मे एकदम अभाव है। साथ ही इन कवियो मे भक्ति की सच्ची एव वास्तविक अनुभूति थी, अत अपने आराध्य के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देने की इनमे क्षमता है।

५. विरह-वदना—इन कवियो ने प्रेम की हृदयगम्य अभिव्यक्ति की है और इनका प्रेम लौकिक से अलौकिक बना है, अत. इनमे प्रेम के विरह पक्ष की वास्तविकता मिलती है। ये कवि जिस प्रकार सयोग-वर्णन मे अन्तर्मुख रहते है और उसी प्रकार वियोग वर्णन मे भी रहते हैं। वल्कि वियोग वर्णन में इनकी अन्तर्मुखता और भी अधिक वढ जाती है। इसीलिए इनके विरह-वर्णन मे जो स्वाभाविकता और मार्मिकता है, वह रीतिवद्ध कवियो के काव्यो मे नही मिलती। विरह के प्राय सभी पक्षो को लेकर ये कवि चले हैं। इनमें विरह-वेदना की इतनी प्रधानता है कि सयोग मे भी ये लोग एक प्रकार का वियोग-सा ही देखते है। अत इन्हे न तो सयोग मे शान्ति है और न वियोग मे। इनका विरह-वर्णन अन्तर्मुखी है, रीतिवद्ध कवियो की भाँति वहिर्मुखी और मासल नही।

६. आत्मानुभूति—रीतिमुक्त कवियो ने सदैव हृदय को प्रधानता दी, फलतः इनके काव्यो मे अत्मानुभूति का अश पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। रीतिवद्ध कवियो की भाँति बुद्धि के वल पर, इन्होने दूर की कौड़ी लाने का कभी प्रयत्न नही किया, जिन भावो से इनका परिचय था और जो भाव इनके हृदय की सीमा मे सहज स्वाभाविक रूप से आ सकते थे, उन्हे ही इन कवियो ने अपनाया और उन्ही की अभिव्यक्ति की। इसीलिए इन कवियो के काव्यो में आत्मानुभूति का पक्ष प्रवल है।

७ प्रेम का स्वस्थ रूप—रीतिकालीन रीतिवद्ध कवियो ने लौकिक शृगार को महत्ता दी और अथ से इति तक उसी का वर्णन किया। फलतः उनके काव्य मे प्रेम का मासल रूप ही सुरक्षित रह गया। प्रेम-भाव के जो अन्य सूक्ष्म एव उदात्त अग होते हैं, उनकी ओर न तो इन कवियो ने कोई ध्यान ही दिया और न ऐसा करना इनके लिए आवश्यक था। अत. प्रेम इनकी दृष्टि मे एक प्रकार का प्रमुखतम काम-भाव ही वनकर रह गया। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियो ने प्रेम को हृदय के एक उदात्त भाव के रूप मे ग्रहण किया और इसकी स्वस्थता का आद्योपात वर्णन किया। इनकी दृष्टि मे प्रेम का पथ ही एक ऐसा पथ है जो परमात्मा तक आत्मा को ले जाने मे समर्थ है। एक वात और, रीतिवद्ध कवियो ने प्रेम के सम-रूप पर जोर दिया है और रीतिमुक्त कवियो ने विषम-रूप पर। इनकी दृष्टि से, स्वच्छन्द प्रेम

का चरम उत्कर्ष विषमता मे ही निष्पन्न होता है। ये लोग सम-रूप को पारिवारिक प्रेम के लिए ही उचित समझते है।

८. भक्ति का वास्तविक रूप—भक्तिकाल मे कृष्ण-भक्ति का जो आन्दोलन चला वह दिनप्रति दिन इतना जोर पकडता गया कि राधा और कृष्ण मानस मानस मे रम गये। उनकी लीलाएँ सभी के मनो को आप्लावित करने लगी। रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियो ने कृष्ण भक्ति की इस प्रसिद्धि का लाभ उठाया और भक्तिकाल से अत्यन्त सुपरिचित राधा और कृष्ण को नायिका तथा नायक के रूप मे ग्रहण कर लिया और मन खोलकर इनके शृगार का वर्णन किया। भक्तिकाल मे जो शृगार अलौकिक माना जाता था, रीतिकाल में आकर वह अलौकिक और मासल बन गया। रीतिकालीन कवियो ने राधा और कृष्ण को अपनाया इसलिए था कि उनके काव्य मे प्रभावोत्पादकता तथा चमत्कार आ जाये। राधा-कृष्ण की भक्ति से उनका दूर का भी कोई सम्बन्ध नही है। एक रीतिकालीन कवि ने तो स्पष्ट ही कहा है—

> 'आगे के सुकवि रीझै है तो कविताई,
> न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।'

'सुमिरन के बहाने मे' भक्ति की वास्तविकता कितनी होती है, यह बताने की आवश्यकता नही है। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियो के हृदयो मे भक्ति की सच्ची एव स्वाभाविक भावना थी। ये योग पहले भक्त थे और बाद में कवि। कविता इनके लिए साधन थी, रीतिबद्ध कवियो की भॉति साध्य नही।

स्वच्छन्द धारा की इन प्रमुख विशेषताओ पर दृष्टिपात करने के पश्चात् अब इनके आधार पर रसखान के काव्य की समीक्षा करना आवश्यक है।

रसखान और स्वच्छन्द मार्ग

रसखान का काव्य भावो की मजूषा है। जिधर भी देखिये, इनके काव्य मे भावो का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यदि ये भक्ति-परक भावो की अभिव्यजना करते है तो उसी हृदय से जो एक वास्तविक भक्त का हृदय होता है। अपने आराध्य के प्रति पूर्ण विश्वास भक्त-हृदय की पूर्णतम विशेषता होती है। रसखान भी इसी विश्वास को धारण किये हुए है और कहते है कि कृष्ण जिसका रक्षक है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता, यहाँ तक कि यमराज भी उसे कुछ हानि नही पहुँचा सकता—

'द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सो कियो सो न निहारो।
गौतम गेहिनी कैसी तरी, प्रह्लाद को कैसे हर्यो दुख भारो।
काहे कौ सोच करै रसखानि कहा करि है रविनन्द विचारो।
ताखन जाखन राखियै माखन-चाखनहारो सो राखनहारो॥'

रसखान ने जिस विषय का भी प्रस्तुतीकरण किया है, उसी को अत्यन्त भावपूर्ण रीति से व्यक्त किया है। यथा—

रूप-माधुरी—

'आवत हैं वन ते मनमोहन गाइन संग लसै ब्रज-ग्वाला।
वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला।
हेरत हेरि थकै चहुँ ओर तें झाँकि झरोखन तें ब्रज-बाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यौ सब द्यौस को ताप-कसाला॥'

वक्र दृष्टि—

'आती लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना।
गंडनि पै छलकै छवि कुंडल मंडित कुंतल रूप की सैना।
दीरघ बंक विलोकनि की अवलोकनि चोरति चित्त को चैना।
मो रसखानि हर्यौ चित्त री मुसकाइ कहे अधरामृत बैना॥'

मुसकान माधुरी—

'वा मुख की मुसकान भटू अँखियनि ते नेकु टरै नहि टारी।
जौ पलकै पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी।
दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम, गह्यौ बजमारी।
प्रेम की बानि कि जोग कलानि गही रसखानि विचार विचारी॥'

सौन्दर्य-वर्णन—

'मोरपखा सिर कानन कुंडल कुंतल सो छवि गंडनि छाई।
बंक बिसाल रसाल विलोचन है दुख मोचन मोहन माई।
आली नवीन महाघन सो तन पीत पटा ज्यौं छटा बनि आई।
हौं रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगौरी सी लाई॥'

कुंजलीला—

'कुंजगली मैं अली निकमी तहाँ साँकरे ढोटा कियौ मटभेरो।
माई री वा मुख की मुसकानि गयौ मन बूडि फिरै नहि फेरो।
जोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित्त डार्‌यौ है प्रेम को फद घनेरो।
कैसी करौ अब क्यौ निकसौ रसखानि परयौ तन रूप को घेरो ॥'

रसखान- काव्य मे कृत्रिम व्यापारो का अभाव है। वर्णन और चेष्टा दोनो मे ही स्वाभाविकता है। नटखट कृष्ण गोपियो से छेडछाड करते है। गोपियाँ कितनी स्वाभाविक भाषा मे उसकी भर्त्सना करती है—

'अन्त ते न आयौ याही गाँवरे को जायौ,
माई वापरे जिवायौ प्याइ दूध वारे बारे को।
सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे द्वारे को।
मैया की सौ सोच कछु मटकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर चीरि डारे को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी माँझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को ॥'

चेष्टाओ का भी रसखान ने स्वाभाविक वर्णन किया है। कृष्ण किसी गोपी को मार्ग मे ही घेर लेते है। उनकी आँखे चार होती है। तब कृष्ण अपना नटखटपना शुरू करते है। तब बेचारी विवश गोपी अपनी लज्जा बचाने के लिए अपने ही वस्त्रो मे इस प्रकार लिपट जाती है जैसे सावन के बादल मे छिपकर बिजली भीतर ही भीतर तडप रही हो—

'पहले दधि लै गई गोकुल मैं चख चारि भए नट नागर पै।
रसखानि करी उनि मैनमई कहै दान दै दान खरे अरपै।
नख ते सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भाँति कँपै डरपै।
मनौ दामिनि सावन के घन मै निकसै नही भीतर ही तरपै ॥'

वस्तुत. रसखान की दृष्टि मे प्रेम एक अत्यन्त उदात्त भाव है। इन उदात्त भावो से सम्बद्ध भावो मे कृत्रिपता लाना इसके औदात्य को नष्ट करना है। इसीलिए इन्होने सर्वत्र स्वाभाविकता का ध्यान रक्खा है।

रसखान का काव्य भाव-प्रधान है। शब्दो का सचयन और संयोजन

इतनी कुशलता से किया गया है कि सर्वत्र भावों की प्रबल धारा अपनी अबाध और सहज गति से प्रवाहित हो रही है। कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम को किस सरलता किन्तु भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करती है—

'काल्हि परी मुरली-धुनि मैं रसखानि लियो कहुँ नाम हमारो।
ता दिन तें भई बैरिन सास कितौ किये झाँकन देति न द्वारो।
होत चवाव बचाव सों आली री जो भरि आँखिन भेंटियै प्यारो।
बाट परी अब ही ठिठक्यो हियरे अटक्यो पियरे पटवारो॥'

'पियरे पटवारो' में अनन्त भावों की गरिमा के साथ-साथ अपार आत्मीयता सन्निहित है। 'दानलीला' में कृष्ण-राधा-संवाद के अन्तर्गत और भी अधिक भावप्रवणता दृष्टिगोचर होती है। यथा—

कृष्ण—

'एरी कहा वृषभानपुरा की तौ दान दिये बिन जान न पैहो।
जो दधि-माखन देव जू चाखन भूखन लागत या मग ऐहौ।
नाहिं तौ जो रस सो रस लैहौं जु गोरस बेचन फेरि न जैहौ।
नाहक नारि तू रारि बढ़ावति गारि दियें फिरि आपहि देहौ॥'

राधा—

'गारी के देवैया बनवारी तुम कहो कौन,
हम तो वृषभान की कुमारी सब जानो है।
जोर तौ करोगे जाउ जासों हरि पार पाइ,
भुरही ते आजु मो सों कैसो हठ ठानो है।
बूझि देखो मन माँहि अरुझत मग जात,
बूझि हो निदान कान्ह जौन कहो मानो है।
मेरे जान कोऊ गीरवान आवै दही छीनै,
तू तौ है अहीर मोहि नाहि पहिचानो है।'

आत्म-निवेदन भक्त की एक प्रमुख विशेषता होती है। इसके द्वारा भक्त अपने जीवन के सारे कार्यों का—विशेषतः पापों का—अनावरण अपने आराध्य के समक्ष कर देता है। इस अनावरण का कारण होता है अपने आराध्य के प्रति अगाध विश्वास। रसखान में सूर अथवा तुलसी जैसा आत्म-

निवेदन तो नही मिलता, पर अपने आराध्य के प्रति इन्होने अगाध विश्वास अवश्य व्यक्त किया है। यथा—

'कहा करै रसखान का कोई चुगुल लबार।
जो पै राखन हार है माखन चाखन हार॥'

इस प्रकार के अनेक उदाहरण रसखान-काव्य मे मिलते है।

आत्म-समर्पण भी अगाध विश्वास का एक अग है। रसखान जिस विधि से स्वय को अपने भगवान के प्रति समर्पित करते है, वह विलक्षण है। इस विषय मे इनका निम्नलिखित सवैया बहुत प्रचलित है—

'मानुष हौ तौ वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौ तौ कहा बस मेरो चरौ नित नद की धेनु मँझारन।
पाहन हौ तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरदर धारन।
जौ खग हौ तौ बसेरो करौ मिलि कालिदी-कुल-कदम्ब की डारन॥'

विरह-वेदना की अभिव्यक्ति भक्तो के लिए प्रमुख रही है। फारसी-साहित्य मे तो यही एकमात्र सोपान है जिससे प्रियतम अथवा आराध्यदेव तक पहुँचा जा सकता है। रसखान के विरह का अत्यन्त सजीव एव स्वाभाविक वर्णन किया है। यथा—

'बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हियै जिन ढारौ।
कज की माल करौ जु बिछावन होत कहा पुनि चंदन गारौ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखानि को काहे को जारे पै जारौ।
चाहति हौ जु जिवायौ पट्ट तौ दिखावौ बड़ी-बडी आँखिनिवारौ॥'

प्रियतम के सान्निध्य के विना विरहिणी की विरह-वेदना का और उपचार ही क्या हो सकता है।

कही-कही परम्परा के अवाछित चक्कर मे आकर अथवा फारसी-प्रभाव के कारण रसखान ऊहात्मक वर्णन भी कर गये है। पर ऐसे स्थल कम ही है।

वास्तविक काव्य-आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ है भी नही। रसखान किसी काव्य-शास्त्रीय नियम से न तो अवगत ही है और न यह विशेषता इनके लिए आवश्यक ही है। अपने भावावेश मे ही इनकी

वाणी फूटती है और वाणी का यही प्रस्फुटन सरस एवं सच्चे काव्य को जन्म देता है।

अन्य स्वछन्दवादी कवियो की भाँति रसखान ने भी प्रेम के स्वस्थ रूप का चित्रण किया है। प्रेम इनकी दृष्टि मे हृदय की सबसे उदात्त भावना है। इनके मत से शुद्ध और वास्तविक प्रेम वही है जिसमे अकारण ही आकर्षण हो। गुण, यौवन, रूप आदि के आकर्षण से जो प्रेम होता है, उसे शुद्ध नही कहा जा सकता। पुत्र, कलम आदि के प्रति किया गया प्रेम भी स्वाभाविक और सच्चा नही है। वास्तव मे प्रेम भगवान का ही दूसरा रूप है। रसखान ने प्रेम का सागोपाग विवेचन किया है एतद्विपयक इनके दोहे 'प्रेम-वाटिका' में सग्रहित है।

रसखान सच्चे हृदय से भक्त थे। रीतिकालीन कवियो की भाँति भक्ति का वहाना इन्होने नही लिया था। इसलिए इनके काव्य मे आद्योपांत कृष्ण-भक्ति की धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। इनकी भक्ति साधना मे वे सभी विशेपताएँ मिलती हैं जो वैष्णव-भक्ति के लिए अनिवार्य हैं।

अत कहा जा सकता है कि रसखान-काव्य मे वे सभी गुण विद्यमान हैं जो स्वच्छन्द काव्यधारा मे पनपे हैं। डा० मनोहरलाल गौड के शब्दो मे—

'...रसखान मे अपने समय की-काव्य प्रवृत्तियो तथा अनुभूति-विधानों का परिचय तो दिखाई पडता है, पर अनुसरण नही। उन्होने अपना ही स्वानुकूल मार्ग वनाया। उस मार्ग मे विशुद्ध अप्रतिहत प्रेम की अनुभूति का प्राचुर्य था और उसकी अनावृत्त अभिव्यक्ति थी जो स्वछन्द मार्ग की ओर सकेत करती है, शास्त्रीय परम्परा की ओर नही। इसका तात्पर्य यह तो कदापि नही कि रसखान ने जान-बूझकर शास्त्रीय मार्गों का सगटन किया है, या वे काव्य के स्वच्छन्द मार्ग से यथाविवि परिचित थे। उनके जीवन का सयोग मुसलमान प्रेमी भक्त होने के नाते विविध पद्धतियो के सम्मिश्रण का कारण वन गया था। वैसा ही सम्मिश्रण कबीर मे भी हुआ था, पर कवीर ज्ञानमार्गी होकर कठोर भी हो गये और खडन-परायण भी। हृदय की अनुभूतियो को अपने ढंग से व्यक्त करने की सरस प्रवृत्ति उनमे नही आई जो रसखान में आ गई।'

सुजान-रसखान

भक्ति-भावना
सवैया

मानुष हो तौ वही रसखानि वसौ व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौ तो कहा वसु मेरो चरौ नित नन्द की धेनु मँझारन ।
पाहन हौ तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौ तौ वसेरो करौ मिलि कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन ।।१।।

शब्दार्थ—मानुप हौ=यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य-योनि मिले । मँझारन=मध्य मे । पाहन=पत्थर । छत्र=छाता । पुरन्दर=इन्द्र । धारन=गर्व नष्ट करने के लिए । कालिन्दी-कूल-कदम्ब=यमुना के तट पर खड़े हुए कदम्ब के वृक्ष जिन पर कृष्ण अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे । डारन=डालियो मे ।

अर्थ—कृष्ण के प्रति अपनी स्वतन्त्र भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति करते हुए रसखान कहते है कि यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य-योनि मिले तो मैं वही मनुष्य वनूँ जिसे व्रज और गोकुल गाँव के ग्वालो के साथ रहने का अवसर मिले । आगामी जन्म पर मेरा कोई वस नही है, ईश्वर जैसी योनि चाहेगा, दे देगा, इसलिए यदि मुझे पशु-योनि मिले तो मेरा जन्म व्रज या गोकुल मे ही हो, ताकि मुझे नित्य नन्द की गायो के मध्य मे विचरण करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके । यदि मुझे पत्थर-योनि मिले तो मै उसी पर्वत का वनूँ जिसे श्रीकृष्ण ने इन्द्र का गर्व नष्ट करने के लिए अपने हाथ पर छाते की भाँति उठा लिया था । यदि मुझे पक्षी-योनि मिले तो मैं व्रज मे ही जन्म पाऊँ ताकि मै यमुना के तट पर खडे हुए कदम्ब के वृक्ष की डालियो मे निवास कर सकूँ ।

विशेष—१ कवि ने अपना सम्वन्ध उन्ही वस्तुओ से जोडने की इच्छा प्रकट की है, जिनसे कृष्ण का सम्वन्ध रहा है । भक्त को चाहे जिस अवस्था मे रहना पड़े, उसे उसके आराध्यदेव के दर्शन नित्य मिलते रहे, यही उसके

जीवन का लक्ष्य होता है। रसखान ने भी उपर्युक्त सवैये में इस लक्ष्य की भावमयी अभिव्यजना की है।

२. 'वसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन' मे तथा 'कालिन्दी-कूल-कदम्ब की' मे छेकानुप्रास अलकार है।

३. 'पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर-धारन' मे निम्नलिखित अन्तर्कथा निहित है—

कृष्ण के आदेश से ब्रजवालो ने इन्द्र की पूजा छोडकर गौओ की पूजा करनी आरम्भ कर दी। इस वात से इन्द्र अत्यन्त कुपित हुआ। उसने ब्रज को डुवाने के लिए मूसलाधार वर्षा कर दी। कृष्ण ने ब्रज की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को उठाकर छाते की भाँति ब्रज के ऊपर लगा दिया। तब इन्द्र ब्रज का कुछ भी न विगाड सका। उसका गर्व नष्ट हो गया।

पाठान्तर—'मानुष हौं तो वही रसखानि वसो नित गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा वसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो ब्रज छत्र पुरन्दर-धारन।
जौ खग हौ तौ वसेरो करौं वही कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन।'

तुलना—'ब्रज के लता पता मोहि कीजै।' —हरिश्चन्द्र

सवैया

जो रसना रस ना विलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करैं करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु वुहारन।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज-रेनुका-अंग-सवारन।
खास निवास लियौ जु पै तौ वही कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन॥२॥

शब्दार्थ—रसना=जीभ। रस=इन्द्रियो को आनन्द देने वाले मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त रस। नीकी=अच्छी। वुहारन=साफ करना, झाड़ू देना। रेनुका=धूल। कालिन्दी-कूल=यमुना का तट।

अर्थ—रसखान अपने आराध्यदेव से प्रार्थना करते हुए कहते है कि हे देव, मुझे सदा अपने नाम का स्मरण करने दो, ताकि मेरी जीभ इन्द्रियो के आनन्द मे डूब जाये। मुझे कुंजो मे वनी हुई अपनी कुटियो मे झाड़ू लगाने दो,

जिससे मेरे हाथ सत्कार्य करते रहे। मुझे ब्रज की धूल मे अपने शरीर को धूलरित करने दो, जिससे मुझे अणिमा आदि आठो सिद्धियो का सुख मिल जाये। यदि आप मुझे निवास करने के लिए कोई स्थान देना चाहते हैं तो यमुना-तट पर खडे हुए उन्ही कदम्ब की डालियो मे दीजिए जहाँ पर आप अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे।

विशेष—'जो रसना रसना विलसे' मे यमक तथा 'करै करनी,' 'कुंज-कुटीरन', 'सिद्धि-समृद्धि' और 'कालिदी-कूल-कदम्ब की' मे छेकानुप्रास अलकार है।

सवैया

'बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौ रसखान वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी।'

शब्दार्थ—बैन=वाणी। सानी=युक्त। सरैं=माला पहनाये। पाइ=पैर, चरण। अनुजानी=अनुगामी। जान=प्राण। रसखानी=अन्तिम पक्ति मे यह शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है, अत. इसके अर्थ क्रमश· ये है—(१) कवि का नाम, (२) आनन्द का भण्डार, (३) श्री कृष्ण, (४) प्रेम का खजाना, अर्थात् अत्यन्त प्रेम करने वाला।

अर्थ—मनुष्य-जीवन की सफलता एव सार्थकता तभी है जब वह स्वयं को अपने आराध्य देव के प्रति पूर्णतया समर्पित कर दे, इसी भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते है कि वही वाणी सार्थक है जो कृष्ण के गुणो का गान करती है, वे ही कान सार्थक है जो कृष्ण की वाणी से युक्त रहते है, वे ही हाथ सार्थक है जो कृष्ण के शरीर पर माला पहनाते है; वे ही चरण सार्थक है जो कृष्ण का अनुगमन करते है, उनके पीछे-पीछे चलते है, वे ही प्राण सार्थक है जो सदैव कृष्ण के साथ रहते है; वही मान सार्थक है जो कृष्ण को द्रवित करके उनसे मनमानी बात करा लेता है। इसी प्रकार वही आनन्द के भण्डार श्री कृष्ण है जो अपने भक्तो को अत्यन्त प्यार करते है।

विशेष—इस सवैया की अन्तिम पक्ति मे यमक अलकार का अत्यन्त चमत्कारपूर्ण एव भावपूर्ण प्रयोग है।

दोहा

कहा करै रसखानि को, कोऊ चुगुल लवार।
जो पै राखनहार है, माखन चाखनहार ॥४॥

शब्दार्थ—चुगुल=चुगलखोर। लवार=झूठा, दुष्ट। राखनहार=रक्षक। माखनमाखनहार=श्रीकृष्ण।

अर्थ—श्रीकृष्ण जिसके रक्षक है, उनका कोई कुछ नही बिगाड़ सकता, इस भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते है कि यदि श्रीकृष्ण मेरे रक्षक है तो मेरा कोई भी चुगलखोर तथा दुष्ट व्यक्ति कुछ नही बिगाड़ सकता।

विशेष—१. 'जो पै राखनहार है, माखन-चाखनहार' मे यमक अलकार है।
२. कहते है कि बादशाह अकबर ने रसखान को दीने-इलाही मे दीक्षित होने के लिए कहा, किन्तु ये दीने-इलाही मे सम्मिलित न होकर कृष्ण-भक्त बन गये। तब किसी व्यक्ति ने बादशाह से आकर इनकी चुगली की और इन्हे कठोर दण्ड देने का परामर्श दिया। इस घटना की प्रतिक्रिया-स्वरूप रसखान ने उपर्युक्त दोहे की रचना की।

पाठान्तर—कहा करै रसखान को, लपट लोग लवार।
जो पत राखनहार है, माखन-चाखनहार॥

तुलना—१. 'जो प राखि है राम तो मारि है कोरे।'
—तुलसीदास

२. रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी चोर लवार।
जो पत राखनहार है, माखन-चाखनहार॥
—रहीम

दोहा

विमल सरल रसखानि, भई सकल रसखानि॥
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि॥५॥

शब्दार्थ—विमल=शुद्ध। रसखानि मिलि=कृष्ण से मिलकर। रसखानि =कृष्ण।

अर्थ—रसखान कवि कहते हैं कि शुद्ध एव सरल स्वभाव वाली गोपियाँ जिस कृष्ण से मिलकर उसी का रूप बन गई, मेरा मन उसी दयालु रसखान (आनन्द-सागर कृष्ण) का घातक बना हुआ है।

विशेष—१. यमक अलकार।

२. चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है, अत अपने प्रेम की अभिव्यक्ति सभी भक्त-कवियो ने चातक के माध्यम से ही की है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो चातक प्रेम का सागोपाग ही वर्णन किया है।

दोहा

सरस नेह लवलीन नव, द्वै सुजान रसखानि।
ताके आस बिसास सो पगे प्रान रसखानि ॥६॥

शब्दार्थ—नेह=प्रेम। लवलीन=तन्मय। नव=नूतन। द्वै=दोनो, कृष्ण और राधा।

अर्थ—कवि कृष्ण और राधा के मिलन की स्तुति करता हुआ कहता है कि जो राधा और कृष्ण के सरस तथा नूतन प्रेम मे तन्मय हैं, उन्ही की दया की आशा और विश्वास से मेरे प्राण सदैव सम्पृक्त है।

कृष्ण का अलौकिकत्व

सवैया

सकर से सुर जाहि जपै चतुरानन ध्यानन धर्म बढावै।
नैक हिये जिहि आनत ही जड मूढ महा रसखानि कहावै।
जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्रानन प्रानन पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥७॥

शब्दार्थ—सकर से सुर=शिव जैसे देव। चतुरानन=ब्रह्मा। नैक= थोडा-सा। आनत ही=लाते ही। जड़ मूढ=अत्यन्त मूर्ख। महा रसखानि= विपुल ज्ञान के भंडार। अदेव=किन्नर। भू-अगना=पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ। वारत प्रानन=प्राणो को न्योछावर करके।

अर्थ—कृष्ण की भक्त-वत्सलता एव लौकिक लीला का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस कृष्ण का जप शकर जैसे देव करते हैं, जिनका

ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म में वृद्धि करते है, जिसका तनिक सा ध्यान भी हृदय मे लाते ही अत्यन्त मूर्ख भी विपुल ज्ञान के भडार बन जाते है, जिस पर देव, किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियां अपने प्राणो को न्यौछावर करके सजीवता प्राप्त करती है, उसी कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचाती है।

विशेष—'सकर से सुर', 'ध्यानन धर्म', 'छोहरिया छछिया भरि छाछ' मे छेकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास, 'नैक हिये जिहि आनत ही जड़ मूढ महा रसखानि कहावै' मे द्वितीय विभावना, 'वारत प्रानन प्रानन पावै' मे विरोधाभास और जापर देव अदेव भू-अगना' मे यमक अलकार है।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पंक्ति के निम्नलिखित पाठातर मिलते हैं—

१. जापर सुन्दर देववधू नहि वारत प्रान अवार लगावै।
२. जापर देव भुवंग वरगना वारति प्रान सु प्रान से पावै।
३. जापर देव अदैव भुवंगम वारत प्रानन पार न पावै।

सवैया

सेष गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड अछेद अभेद सु वेद बतावै।
नारद से सुक व्यास रहै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥८॥

शब्दार्थ—सेष=शेषनाग। महेस=शिव। दिनेस=सूर्य। सुरेस=इन्द्र। अछेद=अछेद्य, अमर। अभेद=अभेद्य, जिसका रहस्य न जाना जा सके। पचि=कोशिश करके।

अर्थ—कृष्ण की भक्त-वत्सलता एव लौकिक लीला का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि जिस कृष्ण के गुणो का शेषनाग, गणेश, शिव, सूर्य, इन्द्र निरन्तर स्मरण करते हैं। वेद जिसके स्वरूप का निश्चित ज्ञान प्राप्त न करके उसे अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद्य, अभेद्य आदि विशेषणो से युक्त करते है। नारद, शुकदेव और व्यास जैसे प्रकाड पडित भी अपनी पूरी कोशिश करके जिसके स्वरूप का पता न लगा सके और हार मानकर बैठ गए, उन्ही कृष्ण को

अहीर की लड़कियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचाती है।

विशेष—श्रुत्यनुप्रास, छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

सवैया

गावै गुनी गनिका गधरब्ब औ सारद सेष सवै गुन गावत।
नाम अनत गनत गनेस ज्यौ ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ॥९॥

शब्दार्थ—गनिका=अप्सरा। गधरब्ब=गधर्व, सगीत-प्रिय देवयोनि। सारद=शारदा। सेष=शेषनाग। त्रिलोचन=शिव। छोहरियाँ=लड़की। छछिया=मिट्टी का छोटा-सा पात्र।

अर्थ—कृष्ण की भक्त-वत्सलता एव लोक-लीला का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि जिस कृष्ण के गुणो का गान अप्सरा, गधर्व, शारदा और शेपनाग सभी करते है, गणेश जिसके अनत नामो का स्मरण करते है, ब्रह्मा और शिव जिसके रहस्य को नहीं जान पाते, जिसे प्राप्त करने के लिए योगी, यति, तपस्वी और सिद्ध निरन्तर समाधि लगाये रहते है, फिर भी उसका भेद नही जान पाते, उन्ही कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचाती है।

विशेष—इस सवैया मे छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास का सुन्दर प्रयोग है।

पाठान्तर—'गावत', 'पावत', 'लगावत' और 'नचावत' के स्थान पर क्रमशः 'गावै', 'पावै,' 'लगावै', और 'नचावै' पाठ भी मिलते है।

सवैया

लाय समाधि रहे ब्रह्मादिक योगी भये पर अन्त न पावै।
साँझ ते भोरहि भोर ते साझति सेस सदा नित नाम जपावै।
ढूँढ फिरे तिरलोक मे साख सुनारद लै कर वीन बजावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावै ॥१०॥

शब्दार्थ—भोर=प्रात काल। साँझ ते भोरहि भोर ते साझहि=सन्ध्याकाल से प्रात काल तक और प्रात काल से सन्ध्याकाल तक; अर्थात् हर समय,

निरन्तर । सेस=शेषनाग । तिरलोक मे=तीनों लोकों मे । सुनारद=महर्षि नारद । साख=साक्षी ।

अर्थ—कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि ब्रह्मा आदि अनेक योगी उस कृष्ण को जानने के लिए समाधि लगाये हुए हैं, पर वे उसका अन्त नही पाते, अर्थात् कृष्ण दुर्बोध्य और अनन्त हैं । शेष-नाग अपनी सहस्रो जिह्वाओ से निरन्तर उसका नाम जपते रहते हैं । महर्षि नारद अपने हाथ मे वीणा लेकर उसे बजाते हुए तीनो लोको मे ढूँढ फिरे हैं, पर कोई भी ऐसी साक्षी नही मिली, जिसके आधार पर वे यह दावा कर सकें कि उन्होने कृष्ण के रूप को जान लिया है । ऐसे दुर्बोध्य, अनन्त कृष्ण को अहीर की लडकियाँ एक मटकी छाछ के लिए नाच नचाती हैं ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है ।

सवैया

गुंज गरें सिर मोरपखा अरु चाल गयद की मो मन भावै ।
साँवरो नन्दकुमार सवै ब्रजमंडली मैं ब्रजराज कहावै ।
साज समाज सवै सिरताज औ लाज की वात नही कहि आवै ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥११॥

शब्दार्थ—गुंज=गले मे पहनने का एक आभूषण । गयंद=हाथी । छाज=शोभा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का तथा उनकी लौकिक लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि उनके गले मे गुंज नामक आभूषण है, सिर पर मोर-पखो का वना हुआ मुकुट है । हाथी जैसी मस्तानी चाल है जो मुझे वहुत ही अच्छी लगती है । यह साँवरा कृष्ण सारे व्रज का शिरोमणि है, इसीलिए ब्रजराज कहलाता है । यह सारी शोभा का और सारे समाज का सिरताज है । इसकी शोभा का वर्णन नही किया जा सकता । ऐसे कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ छछिया भर छाछ के लिए नचाती रहती हैं ।

विशेष—'साज समाज सवै सिरताज' मे वृत्यनुप्रास है ।

सवैया

ब्रह्म मै ढूंढ्यौ पुरानन गानन बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन ।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।
टेरत हेरत हारि पर्‌यौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन ।
देखौ दुरौ वह कुंज-कुटीर मै बैठौ पलोटत राधिका पायन ॥१२॥

शब्दार्थ—पुरानन गानन=पुराण के गीतो मे । चायन=चाव से । कितूं=कही भी । सुभायन=स्वभाव । टेरत=पुकारता हुआ । हेरत=खोजता हुआ । लुगायन=स्त्रियो ने । दुरौ=छिपा हुआ । पलोटत राधिका पायन=राधा के पैर दबा रहा है ।

अर्थ—कृष्ण की प्रेमाधीनता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि मैने ब्रह्म को पुराणो के गीतो मे ढूँढा, वेद-ऋचाओ को चौगुने चाव से इसी-लिए सुना कि शायद उन्ही से ब्रह्म का पता चल जाये । मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए । मैने उसे न तो कही सुना और न कही देखा । मै यह भी नही जान पाया कि उसका स्वरूप और स्वभाव कैसा है । उसे पुकारते हुए, उसकी खोज करते हुए मै थक गया और किसी भी नर या स्त्री ने उनका पता नहीं बताया । अन्त मे वह मुझे कुंज-कुटीर मे छिपकर बैठे हुए राधा के पैरो को दबाता हुआ दिखाई दिया ।

सवैया

कंस कुढ्यौ सुनि बानी अकास की ज्यावनहारहि मारन धायौ ।
भादव साँवरी आठई को रसखान महाप्रभु देवकी जायौ ।
रैनि अँधेरी मे लै वसुदेव महावन मे अरगै धरि आयौ ।
काहु न चौजुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ ॥१३॥

शब्दार्थ—बानी अकास=आकाशवाणी । ज्यावनहारहि=जन्म लेने वाला ही, देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला ही । भादव साँवरी आठई को=भादो की कृष्ण अष्टमी को । अरगै=धीरे-धीरे, चुपचाप । चौजुग=चारो युगो मे—सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग । जागत=जागृत अवस्था ।

अर्थ—कृष्ण-जन्म का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि जब कंस ने यह आकाशवाणी सुनी कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही तुझे

मारने के लिए अवतार ले रहा है तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ। आकाशवाणी के अनुसार ही भादो की कृष्णाष्टमी को आनन्द सागर महाप्रभु कृष्ण ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया। कस के भय से भयभीत होकर वसुदेव उस नवजात शिशु को अँधेरी रात मे चुपचाप लेकर महावन (मथुरा) की ओर चल दिए। जिस कृष्ण को चारो कालो का कोई भी योगी अपनी समाधि की जागृतावस्था मे भी प्राप्त नही कर सका है, उसी कृष्ण को यशोदा ने रात को अपने पास सोते हुए पाया।

विशेष १. समाधि अलकार।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथ मिश्र द्वारा सापादित 'रसखान ग्रंथावली' मे नही है।

तुलना १. 'गावत वेद विरंच न पायौ सो गोधन गावत गोपन पायौ।

—केशव

२ 'जग जाकी गोद मे सो जसुदा की गोद मे।'

—ब्रजेश

कवित्त

सभु धरै ध्यान जाको जपत जहान सब,
तातै न महान् और दूसर अवरेख्यौ मैं।
कहै रसखान वही बालक सरूप धरै,
जाको कछु रूप रग अद्भुत अवलेख्यौ मैं।
कहा कहूँ आली कछु कहती बनै न दसा,
नन्द जी के अँगना मे कौतुक एक देख्यौ मैं।
जगत को ठाटी महापुरुष विराटी जो,
निरजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं ॥१४॥

शब्दार्थ—अवरेख्यौ मैं=मैंने देखा। अवलेख्यौ मैं=मैंने देखा। कौतुक=तमाशा। जगत को ठाटी=ससार की रचना करने वाला, सृष्टि-स्रष्टा। विराटी=विराट रूप धारण करने वाला। निरंजन=विमल, प्रभावातीत। निराटी=अकेला, एकमेव।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की अलौकिकता और उनकी

बाल-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि । शिव जिसको आराध्य मानकर ध्यान करते है, सारा ससार जिसकी पूजा करता है, जिससे महान् और दूसरा देव मैने कोई नही देखा । वही कृष्ण साकार बनकर अवतरित हुआ है जिसका रूप-रग मुझे कुछ-कुछ अद्भुत सा लगा है । हे सखि ! क्या कहूँ, मुझसे तो उसकी उस अवस्था का वर्णन ही नही हो पा रहा है । बस यह जान लो कि नद जी के आँगन मे मैने एक तमाशा देखा है । जो कृष्ण ससार की रचना करने वाला है, महापुरुष है, विराट रूप धारण करने वाला है, किसी भी प्रकार के प्रभावो से परे है—प्रभावातीत है, केवल एक हैं; अर्थात् वही एक केवल सत्तावृत है, और सारा ससार तो उसी की सत्ता की माया है, उसे मैने मिट्टी खाते हुए देखा है ।

विशेष—१. इस कविता का भावपक्ष निर्बल और दार्शनिकता सबल है ।

२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्र थावली' मे यह कवित्त नही है ।

तुलना—'शृणु सखि कौतुकमेक नद निकेतागणे मया दृष्टम् ।
गोधूलि धूसरागो नृत्यति वेदान्त सिद्धात ॥'

कवित्त

वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन,
सदासिव सदा ही धरत ध्यान गाढे है ।
वेई विष्नु जाके काज मानी मूढ राजा रक,
जोगी जती ह्वै कै सीत सह्यौ अग डाढे है ।
वेई ब्रजचद रसखानि प्रान प्रानन के,
जाके अभिलाख लाख-लाख भाँति बाढे है ।
जसुधा के आगे वसुधा के मान-मोचन मे,
तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढे है ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—वेई=वही कृष्ण । सदासिव=सदा भक्त वत्सल शिव । गाढ़े=गभीर । जाके काज=जिसके लिए ! मानी=अहकारी । मूढ=मूर्ख । रंक=निर्धन । ब्रजचद=कृष्ण । रसखानि=आनंद के भडार । जसुधा=यशोदा । वसुधा=पृथ्वी, पृथ्वी पर रहने वाले लोग । मान-मोचन=अहकार को नष्ट करने वाले । तामरस-लोचन=कमलनयन । खरोचन=खुरचनी ।

अर्थ—प्रस्तुत कवित्त मे रसखान कृष्ण के अलौकिकत्व एवं बाल-लीला की ओर सकेत करते है कि वही कृष्ण ब्रह्म जिनकी पूजा ब्रह्मा जी रात-दिन किया करते है, भक्त-वत्सल शिव जिनका सदा गभीर ध्यान करते है; वही कृष्ण-विष्णु जिनके लिए अहकारी, मूर्ख, राजा, निर्धन, सभी प्रकार के लोग भोगी बनकर शीतादि के द्वारा अपने अगो को शिथिल बनाते हैं, वही आनद के भडार कृष्ण जो प्राणो के प्राण हैं और जिन्हे देखने के लिए लाखो अभिलाषायें लाखो प्रकार से बढती है, जो पृथ्वी पर रहने वाले लोगो का हृअकार मिटाने वाले है कमल के समान सुन्दर नेत्रो वाले हैं, यशोदा के सामने खुरचनी लेने के लिए खडे हुए हैं।

विशेष—१ इस कवित्त मे कृष्ण के ब्रह्म-रूप की ओर सकेत है।

२ जसुवा के आगे वसुवा के मान-मोचन मे और तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढे है। मे यमक अलकार है।

३ कृष्ण का अनेक रूपो मे वर्णन होने से उल्लेख अलकार हैं।

तुलना—आगे नदरानी के तनक गम पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो सुनुकत ठाढो है।
—पद्माकर

अनन्य भाव

सवैया

सेप सुरेस दिनेस गनेस ब्रजेस धनेस महेस मनावौ।
कोऊ भवानी भजौ मन की सब आस सबै विधि जाइ पुरावौ।
कोऊ रमा भजि लेहु महा धन कोऊ कहूँ मन वाछित पावौ।
पै रसखानि वही मेरो साधन और त्रिलोक रहौ कि नसावौ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—सेप=शेपनाग। सुरेस=इन्द्र। दिनेस=सूर्य। ब्रजेस=ब्रह्मा। धनेस=कुबेर। महेस=शिव। भवानी=पार्वती। पुरावौ=पूर्ण करे। रमा=लक्ष्मी। नसावौ=नष्ट हो जाये।

अर्थ—अनन्य भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति करते हुए रसखान कहते है कि चाहे कोई शेपनाग, इन्द्र, सूर्य, गनेश, ब्रह्मा, कुबेर और शिव की भक्ति करे। चाहे कोई पार्वती की भक्ति करके अपने मन की सभी अभिलाषाओ को सभी प्रकार पूर्ण कर ले। चाहे कोई लक्ष्मी की पूजा करके भारी धन

प्राप्त कर ले। चाहे कोई किसी भी प्रकार अपना मनोवाछित फल पाले, किन्तु मेरा तो एकमात्र साधन कृष्ण ही है। कृष्ण के अतिरिक्त तीनो लोक चाहे रहे, या नष्ट हो जाये, मुझे इसकी कोई चिन्ता नही है।

विशेष—'सेप सुरेस दिनेस गनेस अजेस धनेस महेस' मे छेकानुप्रास और श्रुत्यनुप्रास अलकार है।

तुलना—'मेरे तो राधिका नामक ही गति लोक दुऊ रहौ कै नसि जाऔ।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

द्रौपदी अ ' गनिका गज गीध अजामिल सो कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी, प्रहलाद को कैसे हरयौ दुख भारो।
काहे कौ सोच करै रसखानि कहा करि है रविनन्द विचारो।
ता खन जा खन राखियै माखन-चाखनहारो सो राखनहारो ॥१७॥

शब्दार्थ—द्रौपदी=पाडवो की स्त्री। गज=हाथी, जिसकी कृष्ण ने ग्राह से रक्षा की थी। गीध=जटायु, जो सीता की रक्षा करते समय रावण के बाणो से घायल हुआ था और अन्त मे राम ने जिसका उद्धार किया था। अजामिल=एक व्यक्ति का नाम। गौतम-गेहनी=गौतम की स्त्री अहिल्याबाई। रवि नन्द=यमराज। ताखन=उस समय। जा खन=जिस समय। माखन-चाखनहारो=श्रीकृष्ण। राखनहारो=रक्षक।

अर्थ—जब कृष्ण रक्षक है तो मनुष्य को किसी भी प्रकार की चिन्ता नही करनी चाहिए, इस भाव को व्यक्त करते हुए रसखान कहते है कि कृष्ण इतने दयालु है कि अपने भक्तो की टेर सुनते ही तुरन्त उनकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाते है। द्रौपदी, गणिका, गज, गीध और अजामिल ने अपने जीवन मे क्या कार्य किये थे, क्या उनके कार्य उनका उद्धार करने मे समर्थ थे? इन बातो पर कृष्ण ने कोई ध्यान नही दिया और तुरन्त उनका उद्धार कर दिया। इसी प्रकार गौतम—स्त्री अहिल्याबाई को भी मुक्ति प्रदान की तथा हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद के भारी दुख का हरण किया। अत हे मनुष्य! जिस समय श्रीकृष्ण तुम्हारे रक्षक है, उस समय तुम्हे कोई चिन्ता नही करनी

चाहिए, क्योकि उस समय तो यमराज भी तुम्हारा कुछ भी नही बिगाड़ सकता।

विशेष—१. 'चाखनहारो सो राखनहारो' मे यमक अलंकार है।

२. 'विचारो' शब्द यमराज की दुर्बलता को साकार कर रहा है, अतः यह शब्द नितात औचित्यपूर्ण है।

३. अन्तिम पंक्ति मे यति-दोप है।

सवैया

देस विदेस के देखे नरेसन रीझ की कोऊ न बूझ करैंगो।
ताते तिन्हैं तजि जानि गिरयौ गुन सौ गुन औगुन गाँठि परैंगो।
बाँसुरीवारो बडो रिझवार है स्याम जु नैसुक ढार ढरैंगो।
लाडलो छैल वही तौ अहीर को पीर हमारे हिये की हरैंगो॥ १८॥

शब्दार्थ—रीझ की=प्रेम की। गिर्यो गुन=अवगुण। रिझवार=रीझने वाला, प्रेम करने वाला। नैसुक=तनिक भी। ढार ढरैंगो=प्रीति करेगा। पीर=दुख।

अर्थ—कृष्ण भक्त-वत्सल हैं, इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए रसखान कहते हैं कि हे मन! तू देश-विदेश के राजाओ को परख ले, तेरे प्रेम का कोई भी सम्मान नही करेगा। उनके प्रति प्रेम करना अवगुण ही है, क्योंकि चाहे तुममे कितने ही गुण सही, पर उनके साथ रहने से वे अवगुण बन जायेंगे। वह बशीधर कृष्ण बहुत ही रीझने वाला है, भक्त-वत्सल है, यदि तू उससे तनिक भी प्रेम करेगा तो वह अहीर का लाड़ला पुत्र हमारे हृदय के सारे दुख को दूर कर देगा।

विशेष—१ 'देश विदेश' मे छेकानुप्रास; 'ताते तिन्है तजि' मे वृत्त्यनुप्रास और 'सौगुन औगुन गाँठि परैंगो' मे यमक अलकार है।

२ 'रिझवार' शब्द का प्रयोग अत्यन्त भावपूर्ण है।

सवैया

सपति सौ सकुचाइ कुबेरहिं रूप सौ दीनी चिनौती अनगहिं।
भोग कै कै ललचाइ पुरन्दर जोग कै गगलई धर मगहिं।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि रसै रसना जौ जु मुक्ति-तरगहि।
दै चित ताके न रग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रगहिं॥१६॥

शब्दार्थ—चिनौती=चुनौती । अनगहि=कामदेव को । भोग=ऐश्वर्य, पुरन्दर=इन्द्र । मगहि=सिर पर । मुक्ति तरगहि मुक्ति की तरगो मे, ज्ञान की चरम कोटि पर । रग=प्रेम । रंगहि=प्रेम मे ।

अर्थ—रसखान मनुष्य को कृष्ण-प्रेम के लिए प्रेरित करते हुए कहते है कि हे मनुष्य ! चाहे तुमने इतनी सम्पत्ति प्राप्त कर ली है कि उसकी विपुलता देखकर कुबेर को भी सकोच होता है, चाहे तुम इतने रूपवान हो कि अपने सौन्दर्य से कामदेव को चुनौती दे सकते हो, चाहे तुम्हारे पास इतनी सम्पत्ति हो गई है कि जिसे देखकर इन्द्र का मन भी ललचा जाए; चाहे तुमने योग-साधना के द्वारा गगाधर शिव-रूप को प्राप्त कर लिया, चाहे तुम्हारी जीभ मुक्ति की लहरो मे डूब गई है, अर्थात् तुम ज्ञान की चरम कोटि पर पहुँच गये हो; किन्तु यदि तुमने मन लगाकर उस कृष्ण से प्रेम नही किया जो राधा-रानी से प्रेम करते है तो तुम्हारी ये उपलब्धियाँ व्यर्थ और निस्सार है ।

सवैया

कचन-मन्दिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा झलकैयत ।
प्रात ही ते सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि जौ साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत ।।२०।।

शब्दार्थ—कचन-मन्दिर=सोने के महल । मानिक=मोती । नग=हीरा । मघवा=इन्द्र । सावरे ग्वार सो=कृष्ण से । नेह=स्नेह, प्रेम ।

अर्थ– कृष्ण के प्रति प्रेम ही मनुष्य की सर्वाधिक मूल्यवान सम्पत्ति है । जिसे कृष्ण से प्रेम नही, उसके सभी प्रकार के वैभव निरर्थक है । इसी भाव को प्रस्तुत सवैया मे प्रकट करते हुए रसखान कहते है कि माना तुमने सोने के ऊँचे-ऊँचे महल बनाकर उन्हे मोतियो से सदैव झलका रखा है । तुम्हारे पास इतने हीरे और मोती है कि प्रात काल से ही सारी नगरी उन्हे तराजुओ मे तोलने लगती हैं और फिर भी वे तुल नही पाते । तुम इतने वैभवपूर्ण राजा बन गए हो कि तुम्हारा वैभव देखकर इन्द्र का मन भी ललचाता है, अर्थात् तुम्हारे वैभव की तुलना मे वह अपने वैभव को अत्यन्त तुच्छ मानकर स्वय को दीन-हीन अनुभव करता है और चाहता है कि तुम्हारा जैसा वैभव उसके पास भी हो । यदि तुमने कृष्ण से प्रीति नही की है तो तुम्हारा यह सब अपार

वैभव व्यर्थ है।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण की प्रीति ही सबसे विशाल वैभव है। सारे सासारिक वैभव उसके सामने तुच्छ और नगण्य है।

विशेष—कृष्ण की प्रीति का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन होने से इस सवैया मे अत्युक्ति अलकार है।

पाठान्तर—तीसरी पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'पालै प्रजानि प्रजापति सो अरु सम्पति सो मघवाहि लजैयत।'

तुलना—'ऐसे भये तो कहा तुलसी जु पै जानकीनाथ के रग न राते।'

—तुलसी

कवित्त

कहा रसखानि सुखसम्पत्ति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अग छार को।
कहा साधे पचानल, कहा सोए बीच नल,
कहा जीति लाए राज सिंधु आर-पार को।
जप बार-बार तप सजम बयार-व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हौ नही प्यार नही सेयौ दरबार, चित,
चाह्यौ न निहार्‌यौ जौ पै नद के कुमार को॥२१॥

शब्दार्थ—रसखानि=आनन्द देने वाले भडार। सुमार=गणना। छार=धूल, भस्म। पचानल=पाँच प्रकार की अग्नियो से तप करना; चारो ओर से जलने वाली चार अग्नियाँ तथा ऊपर से सूर्य की प्रखर गर्मी। नल=जल बयार-व्रत=बिल्कुल भूखा रहकर तप करना। लबार=मूर्ख। नन्द के कुमार को=कृष्ण को।

अर्थ—कृष्ण की भक्ति के बिना और सभी तप तथा योग साधनाएँ व्यर्थ है, इस भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते है कि हे मनुष्य! यदि तुमने कृष्ण से प्रेम नही किया, उसकी शरण मे नही गए, भावपूर्ण मन से उसे नही चाहा और प्रेममयी दृष्टि से उसे नही देखा तो तुम्हारे आनन्द देने वाले सारे भडार व्यर्थ है, तुम्हारी सुख देने वाली सम्पत्ति की कोई गणना नही है, अर्थात् वे भी नगण्य है। शरीर पर भस्म लगाकर योगी बनने से कोई लाभ नही

है, पाँच अग्नियो के मध्य बैठकर तप करना अथवा जल मे समाधि लगाना भी निरर्थक है। समुद्र के आर-पार तक का राज्य जीत लेने से भी कोई लाभ नही है। हे मूर्ख ! कृष्ण के प्रेम के विना वार-वार जप करने को, निराहार रहकर तप और सयम करने को तथा हजारो तीर्थो की यात्रा करने को कौन बूझता है ? अर्थात् ये सब बेकार है।

विशेष—१. 'कीन्हो नही प्यार, नही सेयौ दरबार, चित चाह्यौ, न निहारयौ जो मै नन्द के कुमार को' मे कोमल वर्णो से युक्त वृत्त्यनुप्रास है।

२ कृष्ण भक्तो की यह प्रमुख विशेषता है कि वे कृष्ण को छोडकर अन्य प्रकार की साधनाओ को निरर्थक और आडम्बरपूर्ण मानते है। रसखान के प्रस्तुत कवित्त मे यही विशेषता परिलक्षित होती है।

पाठान्तर— कहा तन जोगी ह्वै' और 'कहा सोए वीच नल' के स्थान पर 'कहा महा जोगी ह्व' और 'कहा सोए बीच जल' पाठ भी मिलते है।

कवित्त

कचन के मन्दिरनि दीठि ठहराति नाहि,
सदा दीपमाल लाल-मानिक-उजारे सो।
और प्रभुताई अब कहाँ लौ बखानौ, प्रति,
टारन की भीर भूप टरत न द्वारे सो।
गगाजी मे न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद,
वीस बार गाइ, ध्यान कीजत सवारे सो।
ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जो पै,
चित्त दै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सो ॥२२॥

शब्दार्थ—कचन के मन्दिरनि=सोने के महलो पर। दीठि=दृष्टि। लाल मानिक=लाल मोती। प्रतिहारन की भीर=द्वारपालो की भीड। मुक्ताहलहू=मोतियो को। सवारे सो=शीघ्रता से, प्रात काल मे। पीतपटवारे सो=कृष्ण से।

अर्थ—कृष्ण की प्रीति के अभाव मे दुनिया के सारे वैभव और सारी साधनाएँ निरर्थक है, इस भाव को व्यक्त करते हुए रसखान कहते है कि है

मनुष्य ! यदि तुमने चित्त लगाकर कृष्ण से प्रीति नही की है तो तुम्हारे सोने के वे महल वेकार है जो सदा लाल मोतियो की दीपमालाग्रो से प्रकाशित रहते हैं और जिन्हे देखते ही दृष्टि चौंधिया जाती है। तुम्हारी ग्रधिक प्रभुता का तो क्या वर्णन करूँ, यदि तुम इतने प्रभुत्व सम्पन्न हो गए हो कि ग्रनेक राजा तुम्हारे प्रतिहार वने हुए है और उनकी भीड कभी भी तुम्हारे द्वार से नही हटती तो कृष्ण के प्रेम के ग्रभाव मे यह प्रभुता व्यर्थ है। चाहे तुम—गगाजी मे स्नान करके मुक्त हस्त से मोतियो का दान करो, ग्रनेक वार वेदो का पाठ करो और प्रात काल ध्यानावस्थित हो, किन्तु जव तक तुम कृष्ण से प्रीति नही करोगे, तव तक तुम्हारी ये साधनाएँ निष्फल ही रहेगी।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण की भक्ति ही सर्वोपरि और सर्वोच्च भक्ति है।

विशेष—१. 'दीठि ठहराति नाहि' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

२. इस कवित्त मे 'प्रतिहारन' शब्द खडित है, ग्रतः यहाँ पद-भग दोष है।

सवैया

एक सु तीरथ डोलत है इक वार हजार पुरान वके हैं।
एक लगे जप मे तप मे इक सिद्ध समाधिन मे ग्रटके है।
चेत जु देखत हौ रसखान सु मूढ महा सिगरे भटके है।
साँचहि वे जिन ग्रापुनपौ यह स्याम गुपाल पै वारि छके है ॥२३॥

शब्दार्थ—वके है=कहे है, कथाएँ सुनाई है। चेत=सावधान। सिगरे= सारे। ग्रापुनपौ=ग्रपनापन, स्वय को। छके है=मस्त है।

ग्रर्थ—तीर्थादि वाह्याडम्वरो का खडन और कृष्ण-प्रेम का मडन करतेहुए रसखान कहते है कि कोई मनुष्य तो तीर्थों की यात्रा करता हुग्रा घूमता है, कोई हजारो वार पुराणों की कथाग्रो को सुनाता है, ग्रर्थात् पुराणो का पाठ करता है। कोई जप-तप मे लगा हुग्रा है, कोई सिद्ध वनकर समाधि मे ग्रटका हुग्रा है। रसखान कहते है कि यदि सावधान होकर इन्हे देखा जाता है तो यही निष्कर्ष निकलता है कि ये सव महामूर्ख वनकर भटक रहे हैं। सही तो वे मनुष्य है जो स्वय को कृष्ण के लिए ग्रर्पित करके उस समर्पण की मस्ती से

मस्त बने हुए है।

विशेष १ अनन्यभाव का प्रेम अभिव्यजित है।

२. 'वक' शब्द का प्रयोग कवि के मन की अतिशय घृणा का सूचक है।

३. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' में यह सवैया नही है।

सवैया

सुनियै सब की कहिये न कछू रहियै इमि या भव-वागर मै।
करियै व्रत-नेम सचाई लिये जिन ते तरियै मन-सागर मै।
मिलियै सब सो दुरभाव बिना रहिये सतसग उजागर मै।
रसखानि गुबिन्दहि यौ भजियै जिमि नागरि को चित गागर मै ॥२४॥

शब्दार्थ—इमि=इस प्रकार। भव-वागर मै=असत्य ससार मे। उजागर=प्रकाश। नागरि=स्त्री। गागर=पानी का बर्तन।

अर्थ—रसखान सासारिक मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते है कि हे मनुष्य! तुम इस असत्य ससार मे इस प्रकार रहो कि सबकी सुनो, पर अपनी वात किसी से भी मत कहो। जो भी व्रत और नियम ग्रहण करो वे सत्य हो। सत्य व्रत और नियमो से ही मन का सागर पार किया जा सकता है, अर्थात् मन को अपने वश मे किया जा सकता है; सबसे अच्छी भावना लेकर मिलो और सदैव सत्सग के प्रकाश मे रहो, अर्थात् अच्छी सगति मे ही उठो-बैठो और एकाग्र मन से कृष्ण की भक्ति करो तुम्हारा मन कृष्ण की भक्ति मे उसी प्रकार एकाग्रता से लगना चाहिए जिस प्रकार स्त्री का मन अपने पानी के बर्तन मे लगा होता है। (स्त्रियाँ अपने सिर पर जब पानी का बर्तन लेकर चलती है तो उसके हाथ नही लगाती। वह गिर न जाये, इसलिए उसका सन्तुलन बनाये रखने के लिए वह उसकी ओर एकाग्र मन लगाये रहती है)।

विशेष—१ 'भव-वागर' और 'मन-सागर' मे रूपक अलकार; 'मिलियै सब सो दुरभाव बिना' मे विनोक्ति अलकार, 'रसखानि गुबिन्दहि यौ भजियै जिमि नागरि को चित गागर मैं' मे उपमा अलकार है।

२. 'जिमि नागरि को चित गागर मे' इस पदाश का एक अर्थ यह भी हो सकता है—

जिस प्रकार पनिहारी का ध्यान सिर पर रखे हुए पानी भरे घड़े की ओर होता है। पनिहारी सिर पर जल का घड़ा लिए चलती-फिरती, हाथ हिलाती तथा बातें करती रहती है, पर उसका ध्यान अपने घड़े की ओर से विचलित नहीं होता। (इसी प्रकार मनुष्य को संसार में रहते हुए भी, उसके नैमित्तिक कार्यों को करते हुए भी, अपना एकाग्र ध्यान कृष्ण-भक्ति की ओर लगाये रखना चाहिए)।

तुलना—'श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी सों चित्त ज्यों सिर पर दोहनी।' —हरिदास

सवैया

है छल की अप्रतीत की मूरति मोद बढ़ावै विनोद कलाम में।
हाथ न ऐहै कछू रसखान तू क्यों बहकै विष पीवत काम में।
है कुच कंचन के कलसा न ये आम की गाँठ मढ़ीक की चाम में।
वैनी नहीं मृगनैननि की ये नसैनी लगी यमराज के धाम में ॥२५॥

शब्दार्थ—अप्रतीत=विश्वासघात। कलाम=वाक्य, वचन। काम=काम-वासना। वैनी=चोटी। नसैनी=सीढ़ी।

अर्थ—नारियों के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कृष्ण-भक्ति को भूल जाने वाले मनुष्यों को चेतावनी देते हुए रसखान कहते हैं कि हे मनुष्यो! ये सुंदर नारियाँ छल और विश्वासघात की मूर्ति हैं। विनोद के वाक्य कह-कहकर ये जो आनन्द प्रदान करती हैं, वह आनन्द झूठा है। अतः तुम काम-भावना के वशीभूत होकर तथा पथ-भ्रष्ट होकर क्यों विष-पान कर रहे हो, इनसे कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। इनके उन्नत कुच स्वर्ण-कलश नहीं है, वरन् चाम में मढ़ी हुई आम की गाँठ है। ये सुन्दर नारियों की चोटियाँ नहीं हैं, वरन् नरक को ले जाने वाली सीढ़ियाँ हैं।

विशेष १ शुद्धापन्हुति अलंकार।

२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रंथावली' में यह सवैया नहीं है।

मिलन

सवैया

मोर के चन्दन मौर बन्यौ दिन दूलह है अली नद को नंदन ।
श्री वृषभानुसुता दूलही दिन जोरि वनी विधना सुखकदन ।।
आवै कह्यौ न कछू रसखानि ही दोऊ बँधे छवि प्रेम के फदन ।
जाहि विलोके सबै सुख पावत ये व्रजजीवन है दुखदंदन ।।२६।।

शब्दार्थ—मोर के चंदन=मोर-पखो के चन्दवे । अली=सखी । श्रीवृष-भानुसुता=राधा । सुखकदन=सुख देने वाली । व्रजजीवन=कृष्ण । दुखददन=दुख दूर करने वाले ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुए कहती है कि हे सखि ! मोर-पखों के चन्दवो का मुकुट पहने हुए कृष्ण दूल्ह बने हुए है और अत्यन्त सुख देने वाली राधा दूलहिन वनी हुई है । रसखान कहते है कि उन दोनो की अवस्था का वर्णन नही किया जा सकता । दोनो प्रेम के बधन मे बँधे हुए हैं। जिनको देखकर सभी लोगो को सुख प्राप्त होता है, वे दुख दूर करने वाले श्री कृष्ण है।

सवैया

मोहिनी मोहन सो रसखानि अचानक भेट भई वन माही ।
जेठ की घाम भई सुखधाम अनद ही अग ही अग समाही ।।
जीवन को फल पायौ भटू रस-वातन केलि सो तोरत नाही ।
कान्ह को हाथ कँधा पर है मुख ऊपर मोर किरीट की छाही ।।२७।।

शब्दार्थ—मोहिनी=राधा । घाम=धूप । सुखधाम=सुख का भण्डार ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आज अचानक राधा और कृष्ण की भेट वन के अन्दर हो गई । उस मिलन मे उन्हे जेठ की तपती हुई धूप भी सुख का भडार बन गई । वे आनन्द के कारण अगो मे अगो को छिपाने का प्रयास करने लगे । हे सखि ! उन्होने प्रेम-पूर्ण वातो के द्वारा ही जीवन का फल पा लिया, अर्थात् उनका जन्म सफल हो गया । वे अपनी क्रीड़ा को अवाध गति से चलाते रहे ।

कृष्ण का हाथ राधा [के कन्धे पर था और उसके मुख पर मोर-मुकुट की छाया थी ।

पाठान्तर—कुछ थोडे से परिवर्तनो के साथ इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

'मोहनी मोहन सो रसखान अचानक भेट भई वन माही ।
जेठ को घाम भयौ सुखघाम अनग प्रभजन अग समाही ।
जीवन को फल पायौ भटू रस वातन की लरु तोरत नाही ।
कान्ह के हाथ कँधा पै लसै मुख ऊपर मोर किरीट की छाही ।।

सवैया

लाडली लाल लसै लखि वै अलि कुंजनि क जनि मैं छवि गाढी ।
ऊजरी ज्यौं विजुरी सी जुरी चहुँ गुजरी केलि-कला सम वाढी ।
त्यौ रसखानि न जानि परै सुखिया तिहुँ लोकन की अति वाढी ।
वालक लाल लिये विहर छहरै वर मोरमुखी सिर ठाढी ।।२८।।

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण । अलि=सखी । पुंजनि=समूह । ऊजरी=उज्ज्वल । सुखमा=शोभा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से मिलन-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी ! राधा और कृष्ण को कुजो के समूहो मे देखकर उन कुजो की शोभा वहुत अधिक बढ गई । राधा के शरीर की उज्ज्वल कांति विजली की कान्ति के समान मालूम होती थी जिसके चारो ओर घिरी हुई गुर्जरियाँ केलि-कला के समान चमक रही थी । रसखान कहते है कि इस प्रकार उस सौन्दर्य का वर्णन अगम्य था क्योकि उसके कारण तीनो लोको का सौन्दर्य वहुत अधिक वढ गया था । वह कृष्ण गोपियो के लिये हुए उन कुंजो मे विहार कर रहे थे धौर उनके सिर के ऊपर सुन्दर मोरपखो का मुकुट सुशोभित था ।

विशेष—उपमा, वृत्यानुप्रास अलकार ।

बाल-लीला

सवैया

लाल की आज छटी व्रज लोग अनन्दित नन्द वड्यौ अन्हवावत ।
चाइन चारु वधाइन लै चहुँ ओर कुटुम्ब अघात न यावत ।

नाचत बाल बड़े रसखान छके हित काहू के लाज न आवत।
तैसोइ मात पिताउ लह्यौ उलह्यौ कुल ही कुलही पहिरावत ॥२६॥

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण। छटी=जन्म के छठे दिन का उत्सव। अन्हवावत=स्नान कराते है। चाइन=चाव से। चारु=आनन्दपुर। छके हित=प्रेम मे मस्त। उलह्यौ=आनन्द। कुल ही=सारा परिवार ही। कुल ही=एक प्रकार की टोपी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छठी-उत्सव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आज कृष्ण के जन्म के छठे दिन का उत्सव है। सारे व्रज के लोग आनन्द से भरे हुए है। नन्द अत्यन्त आनन्दित होकर कृष्ण को स्नान करा रहे है। लोग चाव से तथा चारो ओर से आनन्दप्रद वधाइया लेकर आ रहे हैं। कुटुम्व मगल-गीत गाता हुआ तृप्त नही हो रहा है। इच्चे और बड़े सभी आनन्द-सागर कृष्ण के प्रेम से इतने मस्त होकर नाच रहे है कि उन्हे किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नही हो रहा है। इसी प्रकार का आनन्द माता यशोदा और पिता नन्द को भी प्राप्त हो रहा है। सारा परिवार उन्हे कुलही पहिना रहा है।

विशेष—१. अन्तिम पक्ति मे यमक अलकार।
२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

तुलना—'आजु भोर तमचुर के दोल।
गोकुल मे आनन्द होत है, मगल-धुनि महराने टोल।
फूले फिरत नन्द अति सुख भयौ, हरपि मगावत फूल-तमोल।
फूली फिरति जसोदा तन-मन, उवटि कान्ह अन्हवाइ अमोल।'
—सूरदास

सवैया

'ता' जसुदा कह्यो धेनु की ओट ढिढोरत ताहि फिरै हरि भूलै।
ढूंढन कूँ पग चारि घलै मचलै रज माँहि विथूरि दुकूलै।
हेरि हँसे रसखान तबै उर भाल तै टारि कै बार लटूलै।
सो छवि देखि अनन्दन नन्दजू अंगन अग समात न कूलै ॥३०॥

शब्दार्थ—'ता' जसुदा कह्यौ धेनु की ओट=यशोदा ने कृष्ण को खिलाते समत गाय की ओट मे होकर 'ता' शब्द कहा। ढिढोरत ताहि=यशोदा को ढूंढते हैं। रज माँहि विथूरि दुकूलैं=अपने वस्त्रों को धूल से लथपथ कर लेते हैं। उर भाल तें=मस्तक के वीच से। वार लूटलैं=लम्बे-लम्बे वाल।

अर्थ—कृष्ण की वाल-लीला का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! कृष्ण को खिलाने के लिए यशोदा ने गाय की ओट मे होकर 'ता' शब्द कहा जिसे सुनकर कृष्ण अपनी और वातों को भूलकर उन्हे ढूढते हैं। वे उन्हे ढूढने के लिए कुछ ही पग चलते हैं, किन्तु यशोदा को न पाकर वे मचल जाते हैं और पृथ्वी पर लोट-लोटकर अपने वस्त्रो को धूल से लथपथ कर लेते हैं। तव यशोदा उनके पास आती हैं। उन्हें देखकर कृष्ण हँसने लगते है और यशोदा उनके मस्तक पर पड़े हुए लम्बे-लम्बे वालों को हटाकर उनका मुह चूम लेती हैं। इस शोभा को देखकर नन्द इतने प्रसन्न होते हैं कि उनकी प्रसन्नता उनके अंगो मे नही समा पाती।

विशेष—१. वाल-लीला का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन है।
२. अन्तिम पंक्ति मे यमक अलंकार है।
३ श्री विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नही है।

तुलना—'गैया की सुओट ह्वै ललैया बिलुकैया दै दै,
जसोमति मैया जबै कन्हैया सो 'ता' कहै।'
—अज्ञात

सवैया—

आजु गई हुती भोर ही हौं रसखान रई वटि नन्द के भौनहिं।
वाको जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहिं।
तेल लगाग लगाइ कै अँजन भौंहे वनाइ वनाइ डिगैनहिं।
डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौं चुचकारत छौनहिं ॥३१॥

शब्दार्थ—रई=अनुरक्त हो गई। भौनहिं=भवन में। जुग=युग। अंजन=काजल। डिठौनहिं=डिठौने को; अपने पुत्र को नजर से बचाने के लिए माताएं उनके मुख पर काजल का काला दाग लगा देती हैं, जिसे डिठौना

कहते है। छौनहि=पुत्र को, कृष्ण को।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मै आज ही प्रात.काल नन्द के उस भवन मे गई थी जहाँ रस के सागर कृष्ण थे। मैं उन्हे देखते ही उनमे अनुरक्त हो गई। उन जैसा पुत्र पाकर यशोदा जी को जो सुख मिला है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। मै तो भगवान् ने प्रार्थना करती हूँ कि उनका पुत्र लाख करोड युगो तक जीवित रहे। यशोदा जी ने उसके सिर पर तेल लगाकर और आँखों मे काजल लगाकर तथा उसकी भौंहो को सँवार कर उसके मुख पर डिठौना लगा दिया। उसके गले मे हमेल और हार डालकर यशोदा जी उनके सौन्दर्य को निहारती रही, उस पर स्वय को न्यौछावर करती रही और उसे चूमती रही।

विशेष—'डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यो चुचकारत छौनहि' के दोनो पदो मे यमक अलकार है।

सवैया—

धूरि भरे अति सोभित श्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अगना पग पैजनी बाजति पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बडे सजनी हरि-हाथ सो लै गयौ माखन-रोटी ॥३२॥

शब्दार्थ—धूरि भरे=धूल से सने हुए। पीरी=पीली। वारत=न्यौछावर करती है। काम=कामदेव। कला=सुन्दरता। कोटी=कोटि, करोड़ो।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि धूल से सने हुए शरीर वाले श्री कृष्ण अत्यन्त शोभायमान थे। ऐसी ही शोभा से युक्त उनके सिर की सुन्दर चोटी बनी हुई थी। वे खेलते हुए और माखन-रोटी खाते हुए अपने आगन मे घूम रहे थे। उनके पैरो की पैजनी बज रही थी। वे पीली लगोटी पहने हुए थे। उनकी उस समय की शोभा को देखकर कामदेव भी अपनी करोडो सुन्दरताओ को उस पर न्यौछावर कर रहा था। हे सखि ! उस कौवे का बहुत बडा सौभाग्य है

है जो कृष्ण के हाथ से माखन-रोटी झपटकर उड़ गया।

विशेष—१. कृष्ण की वाल-लीला का सुन्दर एव स्वाभाविक वर्णन है।

२. 'वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी' मे व्यतिरेक अलकार है।

पाठान्तर—चतुर्थ पक्ति का यह पाठ भी मिलता है

काग के भाग कहा कहिए हरि हाथ सो ले गयो माखन-रोटी।

तुलना— 'सोभित कर नवनीत लिए।

घुटुरुनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहि पिए।
कठुला-कठ, व्रज केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एको पल इहि सुख, का सत कल्प जिए॥

—सूरदास

रूप-माधुरी

सवैया

मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अँग ही अँग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी॥
पूरब पुन्यनि ते रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चार्यौ दिसानि की लै छवि आनि कै झाँके झरोखे मै बाँके विहारी।३३।

शब्दार्थ—लट=केश-राशि। जराव=जड़ाऊ आभूषण। जरतारी=जरीवाली।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि उस नटवर कृष्ण के गले मे मोतियो की माला पड़ी हुई है। घूँघरदार केश-राशि लटक रही है। अग के प्रत्येक भाग मे जडाऊ आभूषण और सिर पर जरी वाली पगड़ी सुशोभित है। रसखान कहते है कि पूर्व जन्म के पुण्यो के कारण ही इस मोहिनी मूर्ति के दर्शन हुए है। चारो दिशाओ की शोभा लेकर वाँके कृष्ण आकर तभी झरोखे मे झाँकने लगे।

विशेष—कृष्ण की रूप-माधुरी का परम्परागत वर्णन है।

पाठान्तर—इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

'मोतिन माल हिये लटकै लटकै लट चौलट घूँघरवारी।
अंगनि अग जराव कसे अह सीस लसै पगिमा जरतारी।
पूरव पूरे ही पुन्यनि ते रसखान ये मूरति नैन निहारी।
चारौ दिसा के महा अघ हाँके जो झाँके झरोकनि बाँके विहारी।।

सवैया

आवत है बन ते मनमोहन गाइन सग लसै ब्रज-ग्वाला।
वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला।।
हेरत टेरि ककै चहुँ ओर तै झाँकि झरोखन ते ब्रज-वाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यौ सब द्योस को ताप-कसाला।।३४।।

शब्दार्थ—गाइन=गायो के। लसै=सुशोभित हो रहे है। अभीत=निडर होकर। ख्याला=खेल। द्योस=दिन। ताप-कसाला=थकान।

अर्थ—श्रीकृष्ण गाये चराकर शाम को बन से ब्रज लौट रहे है। गायों के साथ ब्रज के ग्वाले सुशोभित हो रहे है। वशी बजाते हुए गोचारण के गीत गाते हुए निडर होकर कृष्ण इधर कुछ खेल-सा कर गये है। उन्हे देखने के लिए चारो ओर से ब्रजवालाये आकर झरोखो से झाँकने लगी है। रसखान कवि कहते है कि उनके मुख की शोभा को देखकर सारी ब्रज-वनिताएँ अपनी दिन-भर की थकान को भूल गई, अर्थात् उनके जीवन मे नवीन चेतना और स्फूर्ति आ गई।

पाठान्तर—'आवत है वन ते मनमोहन गाइन सग लसै ब्रज-ग्वाला।
वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला।
हेरत टेर थकी चहुँ ओर तै झाँकि झरोकनि सो ब्रजबाला।
देखत आनन को रसखान तज्यौ सब द्यौस को ताप कसाला।।'

कवित्त

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैयाँ पाछे ग्वाल गावै मृदु तानि री।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर जैसी,
वक चितवनि मन्द मन्द मुसकानि री।

कदम विटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि चाटि पीत पट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपनि बुझावै नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री ॥३५॥

शब्दार्थ—लहलही=सुन्दर। विटप=वृक्ष। तटनी=-नदी, यमुना नदी। रस=आनन्द। तन-तपनि=शरीर के दुख।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि उसके मस्तक पर गोरज तथा हृदय पर सुन्दर वनमाला सुशोभित है। उसके आगे आगे गाये है, पीछे-पीछे ग्वाले है। गायो और ग्वालो के मध्य मे वह मनोहर बांसुरी बजा रहा हैं। जितनी सुन्दर बासुरी की ध्वनि है, उतनी ही सुन्दर उसकी वक्र चितवन और मन्द हँसी है। वह यमुना नदी के तट पर कदम्ब वृक्ष के पास है। हे सखि ! यदि तू उसके पीले वस्त्रो के फहराने को देखना चाहती है तो अटारी पर चढकर देख ले। आनन्द की वर्षा करता हुआ, शरीर के दुखो को नष्ट करता हुआ तथा नेत्र और प्राणों को मोहित करता हुआ वह आनन्द-सागर कृष्ण आ रहा है।

सवैया

अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कँ लाज की गाँठन खोलत है॥
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है।
रसखानि लखे मन बूडि गयौ मधि रूप के सिंधु कलोलत है॥३६॥

शब्दार्थ—महामृदु=अत्यन्त मधुर। बूडि गयौ=डूब गया। मधि=मध्य मे, अन्दर। कलोलत है=किल्लोलें करता हैं।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण अत्यन्त सुन्दर है और वे अत्यन्त मधुर वाणी बोलते हे। वे मुझे देखकर अपने नेत्रो की कोरो से कटाक्ष चलाकर लाज को दूर कर देते है, अर्थात् उनसे इतना प्रेम हो जाता है कि लोक-लाज की कोई चिन्ता नही रहती। हे सजनी ! सुनो, वह विलक्षण कृष्ण प्रत्येक कुंज मे घूमता रहता है। उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर मेरा मन उसके रूप-सागर मे डूबकर किल्लोलें करता है।

विशेष—रूपक अलकार।

पाठान्तर—इस सवैये की दूसरी पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'वह नैन की कोर कटाछन लाय कै लाज की ग्रथनि खोलत है।'

तुलना—'चित्त चप जाय परे सोभा के समुद्र माँझ,
रही न सभार कछु और भई पल मे।
मन मेरो गरुवो गयौ री बूडि मै न पायौ,
नैन मेरे हरुवे तिरत रूप जल मे।'

गग कवि

सवैया

तै न लख्यौ जव कुंजनि ते वनिकै निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ अठ कैसो किरीट लसै लटक्यौ री॥
को रसखानि फिरै झटक्यौ हटक्यौ व्रज लोग फिरै भटक्यौ री।
रूप सबै हरि वा नट को हियरे अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री॥३७॥

शब्दार्थ—बनिकै=सुन्दर रूप धारण करके। हरा=हार। किरीट=मुकुट। झटक्यौ=रूप से झकझोरा हुआ। हटक्यौ=मना करने पर भी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! तव कृष्ण भटकता हुआ और मटकता हुआ सुन्दर रूप धारण करके कुज मे से निकाला था, तव तूने उसे नही देखा। उसके हृदय पर पड़ा हुआ हार कितना शोभायमान था और सिर पर लटकता हुआ मुकुट कितना सुन्दर दिखाई पड रहा था। रसखान कहते है कि व्रजवासियो के मना करने पर भी वह रूप से झकझोरा हुआ कृष्ण भटकता हुआ फिर रहा था। उस नटवर कृष्ण का सारा सौन्दर्य मेरे हृदय मे अटक गया है, अर्थात् उसके सौन्दर्य का गम्भीर प्रभाव मेरे हृदय पर पडा है।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे 'अटक्यौ' शब्द की तीन वार आवृत्ति प्रभावशीलता मे सहायक है। वीप्सा अलकार।

पाठान्तर—इस सवैये की अन्तिम पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'रूप सबै हरि वा नट को हियरे फटक्यौ झटक्यौ अटक्यौ री।'

सवैया

नैननि वंक विसाल के वाननि झेलि सकै अस कौन नवेली।
वेधत है हिय तीछन कोर मुमार गिरी तिय कोटिक हेली॥
छोडै नही छिनहूँ रससानि सु लागी फिरै द्रुम सो जनु वेली।
रौरि परी छवि की व्रजमडल कुंडल गंडनि कुतल केली॥३८॥

शब्दार्थ नवेली=नई, युवती। सुमार=भयकर मार से। कोटिक=करोडो। हेली=सखी। द्रुम=वृक्ष। रौरि=कोलाहल। कुंडल गडनि कुन्तल केली=कुडल से सुशोभित गडस्थल पर केशो की क्रीडा।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! ऐसी कोई भी युवती नही है जो कृष्ण के वक्र एव विशाल नेत्र रूपी वाणो की चोट को सह सके। ये वाण अपनी तीक्ष्ण नोको से हृदय को वेधते हैं और करोड़ो नारियाँ इनकी भयकर मार से गिर गई है। आनन्द-सागर कृष्ण फिर उन नारियो से क्षण भर के लिए भी नही छोडे जाते और वे उनसे इसी प्रकार चिपट जाती हैं जिस प्रकार वृक्ष से वेल लिपट जाती है। सारे व्रज मे कृष्ण की शोभा तथा उनके कुडल से सुशोभित गडस्थल पर केशो की क्रीड़ा का कोलाहल मचा हुआ है।

विशेष—रूपक और उत्प्रेक्षा अलकार।

सवैया

अलवेली विलोकनि वोलनि औ अलवेलियै लोल निहारन की।
अलवेली सी डोलनि गंडनि पै छवि सो मिली कुडल वारन की॥
भटू टाढी लख्यौ छवि कैसे कहौं रसखानि गहे द्रुम डारन की।
हिय मैं जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की॥३९॥

शब्दार्थ—अलवेली=विलक्षण। विलोकनि=दृष्टि। लोल=चचल। गडनि पै=गडस्थलो पर। वारन=हाथी। द्रुम=वृक्ष। निरवारन की=छूटने की।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! उसकी दृष्टि और वाणी विलक्षण है; उसकी चचल दृष्टि भी विलक्षण-सी है। उसके कपोलो पर कुडलो की छवि हाथी के गड-

स्थल पर पडी हुई छबि की भाँति विलक्षण है। हे सखि ! मैने उसको (कृष्ण को) पेड की डालियाँ पकड कर खडे हुए देखा था। उस समय उसकी जो शोभा थी, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसकी रस से भरी हुई मुसकान मेरे हृदय मे और मन मे भर गई है। उसको छूटने की मुझे कौन शिक्षा दे सकती है ? अर्थात् किसी के कहने से भी वह नही छूट सकती।

पाठान्तर—'अलबेली बिलोकनि बोलनि है अलबेली सु लोलनि हारन की।
अलबेली सी डोलनि गडनि पै छबि कु डल सो मिलि वारन की।
भटू ठाढो लख्यौ छवि कैसे कहौ रसखान गहै द्रुम डारन की।
हिय मे जिय मे मुसकानि रमी गति को सिखवै निरवारन की ॥'

सवैया

बाँकी बडी अँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि कौ कल बानी।
सुन्दर रासि सुधानिधि सो मुख मूरति रंग सुधारस-सानी ॥
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डोलति है वन बीथिन मै रसखानि मनोहर रूप-लुभानी ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—बडरारे=बडे, विशाल। कल=सुन्दर। सुधानिधि=चद्रमा। सुधारस-सानी=अमृत से युक्त।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी अन्य नवीन गोपी का, जो कृष्ण से प्रेम करती है, वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि। जब से उस नवीन गोपी ने अत्यन्त सुख देने वाले, वक्र तथा विशाल नेत्र वाले, पुष्ट कपोल वाले मधुर भाषण करने वाले, सुन्दर हँसी वाले, चद्रमा के समान मुख वाले और अमृत जैसे प्रेम से युक्त शरीर वाले कृष्ण को देखा है, तब से वह उनकी खोज मे वनो मे और गलियो मे घूमती फिर रही है तथा उनके मनोहर रूप पर लुब्ध हो गये है।

विशेष—द्वितीय पक्ति मे उपमा अलकार।

सवैया

दृग इने खिंचे रहै कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही ।
छकि छैल छवील छटा छहराइ कै कौतुक कोटि दिखाइ रही ॥
झुकि झूमि झमाकनि चूमि अमी चरि चाँदनी चन्द चुराइ रही।
मन भाइ रही रसखानि महा छवि मोहन की तरसाइ रही ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—कानन लौं=कानो तक। आनन=मुख । कौतुक=खेल ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि उनके दोनो नेत्र कानो तक खिचे रहते है ; अर्थात् उनके नेत्र विशाल है , उनके केश मुख पर लहराते रहते हैं उनकी सुन्दर शोभा की काति बिखर कर करोडो प्रकार के खेल दिखा रही है। उनकी शोभा झुककर, घूमकर और, अमृत को चूमकर चन्द्रमा की चादनी को चुरा रही है । रसखान कहते है कि कृष्ण की महा छवि मनमोहक है, इसीलिए वह मन को तरसा रही है।

विशेष—द्वितीय और तृतीय पक्ति मे छेकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास।

सवैया

लाल लसै पगिया सब के सबके पट कोटि सुगधनि भीने।
अगनि अग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने ॥
मुकता गलमाल लसै सब के सब ग्वार कुवार सिगार सो कीने।
पै सिगरे ब्रज के हरि ही हरि ही कै हरै हियरा हरि लीने ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—कोटि=करोड़। जराउ=आभूषण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! सारे ग्वालो के सिर पर लाल पगडी सुशोभित है, सभी के वस्त्र करोड़ो प्रकार की सुगन्धियो से सुगन्धित हो रहे है। रसखान कहते है कि सभी के अग अनेक प्रकार के आभूषणो से सुशोभित है। सभी के गलो मे मोतियो की मालाये सुशोभित है, सारे युवक ग्वाल शृगार किये हुए हैं, किन्तु श्रीकृष्ण सारे ब्रज के सिह है। अर्थात् सभी मे श्रेष्ठ है । उन्होने अपने हृदय पर पडी हुई लहलहाती वनमाला से ही सबके हृदय अपने वश मे कर लिए ।

विशेष—अतिम पक्ति मे यमक अलकार।

सवैया

वह घेरनि धेनु अबेर सबेरनि फेरनि लाल लकुट्टनि की।
वह तीछन चच्छु कटाछन की छवि मोरनि भौह भृकुट्टनि की ॥

वह लाल की चाल चुभी चित मै रसखानि सँगीत उघुट्टनि की ।
वह पीतपटक्कनि की चटकानि लटक्कनि मोर मुकुट्टनि की ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—घेरनि=घेरना । अबेर=देर से । सवेरनि=जल्दी से । घेरनि=घुमाना । ललुकट्टनि की=लाठी का । चच्छु=चक्षु, आँख । पटक्कनि की=वस्त्रो की ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्णा की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्णा का देर से या जल्दी से गायो को घेरना, अपनी लाठी को घुमाना, आँखो के द्वारा तीक्ष्ण कटाक्ष करना, मौह और भृकुटियो की मोड़ने की शोभा, सगीत की ताने बजाना, पीले वस्त्रो की फडफडाहट और मोर-मुकुट का लटकना, ने कृष्ण की सभी चाले मेरे मन मे घर कर गई है ।

विशेष—अनुभावो की सुन्दर योजना है ।

सवैया

साँझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौ मन मौ ललकै री ।
ऊँची अटान चढी ब्रजबाम सुलाज सनेह दुरै उभकै री ॥
गोधन धूरि की धूँधरि मै तिनकी छबि यौ रसखानि तकै री
पावक के गिरि ते बुधि मानौ चुँवा-लपटी लपटै ललकै री ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—साँझ समै=सन्ध्या के समय मे । पेखन कौ=देखने के लिए । ललकै=इच्छा करना । धूँधरि मैं=धुँधलेपन मे ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई कहती हैं कि हे सखि ! कृष्ण के रूप की शोभा इतनी आकर्षक है कि सन्ध्या के समय उसे व्रज को लौटते समय देखकर मन उसे देखने के लिए इस प्रकार प्रवल इच्छा करने लगता है कि व्रज की युवतियाँ लज्जा और प्रेम के कारण ऊँची अटालियो पर चढकर उभक-उभक कर इसे देखने लगती है । रसखान कहते है कि गौओ के सुरो से उठी हुई धूलि से धुँधलेपन मे कृष्ण की छवि इस प्रकार दिखाई देती है, मानो आग के पहाड से बुझकर धुँए के वादल चढे आ रहे हो ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलकार ।

सवैया

देखिक रास महावन को इक गोपवधू कह्यौ एक वधू पर ।
देखति हौ सखि मार से गोप कुमार बने जितने ब्रज-भू पर ॥
तीछे निटारि लख्यौ रसखानि सिंगार करौ किन कोऊ वहू पर ।
फेरि फिरै अँखियाँ ठहरानि है कारे पितम्बर वारे के ऊपर ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—मार=स्मर, काम देव । तीछे=तिरछी दृष्टि ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के द्वारा रचाई गई रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण ने महावन में रासलीला रची थी । जितने भी ब्रज के गोप है वे सब इस प्रकार से सजे हुए थे कि वे कामदेव की भाँति दिखाई पड़ते थे । मैंने तिरछी दृष्टि से उनको देखा, वे कुछ न कुछ शृंगार किये हुए थे , अथवा विविध प्रकार के शृंगारों से सुसज्जित थे । इन्हें देखने के बाद फिर दृष्टि पीताम्बर धारी कृष्ण पर जाती थी । वे भी इतने सुशोभित हो रहे थे कि आँखें बार-बार उन्हीं पर जाकर ठहरती थीं ।

सवैया

दमकै रवि कुंडल दामिनी से धुरवा जिमि गोरज राजत है ।
मुकताहल-वारन गोपन के सु तो बूँदन की छवि छाजत है ॥
ब्रजबाल नदी उमही रसखानि मयंकवधू-दुति लाजत है ।
यह आवन श्री मनभावन की वरषा जिमि आज विराजत है ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—रवि-कुंडल=सूर्य जैसी तेज चमक वाले कुंडल । दामिनी=बिजली। धुरवा=बादलों के स्तम्भ । गोरज=गऊओं के पैरों से उठी हुई धूलि । मुकताहल=मोती । मयकवधू=बीर बहूटी ।

अर्थ – कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन कर रही है । वह कहती है कि कृष्ण का ब्रज को लौटना वर्षाऋतु के समान है । इसी वर्णन का सांगरूपक द्वारा इस तरह प्रस्तुत किया गया है । कृष्ण के कानों में पड़े हुए सूर्य-जैसी चमक वाले कुंडल बिजली के समान चमकते हैं । गौओं के पैरों से उठी हुई धूलि बादलों के उमड़ने के समान प्रतीत होती है । गोपों पर वे मोतियों को बिखेर रहे हैं, जो वर्षाकाल में पड़ती हुई बूँदों के समान मालूम होते हैं । कृष्ण के दर्शन के लिए उमड़ी हुई ब्रजबालाओं के समूह मानो वर्षा काल में उमड़ी हुई नदी है । जिस प्रकार बादलों में आगमन से चन्द्रमा की

ज्योति धूमिल पड जाती है, उसी प्रकार कृष्ण के सौन्दर्य के आगे बीरबहूटिय की शोभा मद पड गई है। अत. मन को सुन्दर लगने वाले कृष्ण का ब्रज मे आना ऐसा लग रहा है, मानो वर्षाऋतु आगई है।

विशेष—सागरूपक अलकार।

सवैया

मोर किरीट नवीन लसै मकराकृत कुण्डल लोल की डोरनि।
ज्यो रसखान घने घन मे दमकै बिनि दामिन चाप के छोरनि।
मारि है जीव तो जीव बलाय विलोकि वलाय लौ नन की कोरनि।
कौन सुभाय सो आवत स्याम बजावत बैनु नचावत मौरनि ॥४७॥

शब्दार्थ—किरीट=मुकुट। लसै=सुशोभित है। मकराकृत कुण्डल=मकर की आकृति के समान कुण्डल। लोल=चचल। दमकै बिवि दामिनि चाप के छोरनि=इन्द्रधनुष के दोनो सिरो पर दो बिजलियाँ दमक रही हैं। मारि है जीव तो जीव वलामा=यदि प्राण मार भी दिये जाये तो भी जीवन मुश्किल है; अर्थात् मरकर भी इस शोभा से छुटकारा नही मिल सकता। सुभाय=शोभा, सजधज।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी! कृष्ण के सिर पर मोर-पखो का मुकुट सुशोभित है। कानो के कुण्डल, जो मकर की आकृति के समान है, अपनी डोरियो पर झूलते हुए चचल वन रहे है। वे ऐसे प्रतीत होते है जैसे इन्द्रधनुष के दोनो सिरो पर दो बिजलियाँ दमक रही है। कृष्ण के कटाक्षो की जो शोभा है, वह इतनी घनीभूत है कि उससे मर कर भी पीछा नही छूट सकता। वह देखो, वह कृष्ण बाँसुरी बजाता हुआ और अपने मोर-मुकुट को नचाता हुआ कितनी सजधज के साथ आ रहा है।

विशेष—यह छवि-वर्णन परम्परागत है।

तुलना—'चन्दन खौरि ललाट बिराजत मोरपखा सिर ऊपर सोहै।
कुण्डल लोल कपोल लसै मुरली के बजावत मो मन मोहै।
मोहि विलोकि विलोकि हँसै चितचोर बड़े-बड़े नैनन जोहै।
पूछति गोवधू भगवन्त या साँवरो सो जमुना-तट को है॥

—भगवन्त

सवैया

दोउ कानन कुंडल मोरपखा सिर सोहै दुकूल नयो चटको।
मनिहार गरे सुकुमार धरे नट-भेस अरे पिय को टटको॥
सुभ काछनी बैंजनी पावन आवन मैन लगै झटको।
वह सुन्दर को रसखानि अली जु गलीन में आइ अबै अटको।४८।

शब्दार्थ—कानन=कानो मे। मोरपखा=मोर-मुकुट। दुकूल=वस्त्र चटको=चटकीला। मनिहार=मणियो का हार। टटको=नवीन वेश। सुभ=सुन्दर। पायन=पैरो मे। आमन मैं=आने मे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह दोनो कानो मैं कुंडल पहने हुए है। सिर पर मोर-पखो का मुकुट सुशोभित है। नवीन चटकीला वस्त्र धारण किये हुए है। उनके गले मे मणियो का हार है। वह प्रियतम नवीन तथा सुन्दर नट-वेश धारण किये हुए है। उसकी कमर मे सुन्दर काछनी है, पैरो मे बजने वाली पैंजनी हैं जिसके कारण उसे चलने मे कोई बाधा नही होती। हे सखि! वह सुन्दरता और आन्द का सागर कृष्ण अब इन गलियो मे आकर ठहर गया है।

विशेष—सौन्दर्य-वर्णन परम्परागत है।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पक्ति का यह रूप भी मिलता है—
'सुभ काछनी बैंजनी पैं अनी पांवन आवत मैन लगैं झटको'

सवैया

काटे लटे की लटी लकुटी दुपटी सुफटी सोउ आवे कँधाही।
भावते भेप सबै रसखान न जानिए क्यो अँखियाँ ललचाही।
तू कछु जानत या छवि को यह कौन है साँवरिया वन माही।
जोरत नैन मरोरत भौंह निहोरत सैन अमेठत बाँही॥ ४६॥

शब्दार्थ—काटे लटे की=किसी वृक्ष की डाल से काटी हुई। लटी=छोटी-सी। भावते भेप=मनोहर वेश-भूपा। जोरत नैन=आँखे मिलाता है। मरोरत भौंह=भौंहो को मटकाता है। निहोरत सैन=नेत्रों के सकेतो से अनुनय-विनय करता है। अमेठत बाँही=बाँहे हिला-हिलाकर चलता है।

अर्थ—कृष्ण की छवि को देखकर कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! वह किसी वृक्ष की डाल से काटी हुई छोटी-सी छडी अपने हाथ मे

लिए हुए है। उसका दुपट्टा सुन्दर है जो उसके आधे ही कधे पर पड़ा हुआ है। वह मनोहर वेश-भूषा धारण किये हुए है। न जाने क्यो मेरी आँखे उसकी ओर ललचा कर आकृष्ट हो गई है। हे सखि! क्या तुम जानती हो कि ऐसी शोभा से युक्त, वह साँवरा युवक जो वन मे रहता है, कौन है? वह हर किसी युवती से आँखे मिलाता है, भौहो को मटकाता है, नेत्रो के सकेतो से अनुनय-विनय करता है और अपने हाथो को हिला-हिलाकर इतराता हुआ चलता है।

विशेष—१. अंतिम पक्ति मे विविध भावो की सुन्दर योजना है।

२. यह सवैया श्री विश्वानाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान-ग्र थावली मे नही है।

सवैया

कैसो मनोहर बानक मोहन सोहन सुन्दर काम ते आली।
जाहि बिलोकत लाज तजी कुल छूटो है नैननि की चल चाली॥
अधरा मुसकान तरग लसै रसखानि सुहाइ महाछबि छाली।
कु ज गली मधि मोहन सोहन देख्यौ सखी वह रूप-रसाली॥ ५०॥

शब्दार्थ—बानक=वेश। काम=कामदेव। आली=सखी। चल=चचल। अधरा=होठो पर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण का वेश अत्यन्त सुन्दर है। अपनी सुन्दरता मे वह कामदेव की सुन्दरता से भी बढ-चढकर है। उसको देखकर मैने लाज त्याग दी है और नेत्रो की चंचल गति के साथ ही कुल छूट गया है। उनके होठो पर मुस्कान की लहरे सुशोभित है। वह आनन्द सागर कृष्ण अत्यधिक शोभा से सुशोभित हो रहे है। हे सखि! मैने उस सुन्दर कृष्ण को कुंज गली के अन्दर देखा था।

दोहा

मोहनि छवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं॥५१॥

शब्दार्थ—दृग=नेत्र। अपने नाहि=अपने वश मे नही रहे। ऐचे=खीचने पर। सर=बाण।

अर्थ—रसखान कहते है कि जब से कृष्ण की शोभा को देखा है, तब से

ये मेरे नेत्र मेरे वश मे नही रहे है । ये कृष्ण-छवि पर से बड़ी कठिनतासे धनुष की भाँति खिचते हैं, पर वाण की तरह तेजी से फिर वही पहुँच जाते है ।

विशेष—उपमा अलकार ।

तुलना—'हरि रहीम ऐसी करी, ज्यो कमान सर पूर ।
खैंचि आपनी ओर को, टारि दियो पुनि दूर ।।

—रहीम

दोहा

या छवि पै रसखानि अब वारौं कोटि मनोज ।
जाकी उपमा कविन नहिँ पाई रहे सु खोज ।।५२।।

शब्दार्थ—वारौं=न्यौछावर करता हूँ। कोटि=करोड़ो। मनोज=कामदेव सु=भली प्रकार से, तन्मय होकर।

अर्थ—रसखानि कृष्ण की छवि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं कृष्ण की इस शोभा पर करोडो कामदेव न्यौछावर करता हूँ। कृष्ण की छवि की उपमा अभी तक कवियो को नही मिली है और वे अब भी पूर्ण तन्मय होकर उसके लिए उचित उपमा की खोज कर रहे है ।

विशेष—अतिशयोक्ति अलकार ।

प्रेमलीला

कवित्त

कदम करीर तरि पूछनि अधीर गोपी
आनन रुखोर गरो खरोई भरौहो सो ।
चोर हो हमारो प्रेम-चौतरा मैं हार्‌यौ
गरावनि तें निकसि भाज्यौ है करि लजैंरौ सो ।
ऐसे रूप ऐसो भेष हमैं हूँ दिखैयौ, देखि
देखत ही रसखानि नेननि चुभेरौ सो ।
मुकुट भुकोहो हास हियरा हरौहो कटि,
फेटा पिपरोहो अगरग साँवरौहो सो ।। ५३ ।।

शब्दार्थ—तीर=किनारा गरावनि=वधन। पिपरोहों=पीला।

अर्थ—कोई व्याकुल गोपी यमुना के किनारो से, कदम्ब तथा करील के वृक्षों से पूछती है कि तुम्हारे साथ रहने वाला वह कृष्ण कहाँ चला गया जिसका मुख मलीन है ग्रीवा अत्यन्त भरी हुई है, अर्थात् पुष्ट है। वह प्रेम रूपी खेल मे हारा हुआ हमारा चोर है जो लज्जित-सा होकर हमारे बधन (फदे) से निकल कर भाग गया है। अत्यन्त सुन्दर रूप और केश को हमे दिखाने वाला, जिसे देखते उसका सौन्दर्य आँखो मे गड गया, वह कृष्ण कहाँ है? उसका मुकुट झुका हुआ है, उसके हृदय पर सुन्दर हार पडा हुआ है, वह अपनी कमर मे पीला वस्त्र बाँधे हुए है और श्याम रग का है।

विशेष—परोक्ष रीति से कृष्ण के सौन्दर्य का भावपूर्ण वर्णन है।

सवैया

भौह भरी सुथरी बरुनी अति ही अधरानि रच्यौ रग रातो ।
कुँडल लोल कपोल महाछबि कुजन तै निकस्यौ मुसकातो ।।
छूटि गयौ रसखानि लखै उर भूलि गई तन की सुधि सातो ।
फूटि गयौ सिर तै दधि भाजन टूटिगौ नेन न लाज को नातो ।। ५४ ।।

शब्दार्थ—सुथरी=सुन्दर। बरुनी=पलके। रग रातो=लाल रंग। लोल=चचल। साहो=सातो इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि)

अर्थ—कृष्ण से भेंट हो जाने पर गोपी की क्या दशा हुई, उसी का वह वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण के भौहे भरी हुई थी, पलके सुन्दर थी और अधर लाल रंग से रगे हुए-से जान पड़ते थे, अर्थात् वे लालिमा से भरे हुए थे। उसके कानो मे कुडल थे जिनकी चचलता (हिलने-डुलने) के कारण कपोलो पर भारी शोभा व्याप्त थी। ऐसा सौन्दर्य धारी कृष्ण कुजो मे से मुसकराता हुआ निकला। उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखते ही मेरा हृदय जोर-जोर से धडकने लगा, मेरी सातो इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि) अपनी सुधि- बुधि भूल गई। मै इतनी बेसुध-सी हो गई कि मुझे अपने सिर पर रक्खे हुए दही के मटके का भी ध्यान नही रहा और वह सिर से पृथ्वी पर गिर कर फूट गया तथा आँखो से लाज का सम्बन्ध समाप्त हो गया, अर्थात् मै नारी-सुलभ लज्जा को त्यागकर बहुत देर तक उसे निर्निमेप दृष्टि से देखती रही।

सवैया

जात हुती जमुना जल कों मनमोहन घेरि लयौ मग आइ कै।
मोद भर्‌यो लपटाइ लयौ पट घूँघट ढारि दयौ चित चाइ कै॥
और कहा रसखानि कहौं मुख चूमत घातन बात बनाइ कै।
कैसे निभै कुल-कानि रही हिये साँवरी मूरति की छवि छाइ कै॥५५॥

शब्दार्थ—जात हुती=जा रही थी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से पनघट-लीला का वर्णन करती हुई कह रही है कि हे सखि ! मैं यमुना मे पानी भरने के लिए जा रही थी कि कृष्ण ने आकर मेरा रास्ता रोक लिया। प्रसन्न होकर उसने मुझे अपने शरीर से लिपटा लिया और जान-बूझकर उसने मेरे मुख पर पड़ा हुआ घूँघट हटा दिया। हे सखि ! मैं और तो क्या कहूँ, वह बातें बनाकर और अवसर निकाल कर मेरा मुख चूमने लगा। अब वंश की मर्यादा का पालन किस प्रकार हो सकता है, क्योकि मेरे हृदय मे कृष्ण की साँवरी मूर्ति की शोभा बस गई है।

सवैया

जा दिन ते निरख्यौ नदनंदन कानि तजी कर बंधन टूट्‌यौ।
चारु विलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन मोर ने लूट्‌यौ॥
सागर को सलिला जिमि धावै न रोकी रुकै कुल को पुल टूट्‌यौ।
मत्त भयौ मन सग फिरै रसखानि सरूप सुधारस घूट्‌यौ॥५६॥

शब्दार्थ—निरख्यौ=देखा। कानि=मर्यादा। चारु—सुन्दर। विलोकनि=दृष्टि। सुमार=गहरी चोट। सम्हार=सुधि। मार=स्मर, कामदेव। सलिला=नदी। सरूप=सौन्दर्य।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस दिन से मैंने कृष्ण को देखा है, उसी दिन से मर्यादा त्याग दी है, घर का बंधन छूट गया है। उसकी सुन्दर दृष्टि ने मेरे हृदय पर गहरी चोट की है जिसके कारण मैं अपनी सुधि खो बैठी हूँ और कामदेव ने मेरे मन को लूट लिया है। जिस प्रकार नदी अपना पुल तोड़कर सागर की ओर दौड़ती है और रोके से नही रुकती, उसी प्रकार मेरे कुल की मर्यादा का पुल टूट गया है और मेरा मन अबाध गति से कृष्ण की ओर दौड़ रहा है। मेरा मन पागल हो गया है और यह आनन्द-सागर कृष्ण के साथ-साथ फिरता है क्योकि इसने उनके सौन्दर्य की अमृत के आनन्द को पी लिया है।

विशेष—दृष्टात और रूपक अलकार।

सवैया

सुधि होत विदा नर नारिन की दुति दीहि परे वहियाँ पर की ।
रसखान विलोकत गु ज छरानि तजै कुल कानि दुहूँ घर की ।
सहरात हियौ फहरात हवाँ चितवै कहरानि पितवर की ।
यह कौन खरौ इतरात गहै बलि की वहियाँ छहियाँ बर की।५७॥

श०दार्थ—वहियाँ पर की=भुजा की। गु ज छरानि=गु ज की माला को। दुहूँ घर की=दोनो घरो की—पिता तथा श्वसुर के घर की। सहराता हियो=हृदय शीतल होता है, अपार आनन्द गिलता है। फहरात हवाँ=शरीर रोमाचित होता है। बलि की=वलराम की। छहियाँ वट की=बट वृक्ष की छाया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई कहती है कि जिसकी भुजाओ की शोभा पर दृष्टि पडते ही नर-नारियो की सुधि नष्ट हो जाती है। जिनके गले मे पडी हुई गुँजो की माला को देखते ही नारियाँ अपने पिता और श्वसुर के घरो की मर्यादा को भूलकर उन्हे प्रेम करने लगती है। उनके पीले वस्त्र की फहरान को देखकर हृदय को अपार आनन्द मिलता है और सारा शरीर रोमाचित हो जाता है। हे सखि ! बताओ तो, वट-वृक्ष की छाया मे वलराम की बाँह पकडकर इतराता हुआ वह कौन खडा है ?

विशेष—१. इस सवैया मे अनुभावो की योजना है।
२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे यह सवैया नही है।

सवैया

ए सजनी मनमोहन नागर आगर दौर करी मन माही।
सास के त्रास उसास न आवत कैसे सखी व्रजवास वसाही।
माखी भई मधु की तरुनी बरुनीन के बान बिधी कित जाही।
वीथिन डोलति है रसखानि रहै निज मन्दिर मे पल नाही ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—आगर=निधि। त्रास=भय। तरुनी=युवती। वरूनीन=पलके यहाँ वक्र-दृष्टि से तात्पर्य है। वीथिन=गलियो। मदिर=घर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सजनी ! कृष्ण अत्यन्त चतुर हैं। उन्होने मेरे मन मे दौड़ कर

ली है, अर्थात् मेरे मन मे समा गये है। सासु के डर से मुझे तो साँस भी नही आते। इस विषम स्थिति मे, तुम्ही बताओ, मैं व्रज मे किस प्रकार रह सकती हूँ ? अर्थात् व्रज मे रहना मेरे लिए एक विकट समस्या वन गया है। व्रज की सारी युवतियाँ शहद की मक्खियाँ वनी हुई है, क्योकि जिस प्रकार शहद की मक्खी अपने ही वनाये हुए शहद मे फंस जाती है, उसी प्रकार सारी व्रज-युवतियाँ अपने ही किये हुए प्रेम मे फँसी हुई है। वे सव कृष्ण की वक्र-दृष्टि के वाण से विंधी हुई है। उन्हे पता नही कि वे किधर जाये, अर्थात् कृष्ण के प्रेम में पडकर वे किंकर्त्तव्य-विमूढ वन गई है। वह आनन्द-सागर कृष्ण पलभर के लिए भी अपने घर नही ठहरता, वल्कि सदैव व्रज की गलियो मे घूमता रहता है।

सवैया

सखि गोधन गावत हो इक ग्वार लख्यौ वहि डार गहे वट की।
अलकावलि राजति भाल विसाल लसै वनमाल हिये टटकी।
जव ते वह तानि लगी रसखानि निवारै को या मग हौं भटकी।
लटकी लट मो दृग-मीननि सो वनसी जियवा नट की अटकी ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—इक ग्वार=एक ग्वाला, कृष्ण। वट=वृक्ष। अलकावलि=केशराशि। निवारै=रोकना। वनसी=वसी, मछली को पकडने का काँटा।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से कृष्ण के सौन्दर्य का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! गोचारण का गीत गाते हुए मैंने कृष्ण को उसी वृक्ष की डाल पकडकर खडे हुए देखा था, जिस वृक्ष की डाल को वे प्राय पकड़ा करते हे। उनके विशाल मस्तक पर केशरिया तथा हृदय पर वनमाल सुशोभित थी। जव से उस आनन्द-सागर कृष्ण की वसी की तान मैंने सुनी है, तव से कोई भी मुझे उसके प्रभाव से नही रोक सका है और मैं प्रत्येक मार्ग पर उसकी खोज के लिए भटकती फिर रही हूँ। उस नटनागर कृष्ण की लटकती हुई लटे मेरी आँख रूपी मछलियो के लिए मछलियो पकड़ने वाला काँटा वन गई है।

विशेष—अतिम पक्ति मे रूपक अलकार।

सवैया

गाइ सुहाइ न या पै कहूँ, न कहूँ यह मेरी गरी निकर्‌यौ है।
धीरसमीर कलिन्दी के तीर खर्‌यौ रटे आजु री डीठि पर्‌यौ है॥

जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढरि राँग सो आँग ढर्यौ है।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत टेरत आनि पर्यौ है ॥९०॥

शब्दार्थ—धीरसमीर=वृन्दावन के एक कुंज का नाम। कलिन्दी=यमुना। तीर=तट। डीठि पर्यौ है=दिखाई दिया है। ढरि राँग सो आँग ढर्यौ है=ढले हुए राँग की भाँति शरीर ढल गया है, अर्थात् शरीर बहुत ही शिथिल हो गया है। आनि पर्यौ है=हृदय मे बस गया है।

अर्थ—कृष्ण की सुन्दरता और उसके प्रति अपना आकर्षण व्यक्त करती हुई कोई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैंने कभी कृष्ण पर अपनी गाय का दूध भी नही निकलवाया, न कभी वह मेरी गली से होकर ही निकला है जिसके कारण इससे मेरा पहला परिचय हो। मुझे तो वहाँ आज ही यमुना के तट पर धीरसमीर कुंज मे खडा हुआ दिखाई दिया है। आनन्द के सागर उस कृष्ण को देखते ही प्रेमाकर्षण के कारण मेरा सारा शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया है। गायो को घेरता हुआ, मेरी ओर देखता हुआ, अपने वस्त्रो को सँभालता हुआ और पुकारता हुआ, अपनी इन रमणीय मुद्राओं के कारण वह मेरे हृदय मे बस गया है।

विशेष—१. प्रेमाकर्षण का वर्णन स्त्री-सुलभ रीति से हुआ है।
२. अन्तिम पक्तियो मे अनेक मुद्राओ के सकेत से घटना साकार हो गई है।
३ 'ढरि राँग सो आँग ढर्यौ है' मे उपमा अलकार है।

सवैया

खजन मीन सरोजन को मृग को मद गजन दीरघ नैना।
कंजन ते निकस्यौ मुसकात सु पान पर्यौ मुख अमृत बैना ॥
जाइ रटे मन प्रान बिलोचन कानन मे रुचि मानत चैना।
रसखानि कर्यौ घर मो हिय मे निसिवासर एक पलौ निकसे ना ॥९१॥

शब्दार्थ—सरोजन को=कमल को। मद=घमण्ड। गजन=चूर-चूर करना। कानन मे=बन मे। निसिवासर=रात-दिन।

अर्थ—एक गोपी की कृष्ण से भेट हो गई है। उसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि कृष्ण के विशाल नेत्र खजन, मीन, कमल और मृग के घमण्ड को भी चूर-चूर करने वाले है। ऐसे सुन्दर नेत्रो वाला कृष्ण कुंजो से मुसकराता हुआ बाहर आया। उसके अधरो पर मुख में

लगे हुए पान की लाली थी और उसकी वाणी अमृत के समान सुख देने वाली थी। उसे देखते ही मेरा मन और मेरे प्राण मेरे वश मे नही रहे। ये उसी वन मे वसने मे ही अपना आनन्द मानते है जहाँ कृष्ण से भेट हुई थी। रसखान कवि कहते हैं कि वह गोपी अपनी सखी से कहने लगी कि कृष्ण ने तो मेरे हृदय मे अपना घर ही कर लिया है और रात-दिन एक पल के लिए भी वह बाहर नही निकलता।

विशेष—तृतीय पक्ति मे विरोधाभास अलकार है।

दोहा

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटाँक नहिं देत।
यहै कहा पाटी पढी, दल को पीछो लेत॥ ६२॥

शब्दार्थ—मन=हृदय, चालीस सेर। छटाँक=कटाक्ष, सेर का सोलहवाँ भाग। पाटी चढि=सीखा। दल को पीछो=ले, लेना।

अर्थ—कृष्ण की चतुराई का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि हे कृष्ण तुम अपनी छवि दिखाकर मन को तो ले लेते हो, पर उसके बदले कटाक्ष नही देते, अर्थात् तुम दूसरो को ही अपने ऊपर रिझाते हो, स्वय नही रीझते। तुमने यह कहाँ से सीखा है कि केवल लेना ही जानते हो, देना नही।

द्वितीय अर्थ—प्रथम पक्ति का द्वितीय अर्थ यह होगा—

हे प्यारे! तुम वहका कर चालीस सेर तो ले लेते हो, पर उसके बदले मे सेर का सोलहवाँ भाग भी नही देते।

विशेष—श्लेष अलकार।

तुलना—१ 'यह कौन धौं पाटी पढे हौ लला मन लेहु पै देत छटाँक नही।'
—घनानन्द

२ 'साहु कहावत फिरत है, चित सरसाये चाव।
तेरे नैन दिवालिया, मन ले देत न पाव॥
—रसनिधि

दोहा

मो मन मानिक ले गयौ, चिते चोर नँदनद।
अब बेमन मैं क्या करूँ, परी फेर के फन्द॥ ६३॥

शब्दार्थ—बेमन=मन रहित, उदास। फेर=दुख। फद=बधन।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरे मन रूपी मोती को चित्तचोर कृष्ण चुरा कर ले गया है। अब मैं उदास हूँ। मैं तो वियोग दुख के बन्धन मे बंध गई हूँ।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलकार।

दोहा

नैन दलालनि चौहटे, मन मानिक पिय हाथ।
रसखाँ ढोल बजाइके, बेच्यौ हिय जिय साथ ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—दलालनि=दलालो ने। चौहाटे=चौक मे, बाजार मे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि इन नेत्र-रूपी दलालो ने मेरे हृदय को बीच बाजार मे बेच दिया, कृष्ण ने मेरे प्राणो को अपने वश मे कर लिया। इस प्रकार मैने ढोल बजाकर (प्रकट रूप से) अपने मन और प्राणो को बेच दिया है।

विशेष—१. रूपक अलकार।
२ द्वितीय पक्ति मे मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग।

सोरठा

प्रीतम नन्दकिशोर, जा दिन ते नेननि लग्यौ।
मन पावन चित चोर, पलक ओट नहिं सहि सकौ ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—जादिन ते नेननि लग्यौ=जिस दिन से देखा है। पलक ओट=निमिष भर के लिए भी।

अर्थ—कोई गोपी अपने प्रेम को अपनी सखी से प्रकट करती हुई कह रही है कि जिस दिन से मुझे प्रियतम कृष्ण दिखाई दिये है, उसी दिन से उस मन-भावन और चितचोर के वियोग को मैं एक पल के लिए भी सहन नहीं कर पाती।

बंक बिलोचन

सवैया

मैन मनोहर नैन बडे सखि सैननि ही मनु मेरो हर्यौ है।
गेह को काज तज्यौ रसखानि हियै ब्रजराजकुमार अर्यौ है ॥
आसन-वासन सास के आसन पाने न सासन रग पर्यौ है।
नेननि बक बिसाल की जोहनि मत्त महा मन मत्त करयौ है ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—मैन मनोहर=कामदेव के समान सुन्दर। आसन-वासन=आशाओं की वासना से। त्रासन=डर। सासन=साँसों में। रंग=प्रेम। मत्त=उन्मत्त, पागल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के नेत्र कामदेव के नेत्रों के समान सुन्दर और विशाल हैं। उन नेत्रों के संकेत से ही उसने मेरे मन को हर लिया है। रसखान कहते हैं कि तभी से कृष्ण हमारे हृदय में बस गया है और उसके प्रेम के कारण मैंने घर का काम करना भी छोड़ दिया है। आशाओं की वासनाएँ सासु के भय को भी नहीं मानतीं, क्योंकि मेरी साँसों में कृष्ण का प्रेम भरा हुआ है। कृष्ण ने अपने विशाल नेत्रों की तिरछी दृष्टि से मेरे मन को अत्यन्त पागल बना दिया है।

विशेष—तृतीय पंक्ति में अनुप्रास अलंकार।

सवैया

भटू सुन्दर स्याम सिरोमनि मोहन जोहन मैं चित चोरत है।
अवलोकन वक्र बिलोचन मैं ब्रजबालन के दृग जोरत है।।
रसखानि महावत रूप सलोने को मारग ते मन मोरत है।
ग्रह काज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज को तोरत है।।६९।।

शब्दार्थ—भटू=सखी। सिरोमनि=शिरोमणि। दृग जोरत है=आँखें मिलाता है, प्रेम करता है। सलोने को=सौन्दर्य का।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सुन्दर और शिरोमणि कृष्ण मन को मोहने वाला है और देखते ही मन को चुरा लेता है। वह अपने वक्र नेत्रों से देखते ही ब्रजबालाओं के नेत्रों को अपने नेत्रों से जोड़ लेता है। रसखान कहते हैं कि उसका सौन्दर्य रूपी महावत हमारे मन रूपी हाथी को अपने मार्ग से मोड़ देता है। वह ब्रजराज सभी ग्रह-कार्यों को, समाज को और कुल की लाज को तोड़ देता है।

विशेष—रूपक अलंकार।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—
'रसखान महावर रूप सलौने को मारग ते मन मोरत है।'

सवैया

आली लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना।
गठनि पै छलकै छवि कु डल मडित कुन्तल रूप की सैना।।
दीरघ वक विलोकनि की अवलोकनि चोरति चित्त को चैना।
मो रसखानि रट्यौ चित री मुसकाइ कहे अधरामृत बैना।।६८।।

शब्दार्थ—पियरो=पीला। उपरैना=वस्त्र। कु तल=केश, माला। सैना=सेना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वे श्याम कृष्ण बादल से सुन्दर है। उसी प्रकार उनके शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है। उनके कपोलो पर कु डलो की शोभा झलक रही है। सुन्दर केश रूप का समूह हैं; अथवा रूप की सेना सुन्दर भाले लिए हुए है। वे अपने दीर्घ नेत्रो की वक्र दृष्टि से देखते ही मन के चैन को चुरा लेते है। हे सखि! उस आनंद-सागर कृष्ण ने मुस्कराकर तथा अपने होठों से अमृत जैसे शब्दो को बोलकर मेरे मन को हर किया है।

सवैया

वह नद को साँवरो छैल अली अब तौ अति ही इतरान लग्यौ।
नित घाटन बाटन कु जन मै मोहि देखत ही नियरान लग्यौ।
रसखानि बखान कहा करियै तकि सैननि सो मुसकान लग्यौ।
तिरछी बरछी सम मारत है दृग-बान कमान सुकान लग्यौ।।६९।।

शब्दार्थ—छैला=छैला। अली=सखी। नियरान=समीप। सुकान लग्यो=कानो तक खीचकर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की आदतो का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह नद-पुत्र छैला कृष्ण अब तो बहुत अधिक इतराने लगा है। वह प्रतिदिन घाटो पर, मार्गो पर और कु जो मे मुझे देखकर मेरे समीप आने लगा है, अर्थात् जहाँ भी मुझे देखता है, मेरे पास चला आता है। रसखान कहते है कि मैं कहाँ तक उसकी आदतो का वर्णन करूँ। वह मेरी ओर देखकर मुस्कराने लगता है। वह टेढी दृष्टि को मुझ पर बरछी की भाँति मारता है और नेत्र-वाणो को कमान पर कानो तक खीच कर चलाता है।

विशेष—उपमा, रूपक अलकार।

सवैया

मोहन रूप छकी वन डोलति घूमति री तजि लाज विचारें।
वंक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारैं॥
रंगभरी मुख की मुसकान लखे सखी कौन जु देह सम्हारे।
ज्यौ अरविन्द हिमत-करी झकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारें॥७०॥

शब्दार्थ—वक विलोकनि=तिरछी दृष्टि। रंगभरी=प्रेम भरी। अरविन्द=कमल। हिमत-करी=हेमंत रूपी हाथी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मै कृष्ण के सौन्दर्य से उन्मत्त होकर तथा लोक-लाज को छोडकर वन-वन घूमती फिर रही हूँ। कृष्ण की तिरछी दृष्टि, विशाल नेत्रो की कोर सभी को अपने कटाक्षो से मार देती है। हे सखि! कृष्ण के मुख की प्रेमभरी मुस्कान को देखकर कौन ऐसी युवती है जो अपने-आप को सँभाल सकती है, अर्थात् सभी उस मुस्कान के वशीभूत हो जाती है और इस प्रकार व्यथित हो जाती है जैसे हेमत रूपी हाथी ने सकल को झटके से तोडकर तथा मरोडकर डाल दिया हो।

विशेष—रूपक और अर्थान्तरन्यास अलकार है।

पाठान्तर—इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

'मोहन रूप छकी वन डोलति घूमि गिरी तजि लाज विचारैं।
वंक विलोकनि नैन विसाल सु दीपति कोर कटाछन मारैं।
रंग भरे मुख की मुसकानि लखैं सखि को निज देह संभारैं।
ज्यो अरविन्दहि मत्त करी झकझोरि कै तोरि कै मोहि कै डारे॥'

सवैया

आज गई व्रजराज के मंदिर सुन्दर स्याम विलोक्यौ री माई।
सोइ उठ्यौ पलिका कल कचन बैठ्यौ महा मनहार कन्हाई॥
ए सजनी मुसकात लख्यौ रसखानि विलोकनि वक सुहाई।
मैं तव ते कुलकानि तजी सुवजी व्रजमडल माँह दुहाई॥७१॥

शब्दार्थ—मदिर=घर। पलिका=पलग। कचन=सोना। मनहार=मन को हरने वाला। विलोकनि वक=वक्र दृष्टि।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि। आज मैं कृष्ण के घर गई थी, वहां पर मैने सुन्दर

कृष्ण को देखा। वह मन को हरने वाला कृष्ण अपने सुन्दर सोने के पलंग पर सोकर बैठा था। हे सजनी ! उस आनन्द-सागर कृष्ण को मुस्कराता हुआ तथा उसकी सुन्दर वक्र-दृष्टि को देखकर मैंने तभी से कुल की मर्यादा को छोड दिया है, अर्थात् कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो गई हूँ। इसी कारण व्रजमण्डल मे दुहाई मच रही है, अर्थात् कृष्ण सभी के मन का हरन करने वाले है, उससे बचने के लिए सारी व्रज-युवतियाँ रक्षा के लिए पुकार रही है।

पाठान्तर—इस सवैया की चौथी पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'मै तृन लौ कुल कानि तजी सुवर्जा व्रजमडल माँहि दुहाई।'

सवैया

मोहन के मन की सब जानति जोहन के मोहि मग लियौ मन।
मोहन सुन्दर आनन चन्द ते कुजनि देख्यौ मै स्याम सिरोमन॥
ता दिन ते मेरे नैननि लाज तजी कुलकानि की डोलति हौ बन।
कैसी करौ रसखानि लगी जक री पकरी पिय के हित को पन॥७२॥

शब्दार्थ—जोहन के मग-दृष्टि के द्वारा। सिरोमन=शिरोमणि। जक=धुन। हित को=प्रेम का। पन=प्रण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! कृष्ण के मन की सारी बाते मै जानती हूँ। उसने दृष्टि के द्वारा मेरा मन अपने वश मे कर लिया है। मैने उस मोहने वाले और चन्द्रमा से सुन्दर मुख वाले श्याम शिरोमणि को जब से कुज मे देखा है, तभी से मेरे नेत्रो ने लोक-लज्जा और कुल की मर्यादा छोड दी है और मै उनकी खोज मे बन-बन घूम रही हूँ। रसखान कहते है कि हे सखि ! अब मै क्या करूँ मुझे उनसे मिलने की धुन लगी हुई है और मै उस प्रियतम के प्रेम के प्रण मे बँधी हुई हूँ।

विशेष—द्वितीय पक्ति मे प्रतीप अलकार।

सवैया

लोक की लाज तज्यौ तबहिं जब देख्यौ सखी व्रजचन्द सलौने।
खजन मीन सरोजन की छवि गजन नैन लला दिन होनो॥
हेर सम्हारि सकै रसखानि सो कौन तिया वह रूप सुठोनो।
भौंहन कमान सो जोहन को सर बेधत प्राननि नन्द को छोनो॥७३॥

शब्दार्थ—सलौनो=सुन्दर। सरोज=कमलो। गजन=खडित।

हेरै=देखकर । सुठोनो=सुन्दर । जोहन=देखना । छोनी=पुत्र ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा उसके प्रति अपने आकर्षण का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब से मैंने सुन्दर कृष्ण को देखा है, तभी से मैंने लोकलाज त्याग दी है, अर्थात् निर्भय होकर उसके प्रेम मे डूब गई हूँ । कृष्ण के दिन-दिन शोभा धारण करने वाले नेत्र ऐसे सुन्दर हैं कि वे अपनी सुन्दरता के कारण खजन, मछली और कमलो की शोभा को भी खडित कर देते है । ब्रज मे ऐसी कौन-सी स्त्री है जो उसकी शोभा देखकर स्वय को सम्भाल सके, अर्थात् उससे प्रेम न करने लगे ? उसकी भौह कमान के समान है, चितवन बाण के समान हैं । भौह-रूपी कमान पर चितवन-रूपी बाण चढाकर वह नन्द-पुत्र कृष्ण सभी के प्राणो को बींध देता है ।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे रूपक अलकार है ।

मुस्कान माधुरी

सवैया

वा मुख की मुसकानि भटू अँखियानि ते नेकु टरै नहिं टारी ।
जौ पलकै पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी ।।
दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ बजमारी ।।
प्रेम की बानि कि जोग कलानि गही रसखानि विचार विचारी ।।७४।।

शब्दार्थ—भटू=सखी । बजमारी=कठोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के मुख की मुस्कान मेरी आँखो से हटाने पर भी नही हटती, अर्थात् हर समय मुझे वह मुस्कान याद आती रहती है । यदि मेरी पलके क्षणभर के लिए लग जाती है, तो वह पल ही पल में पुकारो को पुकारने लगती है । दूसरी मुसीबत यह है कि इन आँखो ने कठोर नियम धारण कर लिया है । रसखान कहते है कि सोचने-समझने पर भी यह पता नही लगता कि यह प्रेम की आदत है अथवा भोग-विद्या ।

विशेष—सदेह अलकार ।

सवैया

कातिग क्वार के प्रात ही प्रात सरोज किते विकसात निहारे ।
डीठि परे रतनागर के दरके वहु दाड़िम विम्ब विचारे ।।

लाल सु जीव जिते रसखानि ते रगनि तोलनि मोलनि भारे।
राधिका श्रीमुरलीधर की मधुरी मुसकानि के ऊपर बारे ॥७५॥

शब्दार्थ—कातिग=कातिक। सरोज=कमल। विकसात=खिलते हुए। रतनागर=रत्नो के भण्डार। दरके=फटे हुए।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से श्रीकृष्ण और राधा की मुस्कान का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मैने कार्तिक और क्वार मास के प्रात:काल मे कितने ही खिलते हुए कमलो को देखा है। अनेक रत्नो के भण्डार देखे है तथा फटे हुए अनेक अनारो के बिम्वो पर भी विचार किया है, पर राधा और कृष्ण की मुस्कान की शोभा के आगे ये नगण्य ही सिद्ध हुए है। रसखान कहते है कि इस भूमडल पर जितने भी प्राणी है उनसे कृष्ण के प्रेम की तोल और मूल्य भारी ही है। ये सब राधा और कृष्ण की मधुर मुस्कान के ऊपर मै न्यौछावर करती हूँ।

विशेष—तृतीय पक्ति मे जीव का अर्थ बधूक भी किया जा सकता है।

सवैया

वक विलोचन है दुख-मोचन दीरघ रोचन रंग भरे है।
घूमत वारुनी पान किये जिमि झूमत आनन रूप ढरे है॥
गडनि पै झलकै छबि-कुडल नागरि-नैन बिलोकि भरे है।
बालनि के रसखानि हरे मन ईषद हास के पानि परे है॥७६॥

शब्दार्थ—रोचन=लाल। वारुनी=शराब। नागरि-नैन=युवतियो के नेत्र। विलोकि=देखकर। ईषद=थोडी-सी। पानि परे है=हाथो मे पड गए है, वशीभूत हो गए है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण के बॉके नेत्र दुख को दूर करने वाले है, विशाल है और लाल रग (प्रेम) से भरे हुए है। वे ऐसे प्रतीत होते है मानो वे मुख के सौन्दर्य की शराब पीकर झूम रहे हो। उनके कपोलो पर कुडलो की शोभा छलकती है जिसे देखकर व्रज की युवतियो के नेत्र उस शोभा मे उलझ जाते है। रसखान कहते है कि कृष्ण की थोड़ी-सी मुस्कराहट मे ही व्रज-बालाओ के मन उस मुस्कराहट के वशीभूत हो गए हैं, अर्थात् उस मुस्कान के कारण व्रज-वालाये कृष्ण के प्रेम मे बंध गई है।

कवित्त

अब ही खरिक गई गाइ के दुहाइबे कों,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनी यौ पानि की।
कोऊ कहै छरी कोऊ मौन परी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की॥
सास ब्रत ठानै नन्द बोलत सयाने धाइ,
दौरि-दौरि मानै-जानै खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसै मुरझानि पहिचानि कहूँ,
देखी मुसकानि वा अहीर रसखानि की॥७७॥

शब्दार्थ—पानि=हाथ! सयाने=जादू-टौना करने वाले। खोरि=मनौती।

अर्थ—कृष्ण को देखकर कोई गोपी अपनी सुधि-बुधि खो बैठी है। इसी का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! अभी-अभी वह गौशाला मे गाय का दूध निकालने के लिए गई थी, लेकिन वह अपने हाथ के दूधपात्र को फेंक कर पागल होकर वापिस आ गई है। उसकी अवस्था को देखकर कोई तो यह कहती है कि किसी ने इसको छल लिया है, कोई कहती है कि यह स्तब्ध हो गई है, कोई कहती है कि यह डर गई है, कोई कहती है कि यह मर गई है और कोई कहती है कि इसकी आँखो की ज्योति ही नष्ट हो गई है। उसको अच्छा करने के लिए सासु अनेक प्रकार के व्रतो को करने का सकल्प करती है, नन्द दौड-दौडकर सयानो को बोलकर लाती है और जाने-अनजाने देवताओ की मनौती करती है। सारी सखियाँ उसकी मूर्छा को पहिचान कर हँसती हैं और कहती है कि इसने आनन्द-सागर कृष्ण की कही मुस्कराहट को देख लिया है और यह उसी का प्रभाव है।

सवैया

मैन-मनोहर बैन बजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यौं दमकै चमकै झमकै दुति दामिनि की मनो स्याम घटा है।
ए सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढि फेरत लाल बटा है।
रसखानि महा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुलकानि कटा है॥७८॥

शब्दार्थ—मैन=कामदेव। पटा=वस्त्र। दामिनि=बिजली। घटा=

गेंद । कटा=नष्ट ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह कामदेव के समान मधुरवाणी बोलता है । उसके शरीर पर सुन्दर पीला वस्त्र सुशोभित है उसके शरीर की कांति इस प्रकार चमकती और झमकती है मानो काले बादल मे बिजली चमक रही हो । हे सजनी ! कृष्ण अटारी पर चढकर अपनी लाल गेंद को फेंकते है । रसखान कहते है कि उसके मुख का भारी सौन्दर्य और उसकी मुस्कान कुल लज्जा को नष्ट कर देती है अर्थात् उसकी मुस्कराहट को देखकर ब्रज ललनाये उसके प्रेम मे इतनी आबद्ध हो जाती हैं कि वे अपने कुल की मान-मर्यादा का भी ध्यान नही रखती ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलकार ।

सवैया

जा दिन ते मुसकानि चुभी चित ता दिन ते निकसी न निकारी ।
कुंडल लोल कपोल महा छवि कुंजन ते निकस्यौ सुखकारी ॥
हौ सखि आवत ही दगरे पग पैंड तजी रिझई बनवारी ।
रसखानि परी मुसकानि के पाननि कौन गनै कुलकानि बिचारी ॥७६॥

शब्दार्थ—लोल=चचल । दगरे=मार्ग मे । पैंड़=मार्ग । पाननि=हाथो मे ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस दिन से कृष्ण की मुस्कराहट मेरे मन मे चुभी है उस दिन से वह निकाले से नही निकलती । वह सुख देने वाला कृष्ण चचल कुण्डलो को अपने कपोलो पर हिलाते हुए तथा अत्यन्त सौन्दर्य धारण किए हुए कुंजो से निकला था । हे सखि ! उसके मार्ग पर आते ही अर्थात् उसे देखते ही मैंने अपना मार्ग छोड दिया और मै उस पर पूर्ण रूप से रीझ गई । अब तो मैं आनन्द-सागर कृष्ण की मुस्कान के हाथो मे पड गई हूँ । ऐसी स्थिति मे बेचारी कुल मर्यादा की गणना ही क्या है ? अर्थात् ऐसी स्थति मे कुल-मर्यादा नही रह सकती ।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है ।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'जा दिन ते मुसकान चुभी उर ता दिन ते जु भई बिजनारी ।'

सवैया

कानिनि दै अँगुरी रहिवो जबही मुरली धुनि मन्द बजैहै ।
मोहनीताननि सो रसखानि अटा चढि गोधन गैंहै तौ गैहे ॥
टेरि कहौ सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितौ समुझैहै ।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहे न जैहे न जैहे ॥८०॥

शब्दार्थ—काननि=कानो मे ।

अर्थ—कृष्ण के प्रति अपने अनुराग का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि जब कृष्ण की मन्द-मन्द मुरली बजती है, तब चाहे कोई मेरे कानो मे अँगुरी दे दे, अर्थात् मुझे वह तान न सुनने दे, चाहे कृष्ण अटारी पर चढकर मोहने वाली तानो के साथ गोचारण के गीत गायें; मैं सारे ब्रज के लोगो से पुकार-पुकार कर इस बात को कहती हूँ कि कल चाहे कोई कितना ही समझाये, परन्तु हे सखि ! मुझसे कृष्ण के मुख की मुस्कान सम्भाली नही जाती, अर्थात् मैं कृष्ण के प्रेम मे बहुत ही व्याकुल और उन्मत्त हो गई हूँ ।

विशेष—१. अन्तिम पक्ति मे 'न जैहै' का वीप्सा-युक्त प्रयोग गोपी की मनोव्यथा को द्विगुणित कर रहा है ।

१. 'काननि दै अँगुरी रहिवो' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है ।

तुलना—'अब ही सुधि भूली हौ मेरी भटू,
भमरो जनि मीठी सी तानन मे ।
कुल-कानि जो आपनी राखी चहौ,
दै रहौ अँगुरी दोउ कानन मे ।'

—निवाज

सवैया

आजु सखी नन्द-नन्दन की तकि ठाढौ हो कुंजन की परछाहीं ।
नैन बिसाल की जोहन को सब भेदि गयौ हियरा जिन माही ॥
घाइल घूमि सुमार गिरी रसखानि सम्हारति अँगनि जाही ।
एते पै वा मुसकानि की डौड़ी बजी ब्रज मैं अबला कित जाही ।८१॥

शब्दार्थ—हियरा जिय माही=हृदय के भी हृदय मे । घूमि=चक्कर

खाकर। सुमार=भयकर मार। डौरी=ढोल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से कहती है कि हे सखि! आज मैंने कृष्ण को कुंजो की छाया मे खडे हुए देखा था। उसके विशाल नेत्रो का दृष्टि-रूपी बाण मेरे हृदय के हृदय को भी छेद गया। उस बाण की भयकर मार से मै घायल होकर तथा चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पडी और मुझे अपने अगो को भी संभालने का होश नही रहा। इतनी सी घटना घटित होने पर ही उसकी मुस्कान का, हम दोनो के प्रेम का, ढोल समूचे व्रज मे बज गया। अब तुम्ही बताओ कि हम जैसी अबलाएँ इस ब्रज को छोडकर और कहाँ जाये।

दोहा

ए सजनी लोनो लला, लखौ नन्द के गेह।
चितयौ मृदु मुस्काइ कै, हरी सबै सुधि देह ॥८२॥

शब्दार्थ—लोनो=सुन्दर। लखौ=देखा। गेह=घर। हर=हरण कर ली, प्रसन्न हो गई।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सजनी! मैंने नन्द के घर मे सुन्दर कृष्ण को देखा। उसने जब मधुर मुस्कान के साथ मेरी ओर देखा तो उसने मेरे शरीर की सारी सुधि का हरण कर लिया; अथवा मेरा रोम-रोम प्रसन्नता से खिल उठा।

विशेष—अन्तिम चरण मे श्लेष अलकार है।

कृष्ण-सौन्दर्य

दोहा

जोहन नन्दकुमार को, गई नन्द के गेह।
मोहि देखि मुसकाइ कै, बरस्यौ मेह सनेह ॥८३॥

शब्दार्थ—जोहन=देखने के लिए। गेह=घर। सनेह=प्रेम।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण को देखने के लिए मै नन्द के घर गई थी। मुझे देखकर कृष्ण मुस्करा दिया। उसकी मुस्कराहट से प्रेम का मेह बरसा! अर्थात् मै उसके प्रेम मे आबद्ध हो गई।

विशेष—रूपक अलकार।

सवैया

मोरपखा सिर कानम कुण्डल कुंतल सो छवि गंडनि छाई ।
वंक विसाल रसाल विलोचन है दुखमोचन मोहन माई ।
आली नवीन महा घन सो तन पीट घटा ज्यौ पटा बनि आई ।
हौ रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगौरी सी लाई ।।८४।।

शब्दार्थ—रसाल=आनन्द देने वाली । पटा=वस्त्र । टोना=जादू । ठगौरी= ठग विद्या ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के सिर पर मोरपखो का मुकुट और कानो मे कुण्डल सुशोभित है । उनके केशो की शोभा उनके कपोलो पर बिखरी हुई है । उनकी वक्र दृष्टि आनन्द देने वाली और विशाल है । वह दुख को दूर करने वाली तथा मन को मोहने वाली है । हे सखि ! उनका श्याम शरीर नवीन विशाल बादल के समान है जिस पर पीले वस्त्र की शोभा बहुत ही प्रभावशाली है । रसखान कहते है कि मैं उनकी शोभा को देखकर स्तब्ध-सी रह गई और उसने मेरे ऊपर कुछ जादू-सा करके मुझे ठग लिया ।

विशेष—तृतीय पक्ति मे उपमा अलकार है ।

सवैया

जा दिन ते वह नन्द को छोहरा या वन धेनु चराइ गयौ है ।
मोहिनी ताननि गोधन गावत वेनु बजाइ रिझाइ गयौ है ।
वा दिन सो कछु टोना सो कै रसखानि हिये मैं समाइ गयौ है ।
कोऊ न काहू की कानि करै सिगरो ब्रज वीर ! विकाइ गयौ है ।।८५।।

शब्दार्थ—छोहरा=पुत्र । गोधन=गोचारण के गीत । टोना=जादू । कानि करै=लज्जा करती है । वीर=सखी ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जिस दिन से वह नन्द-पुत्र कृष्ण इस वन मे गाये चरा कर गया है, मधुर तानो के साथ वशी वजाकर तथा गोचारण के गीत गाकर रिझा गया है, उस दिन से कुछ जादू-सा करके वह आनन्द-सागर कृष्ण हृदय मे समा गया है । इसलिए यहाँ पर कोई स्त्री भी किसी की लज्जा नही करती । वास्तविकता तो यह है कि सारा व्रज ही उसके हाथों विक गया है; अर्थात् ब्रज के सब नर-नारी पूर्ण-रूप से कृष्ण के वश मे हो गये हैं, उसे प्रेम करने लगे हैं ।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'ऐ सजनी वह नन्द को साँवरो या वन धेनु चराइ गयौ है।'

सवैया

आयौ हुतौ नियरै रसखानि कहा कहौ तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज मे सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेति बलैया।
कोऊ न काहु की कानि करै कछु चेटक सो जु कियौ जदुरैया।
गाइ गौ तान जमाइ गौ नेह रिझाइ गौ प्रान चराइ गौ गैया ॥८५॥

शब्दार्थ—आयौ हुतौ=आया था। रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण। ठया=स्थान। सिगरी=सब। बनिता=स्त्रियाँ। कानि करै=लज्जा करती है। चेटक=जादू। जदुरैया—कृष्ण। नेह=स्नेह, प्रेम।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! आज आनन्द-सागर कृष्ण पास आया था। क्या कहती हो कि तुम उस स्थान पर नही गई। इस ब्रज मे सारी स्त्रियाँ कृष्ण के ऊपर अपने प्राणो को न्यौछावर करती है और उसकी बलैया लेती है। यहाँ पर सभी कृष्ण के प्रेम मे इतनी उन्मत्त है कि कोई किसी की लज्जा नही करती। इस प्रकार का कुछ जादू-सा कृष्ण ने सबके ऊपर कर दिया है। वह कृष्ण तान बजाकर, हृदय मे प्रेम उत्पन्न करके, प्राणो को रिझाकर और गायो को चराकर चला गया।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे विविध भावो की सुन्दर योजना है।

सवैया

कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रग-भीनी।
तीन सुनी जिनही तिनही तबही तित साज बिदा करि दीनी।
घूमै घरी घरी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या ब्रज-मण्डल मे रसखानि सु कौन भटू जू लटू नहि कीनी ॥८७॥

शब्दार्थ—ठगौरी भरी=जादू से भरी हुई। रँग-भीनी=प्रेम से पूर्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! न जाने कृष्ण ने किस जादू से भरी हुई तथा प्रेम से परिपूर्ण बाँसुरी बजाई कि जिस भी गोपी ने उसे सुना, उसने भी उसी समय अपनी लाज को त्याग दिया, अर्थात् वह लाज त्याग कर अपने घर से बाहर निकल पड़ी। हे सुन्दर तथा प्रवीण सखि! तब से सभी

गोपियाँ प्रत्येक समय नन्द के दरवाजे का चक्कर काटने लगीं। हे सखि! इस ब्रज मे कोई भी ऐसी युवती नही है जिसे आनन्द-सागर कृष्ण ने अपने प्रेम के वश मे नही कर लिया है।

विशेष—अन्तिम पंक्ति मे 'लट्टू नहीं' कीनी मुहावरे का भावमय प्रयोग है।

तुलना—१. किती न गोकुल कुल-वधू, किहि न काहि सिख दीन।
कौनै तजी न कुल गली, ह्वै मुरली सुर-लीन॥'
—बिहारी

२ 'सखि मोही न मोहन को मुख देखि,
सु ऐसी धौ गोकुल को कुल की।'
—अज्ञ कवि

सवैया

बाँकी धरै कलगी सिर ऊपर बाँसुरी-तान कटै रस बीर के।
कुण्डल कान लसै रसखानि विलोकन तीर अनंग तुनीर के।
डारि ठगौरी गयो चित चोरि लिए है सबै सुख सोखि सरीर के।
जात चलावन मो अवला यह कौन कला है भला वे अहीर के॥८८॥

शब्दार्थ—कलगी—मुकुट। अनंग=कामदेव। सोखि=सुखाना।

अर्थ—कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि वह अपने सिर पर सुन्दर मोर-मुकुट धारण किये हुए है, बाँसुरी मे वह आनन्द से भरी हुई तान बजाता है। उसके कानो मे कुण्डल शोभायमान है जिन्हे देखकर कामदेव के तूणीर के बाणो-जैसा प्रभाव पडता है, अर्थात् मन काम-वासना के वशीभूत हो जाता है। ऐसा कृष्ण मेरे ऊपर जादू डालकर मेरा मन चुरा कर ले गया है और उसने मेरे शरीर के सारे सुखो को नष्ट कर दिया है। फिर वह कृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे अहीर के पुत्र! इसमे तुम्हारी कौनसी वीरता है, जो तुम मुझ अबला पर काम-बाण चलाते हो।

विशेष—१. 'वे' शब्द का प्रयोग अत्यधिक आत्मीयता का सूचक है।
२. 'अबला' शब्द का सार्थक प्रयोग है, अतः परिकर अलंकार है।

सवैया

कौन की नागरि रूपकी आगरि जाति लिएँ सँग कौन की बेटी ।
जाको लसै मुख चद-समान सु कोमल अँगनि रूप-लपेटी ॥
लाल रहौ चुप लागि है डीठि सु जाके कहूँ उर बात न मेरी ।
टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख-पेटी ॥ ८९ ॥

शब्दार्थ—आगरि=भडार । लागि है डीठि=दृष्टि लग जाना । बात=प्रणय करना । टटकार=तुरन्त, तत्काल । कारिख-पेटी=कालिख का सन्दूक ।

अर्थ—जाती हुई राधा को देखकर कृष्ण एक गोपी से पूछते है कि यह युवती जो सौन्दर्य का भंडार है, जिसका मुख चन्द्रमा के समान सुशोभित है, सम्पूर्ण कोमल अगो मे छवि लिपटी हुई है, किसकी स्त्री है, ? किसके साथ जा रही है ? किसकी पुत्री है ? यह सुनकर गोपी कहती है कि हे लाल ! चुप रहो । इसके हृदय को अभी तक प्रणय की हवा नही लगी है, अतः मुझे डर है, कि कही तुम्हारी दृष्टि इसे न लगा जाये । रसखान कवि कहते है कि उसे टोकते ही वह तत्काल रुक गई और भय से इतनी स्याह पड गई मानो वह कालिख की सन्दूक बन गई हो ।

विशेष—उपमा, उत्प्रेक्षा अलकार ।

सवैया

मकराकृत कुंडल गुंज की माल के लाल लसै पग पाँवरिया ।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयौ भावती भाँवरिया ॥
रसखानि विलोकत ही सिगरी भईं बावरिया ब्रज-डाँवरिया ।
सजनी इहिँ गोकुल मैं विष सो बगरायौ हे नद के साँवरिया ॥ ९० ॥

शब्दार्थ—मकराकृत=मकरकी आकृति वाले । पाँवरिया=जूती । मिस=बहाने से । भावतो=प्रिय । भावती=सुहावनी । ब्रज—डाँकरिया=ब्रज—बलाएँ । बगरायौ है=बिखेर दिया है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के कानों से मकर की आकृति वाले कुंडल गले मे गुँजो की माला और पैरों मे जूतियाँ सुशोभित थी । वह प्रिय बछडो को चराने के बहाने से सुहावनी भाँवर दे गया। रसखान कहते हैं कि उसे देखते ही सारी ब्रज-बालाए पागल होगई । हे सजनी ! ऐसा प्रतीत होता है कि नद कुमार कृष्ण इस गोकुल मे विप बिखेर गया

है, जिसके कारण सभी व्रज-वालाएँ व्याकुल है।

विशेष—हेतूत्प्रेक्षा अलकार।

रूप-प्रभाव

सवैया

नवरग अनग भरी छवि सौ वह मूरति आँखि गडी ही रहै।
बतिया मन की मन ही मैं रहै घतिया उर बीच अडी ही रहै॥
तवहूँ रसखानि सुजान अली नलिनी दल वूँद पडी ही रहै॥
जिय की नहिँ जानत हौ सजनी रजनी अँसुवान लडी ही रहै॥ ९१॥

शब्दार्थ—नवरग=यौवन। अनग=कामदेव। घतिया=प्रेम की घाते। रजनी=रात।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को प्रकट हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण का यौवन कामदेव की शोभा से भरा हुआ है; अर्थात् उनका रूप अत्यन्त मन मोहक है। उनकी यह मन मोहक मूर्ति सदैव आँखो मे समाई रहती है। उन्होने जो मुजसे प्रेम भरी वाते की थी, वे मन-ही मन रह गई है; अर्थात् मैं किसी से उन्हे कह नही पाती। प्रेम की घाते हृदय के बीच अडी हुई है। रसखान कहते है कि हे सखि! फिर भी नलिनी के समूह पर वूदे पडी रहती है। हे सजनी! मेरे मन पर क्या बीत रही हैं, इसे कोई नही जानता। मेरी आँखो मे सारी रात आँसुओ की लडी रहती है, अर्थात मैं रातभर कृष्ण को स्मरण करके हरती रहती हूँ।

विशेष—१ रूप-प्रभाव का सजीव वर्णन है।
२ वियोग-वर्णन परस्परामुक्त है।

सवैया

मैन मनोहर ही दुख ददन है सूख कदन नद को नदा।
वक विलोचन की अवलोकनि है दुखयोजन प्रेम को फदा॥
जा को लखै मुख रूप अनूपम होत पराजय कोटिक चदा।
हौ रसखानि विकाइ गई उन मोल लई सजनी सुखवन्दा॥ ९२॥

शदार्थ—मेन=कामदेव। दुखो को दूर करने वाले। सुख कदन=सुख देने वाले। नद को नदा=नन्द पुत्र कृष्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा और तज्जन्य प्रभाव

का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह नदपुत्र कष्ण कामदेव से भी अाधिक मनोहर है, दुखो को दूर करने वाला है, सुख देने वाला है । उसका वक्र दृष्टि से देखना दुखो को दूर करके प्रेम के फदे मे बाँध लेता है । कृष्ण का मुख इतना सुन्दर है कि उथे देख कर करोड़ो चन्द्रमा पराजित हो जाते है ; अर्थात् उसके मुख की शोभा करोडो चन्द्रमाओ की शोभा से भी बढकर है। हे सजनी ! मैं तो सुख देन वाले कष्ण ने मोल ले ली हूँ और मै उनके हाथों मे बिक भी गई हूँ । अर्थात् कष्ण के प्रति अनुरक्त हो गई हूँ ।

सवैया

सोहत है चँदवा सिर मोर के तैसिय सुन्दर पाग कसी है ।
तैसिय गोरज भाल विराजति जैसी हिये वनमाल लसी है ।।
रसखानि विलोकत बौरी भई दृगमू दि कै ग्वालि पुकारि हसी है ।
खोलि री नैंननि, खोलौ कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है ।। ६३ ।।

शब्दार्थ—गोरज=गोओ के द्वारा उडाई गई धूल । लसी है=सुशोभित है । बौरी=पागल ।

अर्थ —कोई गोपी कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस प्रकार कृष्ण के सिर पर मोर-मुकुट सुशोभित है, वैसे ही उनके सिर पर सुन्दर पगडी भी सुशोभित है । वैसे ही उनके माथे पर गोरज तथा हृदय पर बनमाल शोभा प्राप्त कर रही है । हे सखि ! मैं तो उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर पागल ही हो गई । यह कहकर वह गोपी अपने नेत्रो को बन्द कर तथा करुण भाव को प्रकट करने वाले शब्दो का उच्चारण करके हसी पडी । इस घटना को देखकर उसकी सखी ने कहा—अरी ! आँखें तो खोल । उसने उत्तर दिया—मै आँखे नही खोल सकती, क्योकि उस कृष्ण की सुन्दर मूर्ति मेरी आँखो मे ही बसी हुई है । यदि आँखे खोल दी तो डर लगता है कि कहीं वे उनमे से निकल न जाये ।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे गोपी नेन नही खोलती । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि स्त्री यह नही चाहती कि जिससे वह प्रेम करती है, उसे अन्य स्त्री भी प्रेम करे । उसे विश्वास है कि यदि उसकी आँखो मे बसी हुई कृष्ण की छवि को उसकी सखी ने देख लिया तो वह अवश्य उनसे प्रेम

करने लगेगी । इसीलिए वह वह अपनी आँखो को नही खोलती ।

सवैया

सुनि री ! पिय मोहन की वतियाँ अति ढीठ भयौ नहि कानि करै ।
निसि वासर औसर देत नही छिनही छिन द्वार ही आनि अरै ॥
निकसौ मति नागरि डौडी वजी व्रज मडल मैं यह कौन भरै ।
अव रूप की दौर परी रसखानि रहै तिय कोऊ न माँझ घरै ॥९४॥

शब्दार्थ—पिय=प्रिय । ढीठ=धृष्ट । कानि=लज्जा । निसि वासर=रात-दिन । रौर=शोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सुनो, कृष्ण की वाते अत्यन्त प्रिय होती है, पर वह बहुत धृष्ट है और किसी भी प्रकार की लज्जा नही करता । वह मुझे कभी भी अवसर नही देता, बल्कि रात-दिन प्रत्येक क्षण मेरे द्वार पर आकर अड़ जाता है । हे नारियो ! घर से वाहर मत निकलो, क्योकि समूचे व्रज मे कृष्ण की धृष्टता का ढोल वज रहा है, अत व्रज मे नारियो को अपने दिन काटने कठिन हो रहे है । रसखान कहते है कि अव तो सारे व्रज मे कृष्ण के रूप का शोर मचा हुआ है, इसीलिए सारी स्त्रियाँ उसे देखने को इतनी उत्सुक रहती है कि कोई भी अपने घर मे नही ठहरती ।

सवैया

रग भर्‌यौ मुसकात लला निकस्यौ कल कुन्जन ते सुखदाई ।
मै तवही निकसी घर ते तकि नैन विसाल की चोट चलाई ॥
घूमि गिरी रसखानि तवै हरिनी जिमि वान लगै गिरी जाई ।
टूटि गयौ घर को सव वघन छूटिगौ आरज लाज वडाई ॥ ९५ ॥

शब्दार्थ—रग=प्रेम । कल=सुन्दर । आरज-लाज=आर्य धर्म की लज्जा ।

अर्थ—कृष्ण से भेट होने पर गोपी की क्या दशा हुई, इसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! जव प्रेम से मुसकराता हुआ कृष्ण सुख देने वाले सुन्दर कुंजन मे बाहर निकला तो सयोग से मैं भी तभी अपने घर से निकली । मुझे देख कर उसने मुझ पर अपने विशाल नेत्रो से चोट चलाई । मै उस चोट को सहन न कर सकी और जिस प्रकार वाण लगने पर हिरनी चक्कर खा कर पृथ्वी पर गिर पडती है, उसी प्रकार मै भी अपनी

सुधि-बुधि भूल कर पृथ्वी पर गिर पडी। घर की मर्यादा के सारे बंधन टूट गये और आर्य धर्म की लज्जा का बडप्पन भी छूट गया; अर्थात् मैं अपने वश की मर्यादा और नारी-सुलभ लज्जा को त्याग कर कृष्ण की ओर देखती रही।

सवैया

खंजन नैन फँदे पिंजरा छबि नाहि रहै थिर कैसे हुँ भाई।
छूटि गई कुलकानि सखी रसखानि लखी मुसकानि सुहाई॥
चित्र कढे से रहे मेरे नैन न बैन कढ़ै मुख दीनी दुहाई।
कैसी करौ कित जाऊँ अली सब बोलि उठै यह बावरी आई॥ ९६॥

शब्दार्थ—खजन नैन=खंजन रूपी नेत्र। थिर—स्थिर। कुलकानि=कुल की मर्यादा। कढे से=अकित से।

अर्थ—कोई गोपी अपनी प्रेमावस्था का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि मेरे खन्जन रूपी नेत्र कृष्ण के शोभा रूपी पिजडे मे बन्दी हो गये हैं। हे सखि! ये किसी भी प्रकार स्थिर नही रहते। बार-बार बरबस कृष्ण की छवि को देखने की लालसा मे उसी की ओर दौडते रहते है। हे सखि! जब से मैने आनन्द सागर कृष्ण की मनोहर मुसकराहट देखी है, तबसे मैंने अपने कुल की मर्यादा को भी छोड दिया है। मेरे ये नेत्र, सदैव अपलक रहने के कारण, चित्र मे अकित से बने रहते है। प्रयत्न करने पर भी मुख कोई शब्द नही निकलता। हे सखि! तुम्ही बताओ कि मैं क्या करूँ, किधर जाऊँ, क्योकि मै जिधर जाती हूँ उसी ओर लोग कहते है कि वह पगली आ गई है।

विशेष—प्रेमावस्था का सजीव एवं मार्मिक चित्रण है।

कुंज लीला

सवैया

कु जगली मैं अली निकसी तहाँ साँकरे ढोटा कियौ भटभेरो।
माई री वा मुख की मुसकान गयौ मन बूढि फिरै नहि फेरो॥
डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डारयौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करौ अब क्यो निकसो रसखानि पर्‌यौ तन रूप को घेरो॥ ९७॥

शब्दार्थ—अली=सखी। ढोटा=कृष्ण से तात्पर्य है। भटभेरो=मुठभेड़

अचानक मिलना। वूडि=डूबना। डोरि लियौ=वाँध लिया।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से मिल कर गई है। उसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! मैं आज प्रातः जव कुंज गली से निकली तो अचानक कृष्ण से भेंट हो गई। हे सखि! कृष्ण के मुख की मुसकान मे मेरा मन इतना अधिक डूब गया कि वह उस मुसकान की छवि पर से हटाने पर भी नही हटा। उस मुसकान ने मेरे नयनो को वाध लिया, चित्त को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फन्दा डाल दिया। तुम्ही वताओ, अव मैं क्या करूँ। मेरे चित्त मे वसा हुआ कृष्ण कैसे वाहर निकल सकता है? उस आनन्द सागर कृष्ण के सौन्दर्य ने मेरे सारे शरीर को घेर लिया है।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण के साथ हुआ मिलन और तज्जन्य सुख भुलाने से भी नही भुलाया जा रहा है।

सोरठा

देख्यौ रूप अपार, मोहन सुन्दर स्याम को।
वह व्रजराज कुमार, हिय जिय नैननि मे वस्यौ ॥ ९८ ॥

शब्दार्थ—मोहन=मोहने वाला। हिय-हृदय। जिय=मन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि मैंने मोहने वाले सुन्दर कृष्ण का जव से अपार रूप देखा है, तवसे वह व्रजराज कुमार मेरे हृदय मे, मन मे और आँखो मे वसा हुआ है।

नटखट कृष्ण

कवित्त

अन्त ते न आयौ याही गाँवरे को जायौ,
माई वाप रे जिवायौ प्याइ दूध वारे वारे को।
सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे द्वारे को।
मैया की सौं सोच कछू मटकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर चीरि डारे को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी माँझ,
नगर हमारे ग्वाल वगर हमारे को ॥ ९९ ॥

शब्दार्थ—अन्त मे=और किसी जगह से। गॉवरे को=गॉव का ही। लोचन=ऑख। सौ—सौगन्ध। चीरि=फाडना। वगर=घर।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कह रही है कि हे कृष्ण! तुम और किसी जगह से नही आये हो। तुम्हारा जन्म हमारे इसी गॉव मे हुआ है। बचपन मे हमने तुम्हे दूध पिला-पिला कर मॉ बाप की तरह पाला है। उसी पहिचान और मर्यादा को तुम छोडना चाहते हो, तुम बचपन मे द्वार-द्वार पर नाचा करते थे और अब हमारे सामने अपनी आखे नचा रहे हो। तुम्हे तुम्हारी मॉ की सौगन्ध है, यदि तुमने हमारी मटकी उतारी तो। हमे न तो अपनी इस मटकी के उतर जाने का सोच है, न गोरस के निकल जाने का और न अपने वस्त्रो के फट जाने का। हमे केवल यही दुख है कि तुम हमारे ही गॉव के और हमारे ही घर के होकर हमारा रास्ता रोक लेते हो और हमे तंग करते हो।

पाठान्तर—इस कवित्त की तीसरी पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'सो तो रसखान पहिचानं हू न मानत है'

सवैया

एक ते एक लौ कानन मै रहे ढीठ सखा सब लीने कन्हाई।
आवत ही हौ कहॉ लौ कहौ कोउ कैसे सहै अति की अधिकाई॥
खायौ दही मेरो भाजन फोर्यौ न छोडत चीर दिवाएँ दुहाई।
सौह जसोमति की रसखानि ते भागे मरू करि छूटन पाई॥ १००॥

शब्दार्थ—एक तें एक लौ=एक से एक बढकर। ढीठ=शरारती। सौह=सौगन्ध। मरु करि=कठिनता से।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की दधिलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण एक से एक बढ कर शरारती साथियो को लेकर बन मे रहता है। उनकी शरारत की बाते कहॉ तक कहूँ, और कोई किस प्रकार उनकी शरारत की अति को सहन कर सकती है कि किसी भी गोपी के आते ही वे उसे तंग करने लगते है। उन्होने मेरी दही खा ली, मेरा मटका फोड दिया और अनेक प्रकार की दुहाई देने पर भी मेरे वस्त्रो को पकडे रहा। रसखान कहते है कि जब मैने उसे यशोदा जी की सौगन्ध खिलाई तो वे भागे और मै बडी कठिनता से उनसे छूट पाई।

सवैया

आज महूँ दधि वेचन जात ही मोहन रोकि लियौ मग आयौ ।
माँगत दान मे आन लियौ सु कियौ निलजी रस जोवन खायौ ।।
काह कहूँ सिगरी री विथा रसखानि लियौ हसि के मुसकायौ ।
पाले परी मैं अकेली लली, लला लाज लियौ सु कियौ मनभायौ ।।१०१।

शब्दार्थ—निलजी=लज्जा-रहित । सिगरी=सारी । विथा=व्यथा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! आज जब मैं दही वेचने के लिए जा रही थी तो कृष्ण ने आकर मेरा रास्ता रोक लिया । उसने दही का दान मागा, किन्तु उस दान के बदले मे उसने मुझे लज्जा-रहित करके यौवन रस का आनन्द लिया । हे सखि ! मैं अपनी समस्त व्यथा का क्या वर्णन करूँ, आनन्द सागर कृष्ण ने हँस-हँस कर मेरा यौवन दान लिया । मैं अकेली ही उसे मिल गई थी, अत मै कुछ कर भी नही सकती थी । उसने मेरी लज्जा ले ली और जो चाहा वही किया ।

विशेष—१ भावो की सम्मानित अभिव्यक्ति प्रशंसनीय है ।
२. अंतिम पक्ति मे अनुप्रास अलंकार है ।

सवैया

पहले दधि लै गई गोकुल मे चख चारि भए नटनागर पै ।
रसखानि करी उनि मैनमई कहै दान दे दान खरे अर पै ।।
नख तें सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भाँति कँपे डर पै ।
मनौ दामिनि सावन के घन मे निकसे नही भीतर ही तरपै ।।१०२।।

शब्दार्थ—चाव=आँख । मैनमई=प्रेम से परिपूर्ण । दामिनी=विजली ।

अर्थ—दानलीला का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि पहले मैं गोकुल मे दही ले गई । वहाँ मुझे कृष्ण मिल गये जिनसे आँखे चार हुईं । उन्होने मुझे प्रेम परिपूर्ण कर दिया और दही के दान के लिए अडकर खडे हो गये । मेरी सारी सखियाँ सिर से पैर तक अपने नीले वस्त्र को लपेटे हुए डर से काँप रही थीं । वस्त्रो मे लिपटा हुआ उनका सौन्दर्य ऐसा प्रतीत होता था, मानो सावन मे उमडे हुए वादल मे से विजली की द्युति न निकलने के कारण अन्दर ही अन्दर तडप रही हो ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलकार ।

पाठान्तर—

पहिले दधि लै गई गोकुल मे चख चार भए नटनागर पैं।
रसखान करी उन चातुरता कहै दान दे दान खरे अर पैं॥
नख ते सिख लौ पट नील लपेटि लली सब भाँति कँपे डर पैं।
मनु दामिनी सांवन के घन मे निकसे नहि भीतर ही तरपैं॥

सवैया

दानी नए भए माँगत दान सुने जु ँ कंस तौ बाँधे न जैहौ।
रोकत हौ बन मे रसखानि पसारत हाथ महा दुख पैहौ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै पुनि रेहौ।
जै है जो भूषन काहू तिया को तौ मोल छलाके लला न बिकैहौ। १०३॥

शब्दार्थ—दानी=कर वसूल करने वाले। सुने जु पे कस तौ बाँधे न जैहौ=यदि कस सुन लेगा तो क्या बन्दी नही बना लिए जाओगे ? अर्थात् यह जानकर कि तुम उसकी प्रजा को तग करते हो, कंस तुम्हे बन्दी बना लेगा। छरा=गुंजा की माला। छला=छल्ला, अगूठी।

अर्थ—दही के लिए जबरदस्ती करते हुए कृष्ण को भय दिखाती हुई कोई गोपी कहती है कि हे कृष्ण ! यह सुनकर कि तुम नये कर वसूल करने वाले अपने आप ही बन गए हो, कस तुम्हे पकडवा कर बन्दी बना लेगा। तुम बन मे हमारा मार्ग रोककर हमारे सामने दही के लिए हाथ फैलाते हो, इस प्रकार की याचक वृत्ति से तुम्हे बहुत अधिक दुख भोगना पड़ेगा। इस छीना-झपटी मे यदि किसी गोपी की गुंज की माला टूट गई तो उसकी क्षति-पूर्ति के लिए तुम्हारे पास जो बछडा आदि धन है, वह सबका सब देना पड़ जायेगा। और यदि संयोगवश किसी गोपी का कोई आभूषण टूट गया तो उसके एक छल्ले के मूल्य मे ही तुम्हे बिक जाना पडेगा।

तुलना—'चेरी न तेरी न तेरे बबा की मै घेरी गली मे का पैर लडैहसौ।
जो तुम चाहत चाखन माखन सो तुम माखन नेकु न पैहौ।
कस के राज मे धूम नही बरि आई बबा की सौ बून्द न देहौ।
टूटैगौ हार हजार को तौ तुम नन्द जसोदा समेत बिकैहो॥

—अज्ञात

सवैया

छीर जौ चाहत चीर गहैं एजू लेउ न केतिक छीर अचैहो।
चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहो।
जानति हौ जिय की रसखानि सु काहे को एतिक बात बढ़ैहो।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्हजू नेकु न पैहौ ॥ १०४ ॥

शब्दार्थ—छीर=क्षीर, दूध। अचैहो=पीओगे। एतिक=उतनी। गोरस=दही। रस=आनन्द, इन्द्रिय, सुख। नेकुन=तनिक भी।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से कह रही है कि हे कृष्ण! तुम मेरा चीर पकड़कर जो दूध माँग रहे हो, तो लो। देखती हूँ तुम कितना दूध पी जाओगे। चाखने के बहाने से जो मक्खन तुम माँग रहे हो तो लो और जितना चाहो उतना खालो। लेकिन मैं तुम्हारे मन की बात जानती हूँ, इसलिए क्यो इतती बढ़ा रहे हो। तुम दही के बहाने से जो इन्द्रिय-सुख चाहते हो, वह तुम्हे तनिक भी नही मिलेगा।

तुलना—१. 'जो रस चाहो सो रस नाही गोरस पियहुँ अघाय।'

—सूरदास

२. 'गोरस के मिस डोलती, सो रस नेकु न देइ।'

—रहीम

३. 'गोरस चाहत फिरत हो, गोरस चाहत नाहिं।'

—विहारी

सवैया

लगर छैलहि गोकुल मैं मग रोकत संग सखा ढिग तै है।
जाहि न ताहि दिखावत आँखि सु कौन गई अब तोसो करे हैं।
हाँसी मे हार हट्यौ रसखानि जु जौ कहूँ नेकु तगा टुटि जै है।
एकहि मोती के मोल लला सिगरे ब्रज हाटहि हाट विकै हैं ॥ १०५ ॥

शब्दार्थ—लगर=प्रेमी। ढिग=पास। गई=परवाह, चिन्ता।

अर्थ—गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि यह सच है कि तुम प्रेमी और छैला बनकर गोकुल में हमारा रास्ता रोक लेते हो, क्योकि तुम्हारे पास तुम्हारे बहुत से साथी हैं, लेकिन हमे अपनी चालें दिखाने की कोई जरूरत नही है, क्योकि अब तुम्हारी परवाह कोई नही करता। हे आनन्द-सागर कृष्ण

तुमने हँसी-हँसी मे मेरा हार ले लिया है, लेकिन ध्यान रखो, यदि इसका जर सा भी धागा टूट गया तो सिर्फ इसके एक मोती के लिए तुम सारे ब्रज के बाजार मे बिकते फिरोगे।

सवैया

काहु को माखन चाखि गयौ अरु काहू को दूध दही ढरकायौ।
काहू को चीर लै रूख चढ्यौ अरु काहूको गुंजधरा छहरायौ।
मानै नही बरजे रसखानि सु जानियै राज इन्है घर आयौ।
आव री बूझै जसोमति सो यह छोहरा जायौ कि मेव मगायौ॥ १०६।

शब्दार्थ—ढरकायौ=विखेर दिया। गुंजछरा=गुंजो की माला। छहरायौ=तोड़ दी। बरजे=रोकने पर मेव=लूट मार करने वाला।

अर्थ—कृष्ण की शरारतो से तग आकर गोपियाँ परस्पर उपालम्भ देती हुई कहती है कि यह कृष्ण हमे बहुत तग कर रहा है। किसी का मक्खन छीनकर उसे खा लिया, किसी की दही विखेर दी और दूध बिखेर दिया। किसी का वस्त्र लेकर पेड पर चढ गया। किसी की गुंजो की माला तोड दी। रसखान कहते है कि रोकने पर भी यह अपनी आदतो से बाज नही आता। ऐसा जान पडता है कि इन्ही के घर का राज्य आ गया हो। हे सखियो! आओ, और यशोदा जी से यह चलकर मालूम करे कि तुमने यह पुत्र उत्पन्न किया है या लूटमार करने वाला मेव।

विशेष—कृष्ण जी विविध लीलाओ का भावपूर्ण वर्णन है।

मुरली प्रभाव

कवित्त

दूध दुह्यौ सीरो पर्यौ तातो, न जमायौ कर्यौ,
जामन दयौ सो धर्यौ धर्यौई खटाइगौ।
आन हाथ आन पाइ सबही के तब ही ते,
जब ही ते रसखानि ताननि सुनाइगौ।
ज्योही नर त्यौहो नारी तैसीयै तरुन वारी,
कहियै कहा री सब ब्रिज बिललाइ गौ।
ज्योही नर त्यौही नारी तैसीयै तरुन वारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइ गौ।
जानियै न माली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइ गौ कि विष बगराइ गौ॥१०६॥

शब्दार्थ—तातो=गर्म। जामन=दूध को जमाने के लिए दही का जो

हिस्सा दूध मे डाला जाता है, उसे जामन कहते हैं। पाइ=पाँव, चरण। रसखानि आनन्द-सागर कृष्ण। वारी=युवती। छोहरा= पुत्र। बगराइ= बिखेरना।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि! जब कृष्ण ने बाँसुरी बजाई तो ब्रज की सारी व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो गई। जो निकाला हुआ दूध गर्म था, वह ठंडा पड़ गया, इसीलिए वह जमाया न जा सका, क्योंकि बाँसुरी की धुनि को सुनकर दूध जमाने वाली गोपी दूध जमाना ही भूल गई। जिस गोपी ने दूध को जमाने के लिए उसमे जामन लगा दिया था, वह उसे उचित स्थान पैर रखना भूल गई, अत वह रक्खा-रक्खा ही खट्टा हो गया। जब से आनद-सागर कृष्ण ने बाँसुरी की मधुर ताने सुनाई है, तब से ब्रजवासियो के हाथ पेर और ही हो गये है, अर्थात् उनके हाथ-पैर चलते ही नही। जो दशा आदमियों की है, वही दशा स्त्रियो की है, वही युवको और युवतियो की है। हे सखि! मैं ब्रज की दुर्दशा का कहाँ तक वर्णन करूँ, बस इतना समझ लो कि सारा ब्रज ही व्याकुल हो गया। हे सखि! पता नही, यशोदा-पुत्र ने बाँसुरी बजाई थी या ब्रज मे विष बिखेरा था, जिसके कारण सारे ब्रज-वासियो की कर्मण्य शक्ति ही नष्ट हो गई।

विशेष—सदेह अलंकार।

तुलना—'आन कहै आन करै आन हाथ पाइ भई,
अनंग के अनख दही न सुधि तिय मे।
सीरो तान तातौ कर तातो जान सीरो करै,
दूध न जमायो जाइ नेह जम्यौ हिय मे।'
—केशव

कवित्त

जल की न घट भरै मग की न पग धरै,
घर की न कछु करै बैठी भर साँसु री।
एकै सुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।
कहै रसखानि सो सबै ब्रज-वनिता वधि,
बधिक कहाय हाय भई कुल हाँसु री।

करियै उपायै बास डारियै कटाय,
नाहिं उपजैगो बाँस नाहिं बाजे फेरि बाँसुरी ॥१०८॥

शब्दार्थ—घट=घड़ा। वधि=वध करके, मार करके।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के अपूर्व प्रभाव का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! कृष्ण ने जब बाँसुरी बजाई तो सारे ब्रज के काम बन्द हो गए। जो गोपियाँ यमुना नदी मे घुस कर पानी भरने वाली थी वे पानी मे खड़ी की खड़ी रह गई और अपना घडा न भर सकी। जो मार्ग मे आ रही थी, वे वही रुक गई, एक कदम भी आगे न रख सकी। जो घर मे थी, वे अपना सारा कार्य छोड़कर केवल लम्बे-लम्बे साँस भरने लगी। एक गोपी बाँसुरी की धुनि को सुनकर तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई, एक लोट-पोट हो गई, एक की आँखो से आँसू निकल आये। रसखान कहते है कि वह गोपी अपनी सखी से कहती ही गई कि कृष्ण तो सारी ब्रज-नारियो का वध करके बधिक बन गये और हम उसके प्रेम मे पड़कर अपने कुल की हँसी का कारण बन गई। अब तो यही उपाय करना चाहिए कि दुनिया के सारे बाँसो को कटवा डालो। इससे न तो बाँस रहेगा और न फिर बाँसुरी बनकर हमे व्यथित करेगी।

विशेष—१. कृष्ण की बाँसुरी का प्रभाव-वर्णन अत्यन्त भावपूर्ण है।

२. अतिम पक्ति मे लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है।

३. डा० भवानीशकर आशिक इस कवित्त को रसखानकृत नही मानते। अतः हमने इसे सदिग्ध छन्दो के अन्तर्गत भी रखा है।

सवैया

चद सो आनन मैन-मनोहर बैन मनोहर मोहत हौ मन।
बक बिलोकनि लोट भई रसखानि हियो हित दाहत हौ तन॥
मैं तव तै कुलकानि की मैड़ नखी जु सखी अब डोलत हो बन।
वेनु बजावत आवत है नित मेरी गली ब्रजराज को मौहन॥

शब्दार्थ—आनन=मुख। मैन=कामदेव। हित=प्रेम। कुल-कानि की मैंड=कुल की मर्यादा की सीमा।

अर्थ—बाँसुरी के प्रभाव से कृष्ण के प्रति उत्पन्न प्रेम की बात एक गोपी अपनी सखी को बताती हुई कह रही है कि हे सखि! चन्द्रमा के समान सुन्दर

मुख वाले, कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण के मधुर वचनो ने मेरा मन मोह लिया है। उसकी बाँकी चितवन को देखकर मैं सज्ञा शून्य हो गई। आनन्द-सागर कृष्ण का मेरे हृदय मे बसा हुआ प्रेम मेरे शरीर को जलाता है। मैंने तभी से कुल की मर्यादा की सीमा छोड दी है और अब कृष्ण को प्राप्त करने के लिए वन-वन डोल रही हूँ, क्योकि व्रज के मन को मोहने वाला व्रजराज कृष्ण बाँसुरी बजाता हुआ प्रतिदिन मेरी गली आता है।

विशेष—'चद सो आनन' मे उपमा और 'मैन मनोहर' मे रूपक अलकार है।

सवैया

बाँकी बिलोकनि रंगभरी रसखानि खरी मुसकानि सुहाई।
बोलत बोल अमीनिधि चैन महारस-ऐन सुनै सुखदाई॥
सजनी पुर-बीथिन मैं पिय-गोहन लागी फिरै जित ही तित धाई।
बाँसुरी टेरि सुनाइ अली अपनाइ लई व्रजराज कन्हाई॥११०॥

शब्दार्थ—बिलोकनि=दृष्टि। रगभरी=प्रेमपूर्ण। रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण की। खरी=सुन्दर। बोल=वचन। अमीनिधि=अमृत का भंडार। चैन=आनन्द। महारस-ऐन=अत्यन्त आनन्द का भडार। पुर-बीथिन मैं=नगर की गलियो मे। पिय-गोहन=कृष्ण के साथ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! उस कृष्ण की दृष्टि प्रेमपूर्ण है, वह आनद का सागर है, उसकी सुन्दर मुस्कान मन को मोहने वाली है। वह अमृत-भडार से युक्त वचनो को कहता है; अर्थात् उसकी वाणी का माधुर्य अमृत के समान परमानन्द प्रदान करने वाला है। उसकी मधुर वाणी अत्यन्त आनन्द का भंडार है, जिसे सुनने से सुख प्राप्त होता है। हे सजनी! नगर की गलियो मे समस्त व्रज बालाएँ कृष्ण के साथ-साथ लगी हुई है। वह जिधर भी जाता है, सभी गोपियाँ उधर ही दौडने लगती है। हे सखी! उस व्रजराज कृष्ण ने बाँसुरी की ध्वनि सुनाकर समस्त व्रज-बालाओ को अपने प्रेम के वशीभूत कर लिया है।

विशेष—अनुप्रास, यमक अलकार।

सवैया

डोरि लियौ मन मोरि लियो चित जोहि लियौ हित तोरि कै कानन।
कुंजनि ते निकस्यौ सजनी मुसकाइ कह्यौ वह सुन्दर आनन॥
हो रसखानि भई रसमत्त सखी सुनि के कल बाँसुरी कानन।
मत्त भई बन बीथिन डोलति मानति काहू की नेकु न आनन॥ १११॥

शब्दार्थ—डोरि लियौ=बाँध लिया। हित=प्रेम। कान=मर्यादा। आनन=मुख। कानन=बन। आनन=बाधाएँ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण ने मेरे मन को बाँध लिया है, चित्त को चुरा लिया है, मर्यादा तोडकर मुझसे प्रेम जोड लिया है। हे सजनी! वह अपने सुन्दर मुख पर मुस्कराहट लिए कुंजो मे से निकला। रसखान कहते है कि हे सखि बन मे उसकी मधुर बाँसुरी को सुनकर मैं रसमत्त हो गई। तभी से मै उन्मत्त होकर बन-बन और गली-गली घूमती फिर रही हूँ और किसी भी प्रकार की बाधाओ को नही मानती! अर्थात् अब मुझे किसी भी प्रकार की बाधा का डर नही रहा है।

सवैया

मेरो सुभाव चितैवे को माइ री लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन ते मोहि लागी ठगौरी सी लोग कहै कोई बावरी आई॥
यौ रसखानि घिर्यो सिगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियराई।
जौ कोउ चाहै भलौ अपनो तौ सनेह न काहू सो कीजियौ माई॥ ११२॥

शब्दार्थ—चितैवे को=देखने के लिए। निहारि के=देखकर। ठगौरी=जादू। जियराई=हृदय।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मेरा स्वभाव देखने के लिए, मुझे देखकर, कृष्ण ने अपनी वंशी बजाई। उसी दिन से मुझ पर जादू-सा चल गया है। लोग मुझे देखकर कहते है कि कोई पगली आ गई है, अर्थात् लोग मुझे पगली समझते है। रसखान कहते हैं कि इस प्रकार सारे ब्रज के निवासी मुझे घेर लेते है। मेरे मन की या तो कृष्ण जानते है या मैं स्वयं जानती हूँ। यदि इस जगत् मे कोई अपना भला चाहता है तो उसे कभी भी किसी से प्रेम नही करना चाहिए।

सवैया

मोहन की मुरली सुनिकै वह बौरि ह्वै आनि अटा चढि झाँकी ।
गोप बडेन की डीठि बचाइ कै डीठि सो डीठि मिली दुहुँ झाँकी ।।
देखत मोल भयौ अँखियान को को करै लाज कुटुम्ब पिता की ।
कैसे छुटाई छुटै अटकी रसखानि दुहूँ की बिलोकनि बाँकी ।। ११३ ।।

शब्दार्थ—बौरी ह्वै=पागल होकर । बिलोकनि बाँकी=वक्र चितवन ।

अर्थ—गोपी प्रेम का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि कृष्ण की मुरली की तान को सुन कर वह पागल होकर अटारी पर चढ़ कर नीचे की ओर झाँकी । अन्य लोगो की निगाह बचाकर उसने कृष्ण से निगाह मिलाई । दोनो की आँखे मिली । आँखे मिलते ही दोनो मे प्रेम हो गया और उन्होने कुल की तथा पिता की लाज को तिलाजलि दे दी । रसखान कवि कहते है कि उन दोनो की परस्पर मिली हुई बाँकी चितवन किस प्रकार हटाने से हट सकती है अर्थात् उन दोनो का प्रेम नही टूट सकता ।

सवैया

बसी बजावत आनि कढो सो गली मैं अली ! कछु टोना सो डारे ।
हेरि चिते, तिरछी करि दृष्टि चलौ गयौ मोहन मूठि सी मारे ।।
ताही घरी सो परी घरी सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहुँ वारे ।
राधिका जी है तो जी है सबै न तो पीहै हलाहल नन्द के द्वारे ।।११४।।

शब्दार्थ—टोना=जादू । हेरि=देखकर । मूठि सी मारे=मूठ सी मारकर । हलाहल=विष ।

अर्थ—प्रेम व्यथिता राधिका जी का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! बाँसुरी को बजाता हुआ वह कृष्ण अचानक गली मे आ निकला और राधा पर कुछ जादू सा डाल गया । वह उसकी ओर देखकर ध्यान देकर और तिरछी निगाह करके मन को मोहने वाली मूठ सी मार कर चला गया; अर्थात् राधा पर अपना प्रेम जना कर और राधा के हृदय मे प्रेम की भावना जगाकर चला गया । वह प्यारी राधा उसी समय से सेज पर निश्चेष्ट होकर पडी हुई है । वह कुछ बोलती भी नही है तथा अपने प्राणो को न्यौछावर करने पर उतारू है । हे सखि ! यदि राधा जी जीवित बच गई तो हम सबका जीवन है, यदि वह मर गई तो हम सभी नन्द के द्वारे

पर जाकर विष पी लेगी; अर्थात् उसके द्वारे पर जाकर आत्म-हत्या कर लेगी।

विशेष—१. जी है तौ जी हैं, मे यमक अलकार है।

२ 'न तौ पी है हलाहल नन्द के द्वारे' में मन का सारल्य एवं दृढता निहित है।

तुलना—'चेतै न जो वृषभान सुता दुख ह्वै ह्वै बडो इहि की सजनीन को।
जाय के खाय परेगी सबै या अहीर के द्वार पै हीर-कनीन को॥
—अज्ञात

सवैया

कल कानिनि कुण्डल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर मै अधरा मुसकानि-तरग महा छबि छाजति है॥
रसखानि लखे तन पीत पटा सत दामिनि सी दुति लाजति है।
वहि बासुरी की धुनि कान परे कुलकानि हियो तजि भाजति है॥११५॥

शब्दार्थ—कल=सुन्दर। काननि=कानो मे। अधरा=होठो पर। मुसकानि-तरग=हसी की लहरे। छाजति है=शोभायमान है। सत दामिनि की=सैकड़ो बिजलियो की। दुति=द्युति, शोभा। लाजति है=लज्जित होता है। कुलकानि=वश की मर्यादा। भाजति है=भागती है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा तथा उनकी बांसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण के कानो मे सुन्दर कुण्डल, सिर पर मोर-पखो का मुकट और हृदय पर वैजयन्तीमाला सुशोभित है। उनके हाथ मे वशी और होठो पर मुसकराहट की लहरें अत्यन्त शोभा प्राप्त करती है। रसखान कवि कहते है कि उनके तन पर सुशोभित पीले वस्त्र को देखकर सैकडो बिजलियो की शोभा लज्जित होती है। उसी बाँसुरी की ध्वनि कानो मे पडने पर व्रज-वनिताएँ अपने हृदय से वंश की मर्यादा छोड़ कर उसी ओर भागती है।

विशेष—अनुप्रास, रूपक और प्रतीप अलकर।

सवैया

कालिह भटू मुरली-धुनि मे रसखानि लियौ कहुँ नाम हमारौ।
ता छिन ते भई बैरिनि सास कितौ कियौ झाँकन देति न द्वारौ॥

होत चवाव बलाई सो आली री जो भरि आँखिन भेंटिये प्यारो।
बाट परी अब री ठिठक्यौ हियरे अटक्यौ पियरे पटवारो ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—पटू=सखी। चवाव=बदनामी की चर्चा। जो भरि आँखिन=आँखे खोलकर। बाट परी=रास्ता रुक गया। ठिठक्यौ=रुक गया।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आनन्द-सागर कृष्ण ने अपनी मुरली मे मेरा नाम बजा दिया था। तभी से मेरी सासू मेरी वैरिन हो गई है, तथा प्रयत्न करने पर भी द्वार झाँकने नही देती, अर्थात् मैं अपने घर से बाहर निकलने का बहुत प्रयत्न करती हूँ, किन्तु मेरी सासू मुझे तनिक भी बाहर नही आने देती है। हे सखि! यदि मैं कृष्ण को तनिक भी आँखे भर कर देख लेती हूँ तो इससे मेरी भारी बदनामी होती है। जब से कृष्ण मेरे मन मे बसा है, अर्थात् कृष्ण से मुझे प्रेम हुआ है, तब से मेरा रास्ता और हृदय दोनो रुक गये है, अर्थात् न तो मैं कहीं बाहर जा सकती हूँ और न अपने हृदय से कृष्ण को ही निकाल सकती हूँ।

विशेष—अन्तिम पंक्ति मे यमक अलकार है।

पाठान्तर--इस सवैया की प्रथम पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'एक समै मुरली धुनि मे रसखान लियौ उन नाम हमारो।'

सवैया

आजु भटू इक गोपवधू भई बावरी नेकु न अग सम्हारै।
माई सु धाइ कै टौना सो ढूँढति सास सयानी-सयानी पुकारै ॥
यौ रसखानि घिरौ सिगरौ व्रज आन को आन उपाय विचारै।
कोऊ न कान्हर के कर ते वहि वैरिनि बासरिया गहि जारै ॥११७॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। टोना=जादू। सयानी=टोना करने वाली। आन को आन=अन्य-अन्य प्रकार के। कान्हर के=कृष्ण के। गहि जारै=लेकर जलाता है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज कृष्ण की बासुरी की ध्वनि सुन कर एक गोप वधू पागल हो गई, उसे अपने अगो की सम्हालने का तनिक भी ध्यान नही रहा। उसकी सखियाँ दौड़-दौड कर जादू करने वाली को ढूँढ़ने लगी, उसकी सासु टोना करने वाली को पुकारने लगी। रसखान कहते है कि

इस प्रकार सारा ब्रज वहाँ आ गया और उस गोपवधू को चारो ओर से घेर लिया। सब नर-नारी अन्य-अन्य प्रकार के उपकार बताने लगे, लेकिन किसी की भी समझ मे नही आया कि कृष्ण के हाथ से उस वैरिन बाँसुरी को छीन कर जला दे, क्योकि वह उसी का तो प्रभाव था, जिसके कारण वह गोप वधू पागल हो गई थी।

विशेष—बासुरी के प्रभाव का प्रभावोत्पादक वर्णन है।

पाठान्तर—इस सवैया की द्वितीय पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'मात अघात न देवन पूजत सास सयानो सयानो पुकारै।'

सवैया

कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखि ! हमको चहिहै।
निसद्यौस रहै सग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यौ सहिहै।।
जिन मोहि लियौ मन मोहन को रसखानि सदा हमको दहिहै।
मिलि आओ सबै सखि ! भागि चलैं अब तौ ब्रज मे बसुरी रहिहै।।११८।।

शब्दार्थ—कान्ह=कृष्ण। चहिहै=चाहेगा, प्रेम करेगा। निसद्यौस= रात-दिन। तापन=दुखो को। दहिहै=जलती है, दुख देती है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बासुरी के प्रति सौतिया-डाह प्रकट करती है कि हे सखि ! कृष्ण तो अब बासुरी के वश मे हो गये है, अतः अब हमे कौन प्यार करेगा ? अर्थात् कृष्ण तो केवल अपनी बाँसुरी को ही प्रेम करते है, वे हमसे प्रेम नही करेगे। यह बासुरी रात-दिन उनके साथ लगी रहती है, अतः यह सौतिया दुख हमसे नही सहे जाते। इस बाँसुरी ने दूसरो का मन मोहने वाले कृष्ण का भी मन मोह लिया है, इसीलिए यह हमे सदैव दुख देती रहती है। इस दुख से छूटने का तो केवल यही उपाय है कि सारी सखियाँ इकट्ठी होकर ब्रज से भाग चले, क्योकि अब तो ब्रज मे यह बासुरी ही रहेगी।

विशेष—१. नारी के सपत्नी-भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
२ 'मोहि लियौ मन मोहन को' वाक्याश विशेप महत्वपूर्ण है।

तुलना—१. हम ब्रज बसिहैं तो बाँसुरी बसै न यह,
बासुरी बसाइ कान्ह हमे बिदा दीजिए।

—शेख आलम

२. 'धुनि सुनाय चेटक भरी, सुधि नसाय चित चैन।
बंसी गिरधर घर बसी, हम घर बसी रहै न।।'

—अज्ञात

सवैया

ब्रज की वनिता सब घेरि कहैं, तेरो ढारो विगारो कहा कस री ।
अरी तू हमको जम काल भई नैक कान्ह गही तौ कहा रस री ॥
रसखानि भली विधि आनि वनी वसिवो नही देत दिसा दस री ।
हम तो ब्रज को वसिवोई तजौ वस री ब्रज वेरिन तू वसरी ॥ ११९ ॥

शब्दार्थ—ढारौ=ढंग । जमकाल=मृत्यु ।

अर्थ—कृष्ण अपनी बाँसुरी को बहुत प्रेम करते है । उसके प्रेम को देखकर गोपियो के मन मे उसके प्रति ईर्ष्या और जलन की भावनायें उत्पन्न हो गई है । अतः ब्रज की सारी नारिया वासुरी को घेर कर उससे पूछती हैं कि हे बांसुरी ! हममे से किसने तेरा क्या विगाडा है जो तू हमारे लिए मृत्यु-काल के समान वन गई है ? अगर कृष्ण ने तुझे जरा सा छू लिया तो तुझे कौन सा भारी आनन्द प्राप्त हो गया । रसखान कवि कहते है कि गोपियाँ बाँसुरी से कहने लगी कि अव तो हम इस परिणाम पर पहुँच गई हैं कि तू हमे यहाँ पर थोडे दिन भी नही वसने देगी । हमने तो ब्रज मे रहना ही छोड़ दिया है, इसलिए हे वैरिन बाँसुरी, तू ही अव ब्रज मे आनन्द से रह ।

विशेष—१. इस कवित्त मे सौतभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है ।
२ अन्तिम पंक्ति मे अनुप्रास का भावपूर्ण प्रयोग है ।

तुलना—'मैंने छाड्यो वृज को री वसिवौ, तू ही या वृज मे वंसी री ।'
—सूरदास

सवैया

बजी है वजी रसखानि वजी सुनिकै अव गोपकुमारी न जी है ।
न जी है कोऊ जो कदाचित कामिनी कान मैं वाकी जु तान कुपी है ॥
कुपी है विदेस सदेस न पावति मेरी डव देह को मौन सजी है ।
सजी है तौ मेरो कहा वस है सुतौ वैरिनि वासुरी फेरि वजी है ॥ १२० ।

शब्दार्थ—मैन=कामदेव ।

अर्थ—कृष्ण की वासुरी का प्रभाव-वर्णन करते हुए कवि रसखान कहते है कि कृष्ण की वासुरी वजने पर गोप-कुमारियो का जीवित रहना मुश्किल हो जाता है । जिस भी कामिनी के कानो मे उस वशी की धुनि पडती है वह कदाचित् जीवित ही नही रह जाती; अर्थात् वशी के माधुर्य मे इतनी तन्मय हो

जाती है कि वह स्वय को ही भूल जाती है। किसी-किसी गोपी के मन में विरह की इतनी प्रबल वेदना जागृत हो जाती है कि वह अपने मन मे कुपित होकर कहने लगती है कि प्रियतम कितना बुरा है जो विदेश मे रह रहा है, पर उसने अभी तक अपना कोई भी सदेश नही भेजा, मेरे सारे शरीर मे तो अब कामदेव का सचार हो गया है, अर्थात् मन मे मिलन की उत्कठा बहुत अधिक बढ गई है। इस पर यह बैरिन बाँसुरी बजकर उस विरह वेदना को और भी अधिक उत्तेजित कर देती है। इसमे मेरा कोई वश नही है।

विशेष—१. सिंहावलोकन अलकार का भावपूर्ण प्रयोग है।

२. 'तान कुँपी है' मे भावोत्कर्षक शक्ति है।

तुलना—'कीजै कहा राम अब जैए केहि ठाम ऐ री,
फेरि वह बैरिन बजी है बन बासुरी।'
—द्विजदेव

सवैया

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौ गुंज की माला गरे पहिरौगी।
ओढि पितम्बर लै लकुटी वन गोधन ग्वारनि सग फिरौगी॥
भाव तो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौगी॥१२८॥

शब्दार्थ—मोर पखा=मोर-मुकुट। पितम्बर=पीला वस्त्र। भावतो=प्रिय। अधरान=ओठ। अधरा=नीचे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मै मोर-मुकुट को अपने सिर के ऊपर पहनूँगी, गुजो की माला मै पहनूँगी। पीला वस्त्र ओढ कर और हाथ मे लाठी लेकर तथा ग्वालिन बनकर बन बन मे गायो के पीछे फिरूँगी। कृष्ण मेरा प्रिय है और उसे प्राप्त करने के लिए तेरे कहने से सारा स्वाँग भर लूंगी, किन्तु कृष्ण की मुरली को, जो वे ओठो पर रक्खे रहते है, नीचे नही धरूँगी।

विशेष—अतिम पक्ति मे यमक अलकार है।

कालिय दमन

कवित्त

आपनो सो ढोटा हम सब ही को जानत है,
दोऊ प्रानी सब ही के काज नित धावही।

ते तौ रसखानि अब दूर ते तमासो देखैं,
तरनितनूजा के निकट नहिं आवही ।
आन दिन बात अनहितुन सो कही कहा,
हितू जेऊ आए ते ये लोचन दुरावही ।
कहा कहौ आली खाली देत सब ठाली, पर
मेरे बनमाली को न काली तें छुरावही ॥१२२॥

शब्दार्थ—ढोटा=पुत्र । तरनितनूजा=यमुना । अनहितुन=बुरी । हितू=मित्र । बनमाली=कृष्ण ।

अर्थ—यशोदा अपनी सखी से कालिय-दमन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! हम (नंद और यशोदा) दोनो सभी गोपो को अपना-सा ही पुत्र समझते है और दोनो प्रतिदिन दूसरो के काम को दौड आते है; अर्थात् सदैव दूसरो की सहायता मे तत्पर रहते है । रसखान कहते हैं कि वे ही लोग जिनकी हमने सदा सहायता की, अब दूर से ही तमाशा देख रहे हैं । कोई भी यमुना के निकट नही आता । न जाने किसी दिन हमने किससे क्या बुरी बात कह दी कि जो मित्र थे, वे भी अब आँखे चुरा रहे है; अर्थात् कोई भी कृष्ण की सहायता के लिए आगे नही बढ रहा है । हे सखि ! मैं तुमसे क्या कहूँ । वैसे तो सब लोग कार्य-निवृत्त है, पर मेरे कृष्ण को कोई भी कालिय नाग से नही छुडा रहा है ।

विशेष—यशोदा की भययुक्त आतुरता का स्वाभाविक वर्णन है ।

पाठान्तर—इस कवित्त की पाँचवी और छठी पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'अदिन परे ते अनहितू सब भये लोग,
यहै तो अजोग देखि लोचन दुरावही ।'

सवैया

लोग कहैं ब्रज के रसखानि अनंदित नंद जसोमति जू पर ।
छोहरा आजु नयो जनम्यौ तुम सो कोऊ भाग भर्यौ नहिं भू पर ॥
वारि कै दाम सँवार करौ अपने अपचाल कुचाल ललू पर ।
नाचत रावरो लाल गुजाल सो काल सो व्याल-कपाल के ऊपर ।१२३।

शब्दार्थ—छोहरा=पुत्र, कृष्ण । दाम=धन । अपचाल कुचाल=दुर्दिन ।

ललू पर=कृष्ण पर। व्याल-कपाल=नाग का सिर।

अर्थ—कृष्ण को कालिय नाग के सिर पर नृत्य करते हुए देखकर ब्रज के लोग आनंदित नन्द और यशोदा से कहते है कि तुम्हारे पुत्र ने आज नया जन्म लिया है, अत इस भूमडल पर तुम जैसा कोई भाग्यशाली नही है। तुम धन का दास देकर तथा उसे कृष्ण पर न्यौछावर करके अपने दुर्दिनो को नष्ट कर लो। अब चिन्ता की कोई बात नही है, क्योकि तुम्हारा पुत्र कालिय नाग के सिर के ऊपर नाच रहा है; अर्थात् इसने नाग को पूर्णतया अपने वश मे कर लिया है।

विशेष—तत्कालीन सामाजिक परम्पराओ की ओर सकेत इस सवैया मे दृष्टिगोचर होते है।

तुलना— 'जनम को चाली ऐरी अद्भुत है ख्याली आजु,
काली की कनाली पै नचत वनमाली है।'
—पद्माकर

चीर हरण

सवैया

एक समै जमुना-जल मैं सब मज्जन हेत धसी ब्रज-गोरी।
त्यौ रसखानि गयौ मनमोहन लै कर चीर कदम्ब की छोरी॥
न्हाइ जबै निकसी बनिता चहु ओर चितै चित रोष करो री।
हार हिये भरि भावन सो पट दीने लला वचनामृत बोरी॥१२८॥

शब्दार्थ—मज्जन हेत=न्हाने के लिए। छोटी=चोटी। रोष=क्रोध। वचनामृत=अमृत जैसे सुखद वचन। वोरी=डूब गई।

अर्थ—चीरहरण लीला का वर्णन करते हुए रसखान कवि कहते है कि एक समय की बात है कि सब ब्रज की स्त्रियाँ न्हाने के लिए यमुना के जल मे उतरी। तभी उनके वस्त्रो को लेकर श्रीकृष्ण कदम्ब वृक्ष की चोटी पर चढ गये। स्नान करके जब वे स्त्रियाँ बाहर निकली और चारो ओर देखने पर भी अपने वस्त्रो को न पा सकी तो क्रुद्ध हो गई। जब उन्होने अपनी हार स्वीकार कर ली तो अनेक प्रकार के प्रेमपूर्ण भावो से भरकर कृष्ण ने उनके वस्त्र लौटा दिये और उनसे जो प्रेमपूर्ण बाते की, उनके अमृत जैसे सुखद वचनो को सुनकर सारी स्त्रियाँ आनन्द मे डूब गई।

प्रेमासक्ति

सवैया

प्रान वही जु रहै रिझि वा पर रूप वही जिहि वाहि रिझायौ ।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायौ ।।
दूध वही जु दुहायौ री वाही दही सु सही जु वही ढरकायौ ।
और कहाँ लौं कहौं रसखानि री भाव वही जु वही मन भायौ ।।१२५।।

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि वे ही प्राण हैं जो कृष्ण पर रीझ जाये, वही रूप है जो कृष्ण को रिझाले । वही सिर है जो कृष्ण के चरणो का स्पर्श करे, हृदय वही है जिससे कृष्ण का स्पर्श किया गया हो । वही दूध है जो कृष्ण ने दुहा है, वही दही है जो उसने बिखेरी है । रसखान कवि कहते हैं कि और कहाँ तक कहूँ, भाव भी वही है जो कृष्ण को अच्छा लगता है ।

कहने का अभिप्राय यह है कि इन्द्रियो की और भावो की सार्थकता तभी है जब वे कृष्ण को या तो अपनी ओर आकृष्ट कर सके, अथवा उसकी ओर आकृष्ट हो जाये ।

सवैया

देखन कौं सखी नैन भए न सबै तन आवत गाइन पाछै ।
कान भए प्रति रोम नही सुनिबे कौं अमीनिधि बोलनि आछै ।।
ए सजनी न सम्हारि भरै वह बाँकी बिलोकनि कोर कटाछै ।
भूमि भयौ न हियो मेरी अली जहाँ हरि खेलत काछनी काछै ।।१२६।।

शब्दार्थ—अमीनिधि=अमृत-सागर । कटाछै=कटाक्ष । आली=सखी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि कृष्ण गायो के पीछे आ रहे है । अच्छा होता कि मेरे सारे शरीर मे नैन होते, ताकि मैं उसकी शोभा को पूरी तरह देख पाती । अमृत-सागर से भरे हुए वह जो मीठे वचन बोलता है, उन्हे सुनने के लिए मेरे रोम-रोम मे कान क्यो नही हो गये । हे सखि ! उसकी कटाक्ष भरी हुई सुन्दर चितवन संभालने से संभाली नही जाती, अर्थात् उसका प्रभाव बिना पड़े नही रह पाता । हे सखि ! मेरा हृदय वह पृथ्वी क्यो नही बन गया, जहाँ काछनी

पहनकर कृष्ण खेलते है।

तुलना—१. 'देखिबे को स्याम सोम देतो दृग रोम-रोम,
कीनो सो न बिधि औ अविधि कीनी पलके।'
—सोमनाथ

२. 'चाहित जुगल किसोर लखि ,लोचन जुगल अनेक।'
—बिहारी

३. 'कीजै कहा राम, स्याम आनन बिलोकिबे को,
विरचि बिरचि न अनन्त अंखिया दई।'
—पद्माकर

सवैया

मोरपखा मुरली बनमाल लखे हिय को हियरा उमह्यौ री,
ता दिन ते इन बैरिनि को कहि कौन न बोल कुबोल सह्यौ री॥
तौ रसखानि सनेह लग्यौ कोउ एक कह्यौ कोउ लाख कह्यौ री॥
और तौ रग रह्यौ न रह्यौ इक रग रंगी सोह रग रह्यौरी ॥१२१॥

शब्दार्थ—मोरपखा=मोर-पखो का मुकुट। उमह्यौ=उमड़ रहा है। बोल-कुबोल=अच्छी-बुरी। रसखनि=आनन्द-सागर कृष्ण। रग=आदत। रंग=प्रेम।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि जिस दिन से मैंने मोर-पखो का मुकुट, मुरली और बनमाल को धारण करने वाले कृष्ण को देखा है और मेरे हृदय का भी हृदय उमड़ रहा है, उस दिन से इन बैरिन बदनामी करने वाली स्त्रियो की कौन-सी ऐसी अच्छी और बुरी बात है, जो मैने नही सही। जब आनन्द-सागर कृष्ण से प्रेम हो ही गया है तो चाहे कोई एक कहे या लाख कहे, यह प्रेम नही छूट सकता। मुझे और तो आदत रही चाहे न रही, पर कृष्ण के प्रेम मे इस प्रकार रग गई हूँ कि अब यही रग शेष रह गया है।

विशेष—१. यमक, छेकानुप्रास अलंकारो का भाव पूर्ण प्रयोग है।
२ प्रेम की मान्यता वर्णित है।

पाठांतर—इस सवैये की अंतिम दो पक्तियाँ इस प्रकार भी मिलती है—
'अब तो रसखान सो नेह लग्यौ कोउ एक कह्यो किन लाख कह्यौ री।
और सो रंग रहौ न रहौ इक रग रगीले सो रंग रह्यौ री।'

तुलना—१. 'तुम गाँवरे नाँवरे कोऊ धरो हम साँवरे रंग रंगी सो रंगी।'

२. 'अब कोऊ कितेऊ कहै किनरी जु हौं स्याम के रंग रंगी सो रंगी।'

—द्विजदेव

३. 'रंग दूसरो और चढैगो नही अलि साँवरो रंग रंग्यौ सो रंग्यौ।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

वन बाग तडागनि कुंजगली अखियाँ सुख पाइहै देखि दई।
अब गोकुल माँझ बिलोकियँगी वह गोप सभाग सुभाय रई॥
मिलिहै हँसि गाइ कबै रसखानि कबै व्रजबालनि प्रेम भई।
वह नील निचोल के घूंघट की छवि देखबी देखन लाज लई॥१२८॥

शब्दार्थ—सभाग=भाग्यशाली। रई=युक्त। निचोल=वस्त्र। लाज-लई=लज्जा युक्त।

अर्थ—कोई गोपी अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण को वन मे, बाग मे, तडागो मे और कुंज-गलियो मे देखकर तो मेरी आँखो ने सुख प्राप्त कर लिया है, अब मेरी इच्छा यह है कि उस भाग्य-शाली सुन्दरता से युक्त कृष्ण को गोकुल के बीच कब देखूंगी। वह कृष्ण प्रेममयी, व्रज-बालाओ के मध्य मे कब हंसकर तथा मिलकर रासलीला करेगा? और मैं कब अपने पीले वस्त्र के घूंघट के बीच से लज्जायुक्त होकर उसकी शोभा देखूंगी।

पाठान्तर—वन बाग तडागन कुंज गली अखियाँ सुख पाइ है देखि दई।
कब गोकुल माँझ बिलोकहिगी छवि सो वह गोप सभा ग रई।
मिलि हैं हँसि गारी दै कै रसखान कबै व्रज बालनि प्रेम मई।
वह नील निचोल के घूंघट की कब देखवी देखन लाज लई॥

सवैया

कालिह पर्यौ मुरली-धुनि मैं रसखानि जू कानन नाम हमारो।
ता दिन ते नहि धीर रखौ जग जानि लयौ अति कीनौ पँवारो॥
गाँवन गाँवन मैं अब तौ बदनाम भई सब सो कै किनारो।
तौ सजनी फिरि फेरि कहौं पिय मेरो वही जग ठोकि नगारो॥१२९॥

शब्दार्थ—कालिह=कल। कानन=कानो मे। पँवारो=झंझट। सब सों

कै किनारो=सब से ही किनारा कर लिया, सबसे अलग हो गई। ठोकि नगारो=नगारा बजाकर।

अर्थ—मुरली के प्रभाव का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! कल आनन्द-सागर कृष्ण के द्वारा मुरली मे लिया हुआ मेरा नाम जब मेरे कानो मे पडा तो उसी दिन से (उसी समय से) मेरे मन का धैर्य जाता रहा। सारे संसार को यह मालूम हो गया है कि मैंने अपनी जान को झंझट पाल लिया है। कृष्ण से प्रेम करने के कारण अब तो मैं प्रत्येक गॉव मे बदनाम हो गई हूँ, इसीलिए सबसे अलग भी हो गई हूँ। इसीलिए हे सजनी ! मैं तुझ से फिर उसी बात को दोहराती हूँ कि कृष्ण ही मेरा प्रियतम है। इस बात को मै संसार मे नगारा पीटकर कह रही हूँ।

विशेष—इस सवैये मे 'सब सो कै किनारो,' और 'ठोकि नगारो' मुहावरों का भावपूर्ण प्रयोग है।

सवैया

देखि हौ आँखिन सो पिय को अरु कानन सो उन बैन को प्यारी।
बाके अनगनि रंगनि की सुरभीनि सुगन्धनि नाक मैं डारो॥
त्यौ रसखानि हिये मैं धरौ वहि सांवरी मूरति मैन उजारी।
गाँव भरौ कोउ नॉव धरौ पुनि साँवरी हो बनिहो सुकुमारी॥१३०॥

शब्दार्थ—कानन सो=कानो से। सुरभीनि सुगन्धनि=नाना प्रकार को सुगन्धियो की गन्ध। मैन-उजारी=कामदेव से सुन्दर। नाव धरौ=नाम करो, निन्दा करो।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं अब इन अपनी ऑखो से केवल प्रियतम कृष्ण का ही दर्शन करूँगी और इन कानो से केवल उनकी प्रिय वासुरी को ही सुनूँगी। उसके बाँके कामदेव जैसी छवि की नाना प्रकार की सुगन्धियो की गन्ध को अपनी नाक मे डालूँगी। इस प्रकार मै उस आनन्द सागर की कामदेव से भी सुन्दर मूर्ति को अपने हृदय मे धारण करूँगी। अब चाहे गाँव के सारे निवासी मेरी कितनी ही निन्दा करे मैं कृष्ण के प्रति अपने अचल अनुराग को नही छोडूँगी।

सवैया

तुम चाहो सो कहो हम तो नन्दवारे के सग ठई सो ठई।
तुम ही कुलवीने प्रवीने सवै हम ही कुछ छाडि गई सो गई।
रसखान यो प्रीत की रीत नई सु कलंक की मोटै लई सो लई।
यह गाव के वासी हँसै सो हँसै हम स्याम की दासी भई सो भई ॥१३१॥

शब्दार्थ—नन्दवारे के संग=कृष्ण के साथ। ठई सो ठई=दृढ़ सकल्प करके मिल चुकी है। कुलवीने=कुलवान। मोटै=गठरियाँ।

अर्थ—गोपिया किसी अन्य गोपी से जो उन्हे कृष्ण प्रेम से विरत करना चाहती है, कहती है कि तुम जो चाहो हम को कह लो, लेकिन हम तो दृढ़ संकल्प करके कृष्ण के साथ मिल चुकी है, अर्थात् उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर चुकी हैं। तुम ही सव प्रकार से कुलवती और प्रवीण सही, पर हमने तो कुल की मर्यादा को तिलाजलि दे दी है। हमारे प्रेम की यह रीति नही है, हमे जो भी वदनामी की गठरिया मिली हैं, उन्हे हमने सहर्ष स्वीकार कर लिया हैं। अव चाहे हमारे ग्राम के निवासी हम पर कितना ही हँसें, पर हम तो कृष्ण की दासी वन ही चुकी हैं।

विशेष—१. गोपियो के अनन्य प्रेम की सुन्दर व्यंजना है।
२. वीप्सा अलकार का प्रयोग प्रभावोत्पादक है।
३. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रंथावली' मे नही है।

सवैया

मोर पखा धरे चारिक चारु विराजत कोटि अमेठनि फैंटो।
गुंज छरा रसखान विसाल अनग लजावत अंग करैंटो।
ऊँचे अटा चढि एड़ी ऊँचाइ हितौ हुलसाय कै हौंस लपेटो।
हौ कव के लखि हौं भरि आँखिन आवत गोधन धूरि धूरैंटो।१३२।

शब्दार्थ—चारिक=चार-एक अर्थात् थोडे-से। कोटि अमेटनि फैंटो=करोड़ो पेचो से युक्त पगड़ी। गुंजछरा=गुंज की माला, एक आभूषण विशेष। अनग=कामदेव। अग करैंटो=स्याम शरीर। हौंस=अभिलाषा। भरि आँखिन=आँखो मे भरकर। गोधन धूर धूरैंटो=गौओ की धूल से धूसरित।

अर्थ—शाम को घर लौटते हुए कृष्ण की शोभा का वर्णन कोई गोपी

अपनी सखी से करती हुई कह रही है कि हे सखि ! वह सिर पर थोडे-से मोर-पंखो का मुकुट धारण किए हुए है। उनकी करोडो पेचो से युक्त पगडी अत्यन्त शोभायमान हो रही है। उनके हृदय पर पडी हुई विशाल गुंजमाला तथा श्याम शरीर कामदेव को भी लज्जित करता है। मैंने उन्हे ऊँची अटारी पर चढ कर तथा उचक कर हृदय मे हुलस कर अनेक अभिलाषाओ से युक्त होकर देखा है। मै गौओ की धूल से धूसरित होकर आते हुए कृष्ण को बहुत देर से आँखे भरकर देख रही हूँ।

विशेष—१ तृतीय पक्ति मे औत्सुक्य भावो की सुन्दर योजना है।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र सम्पादित 'रसखान ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

कुजनि कुजनि गुज के पुंजनि मजु लतानि सौ माल बनैबो।
मालती मल्लिका कुंद सौ गूंदि हरा हरि के हियरा पहिरैबो॥
आली कबै इन भावने भाइन आपुन रीझि कै प्यारे रिझैबो।
माइ झकै हरि हाँकरिबो रसखानि तकै फिरि कै मुसकैबो॥१३३॥

शब्दार्थ—पुजनि=समूह। हरा=हार। आली=सखी। भावते भाइन=प्रिय भाव। हाकरिबौ=पुकारना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि कुज-कुज के गुँजो के समूहो को इकट्ठा करके उनकी सुन्दर लताओ से माला बनाऊँगी। मालती मल्लिका और कुदो से हार गूँथकर कृष्ण के हृदय पर पहनाऊँगी. हे सखि ! न जाने कब इन प्रिय भावो से स्वय ही रीझकर अपने प्रिय कृष्ण को स्थिर पाऊँगी। मै यथाशक्ति उन्हे पुकारूँगी. वे पीछे की ओर देखेगे और तब मै उनकी ओर मुडकर पुरस्कार दूँगी।

पाठान्तर—इस सवैया की चौथी पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—
'पाइ लुकै दुरि हाँ करिबौ रसखान तकै फिरि कै मुसकैवो।'

सवैया

सब धीरज क्यो न धरौ सजनी पिय तो तुम सो अनुरागेइगौ।
जब जोग सँजोग को आन बनै तब जोग विजोग को मानेइगौ।

निसचै निरवार धरी जिय मे रसखान सबै रस पावेइगो ।
जिनके मन सो मन लागि रहै तिनके तन मौं तन लागेइगो ॥१३४॥

शब्दार्थ—अनुरागेइगो=अवश्य प्रेम करेगा । निसचै=निश्चय । रस=आनन्द ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! तू सब प्रकार से अपने मन मे धैर्य धारण कर, क्योंकि एक न एक दिन प्रियतम कृष्ण तुमसे अवश्य प्रेम करेगा । जब मिलने का समय आयेगा तो वियोग की घडियाँ नष्ट हो जाएँगी । तुम निश्चय ही अपने हृदय मे धैर्य धारण करो, क्योकि तुम आनद-सागर कृष्ण से अवश्य आनंद प्राप्त करोगी । जिसके मन मे तेरा मन लगा हुआ है, उसके शरीर मे भी तेरे शरीर का मिलन होगा ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है ।

सवैया

उनही के सनेहन सानी रहै उनही के जु नेह दिवानी रहै ।
उनही की सुनै न औ वैन त्यौ सैन सो चैन अनेकन ठानी रहै ॥
उनही सँग डोलन मैं रसखान सबै सुखसिन्धु अघानी रहै ।
उनही बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी असुवानी रहै ॥१३५॥

शब्दार्थ—सनेहन=प्रेम । सानी रहै=परिपूर्ण रहती है । अघानी=तृप्त ।

अर्थ—अपनी प्रेमावस्था का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! मेरा मन उसी कृष्ण के प्रेम से परिपूर्ण रहता है, मैं उन्ही के प्रेम मे पागल बनी हुई हूँ । मेरे कान केवल उन्ही की बातो को सुनते हैं, और किसी प्रकार की वाणी को नही सुनते । उनकी चितवन ही मुझे अनेक प्रकार से आनद प्रदान करती है । मैं उन्ही के साथ रहने मे इतना सुख-सागर प्राप्त कर लेती हू कि पूर्णतया तृप्त हो जाती हूँ । उनके बिना मेरी आँखे आँसुओ मे डूबकर इस प्रकार तडपती रहती है जिस प्रकार पानी के बिना मछली ।

विशेष—१. आनन्द-भाव के प्रेम का वर्णन है ।
२. उपमा अलकार ।

प्रेम-बन्धन

सवैया

चंदन खोर पै बिन्दु लगाय कै कुंजन ते निकस्यौ मुसकातो।
राजत है बनमाल गरे अरु मोरपखा सिर पै फहरातो।
मै जब ते रसखान बिलोकति ही कछु और न मोहि सुहातो।
प्रीति की रीति मे लाज कहा सखि है सब सो बड नेह को नातो ॥१३६॥

शब्दार्थ—खोर=तिलक। नेह=प्रेम। बड=बडा, महत्वपूर्ण।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! चन्दन के तिलक पर बिन्दी लगाकर कृष्ण मुस्कराता हुआ कुंजो से निकला। उसके गले मे बनमाला सुशोभित थी और सिर पर मोर-पखो का मुकुट फहरा रहा था। मैने जब से आनन्द-सागर कृष्ण की इस शोभा को देखा है तब से मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता। हे सखि! प्रेम की रीति मे लज्जा त्याज्य है, क्योकि प्रेम का सम्बन्ध सबसे बड़ा सम्बन्ध है।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

कौन को लाल सलोनी सखी वह जाकी बडी अँखियाँ अनियारी।
जोहन बंक बिसाल के बाननि बेधत है घट तीछन भारी ॥
रसखानि सम्हारि परै नहि चोट सु कोटि उपाय करे सुखकारी।
भाल लिख्यौ बिधि हेत को बधन खोलि सकै ऐसो को हितकारी ॥१३७॥

शब्दार्थ—लाल=पुत्र। सलोनो=सुन्दर। अनियारी=विलक्षण। जोहन=दृष्टि। विधि=ब्रह्मा। हेत=प्रेम।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के विषय मे पूछती है कि हे सखि! यह सुन्दर पुत्र किसका है जिसकी बडी बडी विलक्षण आँखे है। यह विशाल वंक दृष्टि रूपी भारी तीक्ष्ण बाणो से हृदय को वेधता है। रसखान कहते हैं कि चाहे कोई करोडो सुखकारी उपाय करे, पर इन बाणो की चोट को नही सँभाल सकता। यदि भाग्य मे ब्रह्मा ने प्रेम का बंधन लिख दिया हो तो ऐसा कोई भी हितकारी नही है जो इस बधन को खोल सके।

विशेष—अंतिम पंक्ति मे विवशता के माध्यम से प्रेम की दृढ़ता का वर्णन है।

नेत्रोपालम्भ

सवैया

अली पगे रँगे जे रँग सावरे मो पै न आवत लालची नैना।
धावत है उतही जित मोहन रोके रुकै नहि घूँघट रोना ॥
काननि कौं कल नाहि परै सखी प्रेम सो भीजे सुनै बिन बैना।
रसखानि भई मधु की मखियाँ अब नेह को बंधन क्यौं हूँ छुटै ना ॥१३८॥

शब्दार्थ—आली=सखी। रग=प्रेम। ऐना=घर। काननि कौं=कानो को। कल=चैन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मेरे ये लालची नेत्र कृष्ण के प्रेम मे इस प्रकार बन्दी हो गये है कि अब ये मेरे वश मे नही रहे। ये जिस ओर भी कृष्ण को देखते है, उसी ओर दौडने लगते है और घूँघट के घर मे भी नही रुकते, अर्थात् चाहे जितना आवरण इनके ऊपर डाला जाये, ये उस आवरण को भेद कर भी कृष्ण की ओर दौडते है। हे सखि! प्रेम से भीगे हुए वयनों को सुने बिना इन कानो को चैन नही मिलता, अर्थात् ये कान प्रेय की मधुर बातो को सुनने के लिए सदैव आकुल रहते है। रसखान कहते है कि मेरी ये आँखें शहद की मक्खियाँ बन गई है, अत अब प्रेम का बन्धन किस प्रकार छूट सकता है? कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार शहद की मक्खियाँ अपने ही बनाये हुए शहद मे बंदी हो जाती है, उसी प्रकार मेरे नेत्र अपने द्वारा ही उत्पन्न किये गये प्रेम मे बन्दी बन गये है।

विशेष—१. अंतिम पंक्ति मे रूपक अलकार है।
२ आँखो को मधु मक्खी बताना बहुत ही भावपूर्ण है।

सवैया

श्री वृषभान की छान धुजा अटकी लरकान ते आन लई री।
वा रसखान के पानि की जानि छुडावति राधिका प्रेममई री।
जीवन मूरि सी नेज लिये इनहूँ चितयौ उनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही सुरझानि गुडी उरझाय दई री ॥१३९॥

शब्दार्थ—छान=छत। धुजा=ध्वजा। पानि=हाथ। जीवन-मूरि= सजीवनी बूटी के समान।

अर्थ—राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! वृषभानु की छत पर जो ध्वज (पतग) आकर अटकी थी, वह अन्य लड़को ने आकर ले ली। उस पतग को आनन्द-सागर कृष्ण के हाथो की जानकर प्रेममयी राधा उसे उनसे छुडाने लगी। इसी समय राधा ने सजीवनी बूटी के समान जीवनदायक तथा बरछी के समान चोट करने वाली दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा, तथा कृष्ण ने राधा की ओर देखा। राधा और कृष्ण की आँखे मिलते ही वह सुलझने वाली पतग की डोर और भी अधिक उलझ गई।

विशेष—१. 'जीवन मूरि सी नेज लिये' मे विरोधाभास अलकार है।

२ गुडी के माध्यम से प्रेमाभिव्यजना की परिपाटी रीतिकाल मे प्रचलित थी। उदाहरण के लिए बिहारी का यह दोहा प्रस्तुत है—

'उडति गुडी लखि ललन की आँगना अँगना माँह।
बौरी लौ दौरी फिरति छुवति छबीली छाँह॥'

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

तुलना—१. हौ झुकि के जु लगी सुरझावन, पूँछत ठोडी गहै है तू कोरी।
ब्रह्म कहै उरझै सुरझै नहि, छूटत गाँठ न टूटत डोरी॥'
—ब्रह्म कवि

२. 'बिसरी सिगरी सुधि ता छन तै,
कछु ऐसिऐ डीठि की फाँस घली।
कढि केसन के सुरझाइवै कौ,
मनमोहन सो उरझाय चली॥'
—द्विजदेव

सवैया

आई सबै ब्रज-गोप लली ठिठकी ह्वै गली जमुना-जल न्हाने।
औचक आइ मिले रसखानि बजावत वेनु सुनावत ताने॥
हा हा करी सिसकी सिगरी मति मैन हरी हियरा हुलसाने।
घूमै दिवानी अमानी चकोर सो ओर सो दोऊ चलै दृग बाने॥१४०॥

शब्दार्थ—व्रज-गोपलली=व्रज की वनिताएँ। औचक=अचानक। मैन=कामदेव। अयानी=परिणाम पर विचार न करने वाली। बाने=वाप।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि जब सारी व्रज-वनिताएँ यमुना मे स्नान करने के लिए आई तो गली मे आकर ठिठक गई, क्योकि उन्हे अचानक ही आनन्द-सागर कृष्ण मिल गया जो वंशी वजाकर मधुर तानें सुनाने लगा। उसे देखकर सब हा-हा करने लगी और सिसकने लगी। उनकी बुद्धि कामदेव ने हरण कर ली और वे अपने मन मे प्रसन्न होने लगी। वे कृष्ण-प्रेम मे चकोर की भाँति ऐसी पागल होकर झूमने लगी कि उसके परिणाम पर भी उन्होने विचार नही किया। दोनो ओर से नयन-वाण चलने लगे।

विशेष—उपमा अलकार।

कवित्त

छूट्यौ गृह काज लोक लाज मन मोहिनी को,
भूल्यौ मन मोहन को मुरली वजाइवौ।
देखो रसखान दिन द्वै मे वात फैलि जै है,
सजनी कहाँ लौ चन्द हाथन दुराइवौ।
कालि ही कलिन्दी कूल चितयौ अच्चानक ही,
दोउन को दोऊ ओर मुरि मुसिकाइवौ।
दोऊ परै पैया दोऊ लेत है वलैया, इन्हे,
भूल गई गैया उन्हे गागर उठाइवौ ॥१४१॥

शब्दार्थ—कहाँ लौ चन्द हाथन दुराइवौ=चन्द्रमा को कहाँ तक हाथो से छिपाया जा सकता है। कलिन्दी-कूल=यमुना का किनारा। पैया=पैर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण-मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जव राधा और कृष्ण का मिलन हुआ तो राधा गृह-कार्यो को तथा लोक-लज्जा को भूल गई। कृष्ण अपनी बाँसुरी वजाना भूल गए। उनके इस मिलन की वात कुछ ही समय मे सव जगह फैल जायेगी, क्योकि चन्द्रमा को कहाँ तक और कव तक हाथो से छिपाया जा सकता है। कल ही यमुना के तट पर अकस्मात् दोनो ने एक दूसरे को देखा, दोनो एक दूसरे की ओर मुड़कर मुस्कुराये। दोनो एक दूसरे के पैर पडे और दोनो ही आपस मे वलैया लेने लगे। इस प्रेम-व्यापार मे दोनो ही इतने तन्मय हुए कि

कृष्ण अपनी गायो को चराना भूल गए और राधा अपनी जल से भरी हुई गागर को उठाना भूल गई ।

विशेष—लोकोक्ति अलंकार ।

सम्पादित—'रसखान-ग्रथावली' मे नही है ।

तुलना—'बसी को बजैवौ नट नागर को भूल गयो,
नागरि को भूल गयो गागर को भरिवौ ।'
—काशिराम

पाठान्तर—'ए रही आजु काल्हि सब लोक लाज त्यागि दोऊ,
सीखे है सबै विधि सनेह सरसाइबो ।
यह रसखानि दिना द्वै मै बात फैलि जैहै,
कहाँ लौ सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो ।
आजु हौ निहार्यौ वीर निपट कलिन्दी-तीर,
दोउन को दोउन सो मुरि मुस्काइबो ।
दोउ परै पैयाँ दोऊ लेत है बलैया, उन्है
भूलि गईं गैया इन्है गागर उचाइबो ।'

सवैया

मजु मनोहर मूरि लखै तबही सबही पतही तज दीनी ।
प्राण पखेरू परे तलफै वह रूप के जाल मैं आस-अधीनी ।।
आँख सो आँख लडी जबही तब सो ये रहै अँसुवा रँग भीनी ।
या रसखानि अधीन भई सब गोप-लली तजि लाज नवीनी ।।१४२।।

शब्दार्थ—मजु=सुन्दर । मूरि=मूल । पतही=प्रतिष्ठा को, पत्तो को ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप-प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उस कृष्ण-रूपी सुन्दर और मनोहर मूल को देखकर सभी गोपियो ने अपनी प्रतिष्ठा-रूपी पत्तो को छोड दिया है, इसी कारण उनके प्राण-रूपी पक्षी रूप-रूपी जाल मे पडे हुए तडप रहे है और जीवन की आशा उसके अधीन हो गई है; अर्थात् गोपियों को जिलाना और मारना कृष्ण के हाथ मे आ गया है । जब से कृष्ण की आँखो से गोपियो की आँखे मिली है, तभी से ये आँखे निरन्तर आँसुओ से भरी रहती है । सारी युवती गोप-कन्याये अपनी लज्जा को छोडकर आनन्द-सागर कृष्ण के अधीन हो गई है ।

सवैया

नन्द को नन्दन है दुखकन्दन प्रेम के फन्दन बाँधि लई हौं।
एक दिना ब्रजराज के मन्दिर मेरी अली इक वार गई हौं॥
हेर्‌यौ लला लचकाइ कै मोतन जोहन की चकडोर भई हौं।
दौरी फिरौ दृग डोरनि मैं हिय मैं अनुराग की वेलि वई हौं॥१४३॥

शब्दार्थ—दुखकन्दन=दुख देने वाला। जोहन की=देखने की। चकडोर =चकई नाम के खिलौने की डोर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रेम के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण बहुत दुख देने वाले है। उन्होने मुझे भी अपने प्रेम के बन्धन मे बाँध लिया है। एक दिन मैं कृष्ण के मन्दिर मे गई थी, और उस दिन प्रथम बार ही मै वहाँ गई थी कि कृष्ण ने लचका कर मेरी ओर देखा, मै तो उनकी दृष्टि के लिए चकई की डोर ही बन गई, अर्थात् जिस प्रकार चकई पर डोर बार-बार लिपट जाती है, उसी प्रकार वे मुझे बार-बार देखते रहे। तभी से मैं आँख की चकडोर से चकई की भाँति दौडी फिर रही हू और मेरे हृदय मे कृष्ण के प्रति प्रेम की बेल फूट निकली है।

विशेष—१ 'दुखकन्दन' का लाक्षणिक प्रयोग है।
२ 'हेर्‌यौ लला लचकाइ कै मोतन, मे शारीरिक प्रेम की ओर संकेत है।
३. रूपक अलकार।

सवैया

तीरथ भीर मे भूलि परी अली छूट गई नेकु धाय की बाँही।
हौ भटकी भटकी निकसी सु कुटुम्ब जसोमति की जिहि घाँही।
देखत ही रसखान मनौ सु लग्यौ ही रह्यौ कब को हियराँही।
भाँति अनेकन भूली हुती उहि द्यौस की भूलनि भूलत नाँही॥१४४॥

शब्दार्थ—अली=सखी। धाय=धात्री, पालन-पोषण करने वाली। घाँही=स्थान, घर। हियराँही=हृदय मे। द्यौस=दिन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण-मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मैं अकस्मात् भूलकर तीर्थ-यात्रियो की भीड मे जा घुसी और धात्री की बाँह मेरे हाथ से छूट गई। मै भटकती हुई उस ओर जा निकली, जहाँ यशोदा जी का घर (डेरा) था। मुझे देखते ही आनन्द-सागर कृष्ण मेरे हृदय से इस प्रकार लग गया जैसे वह न जाने कब का इस हृदय से लगा हुआ

था। मैं अनेक प्रकार की भूल कर चुकी थी, जिन्हे मै भूल गई, पर उस दिन जो भूल कृष्ण-मिलन का कारण हुई थी, वह भुलाए नही भूली जाती।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

समुझै न कछू अजहूँ हरि सो ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै।
नित सास की सीरी उसासनि सौ दिन ही दिन माइ की काति नसै।
चहुँ ओर बवा की सौ सोर सुनै मन मेरेऊ आवति री सकसै।
पै कहा करौ वा रसखानि विलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ॥१४५॥

शब्दार्थ—सोर=बदनामी। सकसै=उलझ। हुलसै=प्रसन्न होना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अन्य गोपी के आकर्षण को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखी! वह आज भी कुछ नही समझती, वरन् कृष्ण को देखकर ब्रज मे आँखे नचा-नचाकर हँसने लगती है। नित्य सासु की ठडी साँसो से उस गोपी की काति दिन-दिन क्षीण होती जा रही है। मै बाबा की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि चारो ओर उसकी बदनामी को सुनकर मेरे मन मे उलझन पैदा हो गई है। लेकिन क्या करूँ, उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर उसका हृदय बार-बार हुलसने लगता है, अर्थात् वह अपनी बदनामी की चिन्ता न करके बराबर कृष्ण मे अनुरक्त है।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे 'हुलसै' शब्द की आवृत्ति भावो मे तथा प्रभाव मे अभिवृद्धि का कारण है।

सवैया

मारग रोकि रह्यौ रसखानि के कान परी झनकार नई है।
लोग चितै चित दै चितए नख तै मन माहि निहाल भई है।
ठोढी उठाइ चितै मुसकाइ मिलाइ कै नैन लगाइ लई है।
जो बिछिया बजनी सजनी हम मोल लई पुनि बेचि दई है ॥१४६॥

शब्दार्थ—नख ते=नख से शिख तक, पूर्ण रूप से। निहाल=प्रसन्न। बिछिया=पैर का एक आभूषण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! आनन्द-सागर कृष्ण ने राधा का मार्ग रोका और उसके कानो मे एक नवीन झकार पडी।

उस झकार को लोगो ने चित्तपूर्वक सुना और राधा भी उसकी झंकार सुनकर पूर्ण रूप से प्रसन्न हो गई। कृष्ण ने उसकी ठोढी उठाकर देखा और उसकी ओर मुस्कराये तथा उन दोनो के नेत्रो से नेत्र मिले। हे सजनी ! जो बजने वाली बिछिया हमने खरीदी थी, अर्थात् हमारी क्रीतदासी थी, उसीने हमे कृष्ण के हाथ बेच डाला। अर्थात् उसी की ध्वनि सुनकर कृष्ण हमारे पास आते रहे और हमारा प्रेम अगाढ़ होता रहा।

सवैया

जमुना-तट बीर गई जब ते तब तें जग के मन माँझ तहौ।
व्रज मोहन गोहन लागि भटू हौं लटू भई लूट सी लाख लहौ।
रसखान लला ललचाय रहे गति आपनी हौ कहि कासो कहौ।
जिय आवत यो अबतों सब भाँति निसक ह्वै अक लगाय रहौ ॥१४७॥

शब्दार्थ—वीर=सखी। तहौ=जलती हूँ, ईर्ष्या का कारण बन गई हूँ। गोहन=साथ। भटू=सखी। लटू भई=मुग्ध हो गई। लूट सी लाख लहौं= लाखो की सम्पत्ति (प्रेम-सम्पदा) लूट मे प्राप्त कर ली। अंक=हृदय।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब से मै यमुना-तट पर गई हूँ और वहाँ कृष्ण से मिलन हुआ है, तब से सारा ससार मुझ से ईर्ष्या करने लगा है। हे सखि ! मैं कृष्ण के साथ रहकर इतनी मुग्ध हो गई कि लाखो की प्रेम-सम्पत्ति मुझे लूट मे ही मिल गई। तब से आनन्द-सागर कृष्ण मुझे अपनी ओर इतना अधिक आकृष्ट कर रहे है कि मै अपनी इस अवस्था का वर्णन किसी से भी नही कर सकती। अब तो मेरे मन मे यही आता है कि मैं ससार के और समाज के सारे बन्धनो को छोडकर तथा निर्भय होकर कृष्ण के हृदय से लगी रहूँ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

औचक दृष्टि परे कहुँ कान्ह जू तासो कहै ननदी अनुरागी।
सो सुनि सास रही मुख मोहि जिठानी फिरै जिय मैं रिस पागी।
नीके निहारि कै देखे न आँखिन हौ कबहूँ भरि नैन न जागी।
मो पछितावो यहै जु सखी कि कलक लग्यौ पर अक न लागी ॥१४८॥

शब्दार्थ—औचक=अचानक । अनुरागी=प्रेमिका । रिस=क्रोध । भरि नैन न जागी=आँखो मे छवि भरकर जागने का अवसर भी नही मिला । अक=हृदय ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! अचानक ही कृष्ण मुझे दिखाई पड गये और मै उन्हे देखने लगी । इसी पर ननद ने मेरी यह बदनामी फैला दी कि मै कृष्ण मे अनुरक्त हूँ और उनकी प्रेमिका हूँ । इस बदनामी को सुनकर सासु ने मुझ से मुँह मोड लिया है और जिठानी क्रोध मे भर कर फिर रही है । हे सखि ! तू अच्छी प्रकार से मेरी आँखों मे झाँक कर देख, तब तुझे पता चलेगा कि मै कभी भी इन आँखो मे कृष्ण के रूप की छवि भरकर नही जागी हूँ । हे सखि ! मुझे केवल यही पछतावा है कि कृष्ण-प्रेम का मुझे कलक तो लग गया है, पर मै कभी भी उसके हृदय से नही लग पाई हूँ ।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे यमक अलकार ।

तुलना—'लागे कलकहुँ अक लगे नहि तो सखि भूल हमारी महा है ।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

सास की सास नही चलिवो चलियै निसिद्यौस चलावै जिही ढग ।
आली चवाव लुगाइन के डर जाति नही न नदी ननदी-सग ।
भावती औ अनभावती भीर मै छ्वै न गयौ कबहूँ अंग सो अग ।
घैरु करै घरुहाईं सवै रसखानि सौ मो सौं कहा कै भयो रग ।।१४६।।

शब्दार्थ -सासनही=आदेश के अनुसार । निसिद्यौस=रात-दिन । चबाव=बदनामी की चर्चा । भावती=प्रिय । अनभावती=अप्रिय । घैरु=बदनामी । घरुहाईं=बदनाम करने वाली स्त्रियाँ । रग=प्रेम ।

अर्थ – कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का उल्लेख करते हुए कहती है कि यद्यपि मै सासु के आदेश के अनुसार ही चलती हूँ । वह रात-दिन जिस प्रकार चलाती है, उसी प्रकार चलती हूँ, अर्थात् हर प्रकार से प्रत्येक समय उसकी आज्ञा का पालन करती हूँ । अन्य नारियो के द्वारा बदनामी की चर्चा के डर से मै अपनी ननदी के साथ नदी के किनारे भी नही जाती । प्रिय तथा अप्रिय भीड मे भी मेरा शरीर कभी भी उसके शरीर से छुआ नही है । फिर भी बदनाम करने वाली सभी स्त्रियाँ मेरी बदनामी

करती है। आनन्द-सागर कृष्ण के साथ मेरा प्रेम क्या हुआ मानो एक आफत ही मैंने मोल ले ली।

विशेष—इन पंक्तियों में प्रेमिका गोपी का भोलापन अंकित है।

सवैया

घर ही घर घैरु घनो घरिही घरिहाइनि आगैं न साँस भरौं।
लखि मेरियैं ओर रिसाहि सबै सतराहि जौं सौं हैं अनेक करौं।
रसखानि तो काज सबै ब्रज तौ रो मेबैरी भयौ कहि कासों लरौं।
बिनु देखे न क्यों हूँ निमेषै लगैं तेरे लेखें न हूँ या परेखें मरौं ॥१५०॥

शब्दार्थ—घरही घर=प्रत्येक घर में। घैरु=बदनामी की चर्चा। घरिही=घड़ी भर में ही। घरिहाइनि=बदनामी करने वाली। सौंहैं=सौगन्ध। तो काज=तेरे कारण। निमेषै=पलक। परेखे=पछतावे।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से अपनी विवश स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है कि तुम्हारे प्रेम के कारण प्रत्येक घर में घड़ी भर में ही मेरी बहुत अधिक बदनामी फैल गई है जिसके कारण मैं बदनाम करने वाली स्त्रियों के सामने साँस भी नहीं भर सकती। यदि मैं अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अनेक सौगन्ध खाती हूँ तो वे भृकुटी चढाकर तथा मेरी ओर देखकर क्रोध करती हैं। हे आनन्द-सागर कृष्ण। तेरे कारण सारा ब्रज मेरा शत्रु बन गया है। तुम्ही बताओ अब मैं किस-किस से लड़ती फिरूँ। तुम्हारे देखे बिना और तुम्हें देखते समय मेरी पलक नहीं लगती, अर्थात् न तो मुझे तुम्हारे वियोग में चैन है और न तुम्हारे मिलन में। इसी पछतावे में मैं मर रही हूँ।

विशेष—१. प्रेमजन्य विवश स्थिति का मार्मिक वर्णन है।
२ प्रथम पंक्ति में अनुप्रास और यमक का सुन्दर प्रयोग है।
३. अन्तिम पंक्ति में विरोधाभास अलंकार ने भावों के प्रभाव को द्विगुणित कर दिया है।

तुलना—१. 'देखे निरमोही के बिसे में 'सेख' तोहि पिय,
लेखे नाहि तेरे सु परेखे माहि मरिये।'

—शेख आलम

२. 'सबही सहौं नाडि कहौं कछु पै
तुव लेखे नहीं या परेखे मरौं।'

—हरिश्चन्द्र

दोहा

स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यौ रसखानि ।
भई दिवानी पानि करि, प्रेम-मद्य मन मानि ॥१५१॥

शब्दार्थ—स्याम=काला, कृष्ण । सघन=गहन, प्रेमपूर्ण । रस=जल, आनन्द । दिमानी=दिवानी । पानि करि=पीकर । प्रेम-मद्य=प्रेम रूपी शराब । मन मानि=छिककर, पूर्ण तृप्त होकर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! गहन बादल रूपी प्रेमपूर्ण श्याम कृष्ण ने मेरे ऊपर जल रूपी आनन्द की वर्षा की और मैंने छिककर प्रेम रूपी शराब पी । उस शराब को पीकर मै कृष्ण दिवानी हो गई ।

भाव यह है कि मै कृष्ण के प्रेम मे मदोन्मत्त बन गई हूँ ।

विशेष—श्लेष और रूपक अलंकार ।

सवैया

कोउ रिझावन कौ रसखानि कहै मुकतानि सो माँग भरौगी ।
कोऊ कहै गहनो अग-अग दुकूल सुगन्ध पर्यौ पहिरौगी ॥
तू न कहै न कहै तौ कहौ हौ कहू न कहौ तेरे पाँय परौगी ।
देखहि तू यह फूल की माल जसोमति-लाल निहाल करौगी ॥१५२॥

शब्दार्थ—मुकतानि सो=मोतियो से । दुकूल=वस्त्र । निहाल=प्रसन्न ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि । आनन्द-सागर कृष्ण को रिझाने के लिए कोई गोपी तो यह कहती है कि मै अपनी भौहो मे मोतियो को पिरोऊँगी, कोई कहती है कि मै अपने अग-अग पर आभूषण पहनूँगी और कोई कहती है कि मै अपने वस्त्रों को सुन्दर एव मादक गन्ध से परिपूर्ण कर लूँगी । यदि तू किसी से मेरी बात न बताये और इस बात का वचन दे तो मै तुझे बताये देती हूँ कि मै तो इस फूल-माला से ही यशोदा-पुत्र कृष्ण को प्रसन्न कर लूँगी ।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण को फूल-माला ही सर्वोत्तम प्रिय है, किन्तु इस बात को अन्य गोपियाँ नही जानती ।

विशेष—तृतीय पक्ति मे शब्द-योजना अनुपम है ।

सवैया

प्यारी पै जाइ किती परि पाइ पची समझाइ सखी की सौ बैना ।
वारक नन्दकिशोर की ओर कह्यौ दृग छोर की कोर करै ना ।
ह्वै निकस्यौ रसखान कहूँ उत डीठ पर्‌यौ पियरो उपरैना ।
जीव सो पाय गई पचिवाय कियौ रुचि नेह गये लचि नैना ॥१५३॥

शब्दार्थ—कितौ=कितना ही । परि पाउ=पैरो मे पडकर । पची समझाई=समझाकर थक गई । सौ=सौगन्ध । वारक=एक वार । डीठि पर्‌यौ=दिखाई दिया । पियरो=पीला । उपरैना=वस्त्र । पचिवाय=वात रोग शान्त हुआ । गये लचि नैना=नेत्र लज्जा के कारण झुक गये ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति आकृष्ट किसी अन्य गोपी की प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैंने अपनी उस प्रिय सखी के पास जाकर और उसके पैरो में पडकर यह वात इतनी वार कही कि मैं समझाते-समझाते थक गई । मैंने उससे कहा कि एक वार भी तुम कृष्ण की ओर अपनी आँखों की पलकें न उठाना । परन्तु उसकी विवशता यह है कि जब भी कृष्ण वाहर निकलते हैं और उनके पीले वस्त्र पर उसकी दृष्टि पड़ती है, तभी उसमे नवीन जीवन का-सा संचार होता हो, उसका वात रोग शान्त हो जाता है वह कृष्ण के प्रति मनोहर प्रेम का प्रदर्शन करने लगती है और इसी कारण लज्जा से उसके नेत्र झुक जाते है ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है ।

सवैया

सखियाँ मनुहारि कै हारि रही भृकुटी को न छोर लली नचयौ ।
चहुँधा घन घोर नयौ उनयौ नभ नायक ओर चितै चितयौ ।
विकि आप गई हिय मोल लियौ रसखान हितू न हियो रिझयौ ।
सिगरो दु ख तीछन कोटि कटाछन काटि कै सौतिन वाँटि दियौ ॥१५४॥

शब्दार्थ—मनुहारि कै=अनुनय-विनय करके । नचयौ=नीचा किया । उनयौ=घिर आया । नायक=श्रीकृष्ण से तात्पर्य है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से किसी अन्य मानवती गोपी का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सारी सखियाँ उस मानवती गोपी की

अनुनय-विनय करती हुई थक गईं, पर उसके क्रोध मे, तनिक भी अन्तर नही आया। अचानक चारो ओर से आकाश मे नवीन घन घिर आया। इस उद्दीपक वातावरण के कारण उस गोपी का ध्यान कृष्ण की ओर गया। वह स्वय ही बिक गई और उसके प्रियतम कृष्ण ने उसे मोल ले लिया, अर्थात् वह पूर्णतया उसके वश मे हो गई। इस प्रकार कृष्ण ने अन्य प्रेमिकाओ के हृदय को रिझा लिया। तब उस मानवती गोपी ने अपना सारा दुख अपने तीक्ष्ण कटाक्षो के द्वारा दूर करके अपनी सौतो मे बाँट दिया; अर्थात् उसे कृष्ण के साथ देखकर अन्य सपत्नी गोपियो को दु ख हुआ।

विशेष—१ प्रहर्षण अलकार।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

खेलै अलीजन के गन मैं उत प्रीतम प्यारे सो नेह नवीनो।
बैननि बोध करै इत कौ उत सैननि मोहन को मन लीनो।
नैननि की चलिवी कछु जानि सखी रसखानि चितैवे कौ कीनो।
जा लखि पाइ जभाइ गई चुटकी चटकाइ विदा करि दीनो ॥१५५॥

शब्दार्थ—अलीजन=सखियो का समूह। बैननि=वचनो से। चलिवी=चलना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी क्रियाविदग्धा गोपी का वर्णन करती हुई कहती है कि वह सखियो के समूह मे खेल रही है, पर उस ओर प्रियतम कृष्ण के साथ उसका नवीन अनुराग हुआ था। वह वचनो से तो इस ओर का बोध करा रही थी, परन्तु सैनो से उस ओर चलने का सकेत करके कृष्ण के मन को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। हे सखि! उसकी आँखों को चलता हुआ देखकर आनन्द-सागर कृष्ण ने उसकी ओर ध्यान दिया। कृष्ण को अपनी ओर आकर्षित देखकर उसने जँभाई ली और चुटकी बजाकर उसे विदा किया, अर्थात् सकेत से ही अभिसार-स्थल को बता दिया।

विशेष—जो नायिका चातुर्य से कार्य करके अपनी इच्छा को पूर्ण करने मे—नायक को सकेत स्थल पर ले जाने मे—सफल होती है, उसे क्रियादिराधा कहते है।

तुलना—१. 'कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे मौन मे कहत है नयन ही सो बात ॥'

२ 'ललन-चलनु सुनि पलनु मैं अँसुवा झलके आइ ।
भई लखाइ न सखिनु हूँ झूठै ही जमुहाइ ।।'

—विहारी

सवैया

मोहन के मन भाइ गयौ इक भाइ सो ग्वालिनै गोधन गायौ ।
ताको लग्यौ चट, चौहट सो दुरि औचक गात सो गात छुवायौ ।।
रसखानि लही इनि चातुरता चुपचाप रही जव लो घर आयौ ।
नैन नचाइ चितै मुसकाइ सु ओट ह्वै जाइ अँगूठा दिखायौ ।।१५६।।

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत । चट=मन । औचक=अचानक ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से प्रेमलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि जव ग्वालिन ने मधुर स्वर से गोचारण का गीत गाया तो वह कृष्ण को वहुत अच्छा लगा और साथ ही गाने वाली गोपी के प्रति आकृष्ट हो गये। ग्वालिन ने अचानक लज्जा के कारण अपना शरीर अपने शरीर मे छिपा लिया; अर्थात् वह लज्जा के कारण सिमट गई । रसखान कहते हैं कि उसने इतनी चतुरता से कार्य किया कि जब तक उसका घर नही आया तव तक तो वह चुपचाप रही और जव उसका घर आ गया तो वह आँखे नचाकर, मुस्कराकर और ओट मे होकर कृष्ण को अँगूठा दिखाकर अपने घर मे घुस गई ।

विशेष—अनुभावो की सुन्दर योजना है ।

सवैया

कान परे मृदु वैन मरु करि मौन रही पल आधिक साधे ।
नद ववा घर को अकुलाय गई दधि लै विरहानल दाधे ।
पाय दुहूनिनि प्राननि प्रान सो लाज दवै चितवै दृग आधे ।
नैननि ही रसखान सनेह सही कियौ लेउ दही कहि राधे ।।१५७।।

शब्दार्थ—मरु करि=कठिनाई से । आधिक=आधा । विरहानल दाधे=विरह की आग से दग्ध होकर । दवै=भयभीत होकर । चितवै=देखना ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के प्रेम की आकुलता का वर्णन करती हुई कहती है कि जब राधा के कान मे कृष्ण के सुन्दर शब्द पडे तो

वह कठिनता से आधे पल तक तो चुपचाप रही, फिर अकुलाकर और विरह की आग से दग्ध होकर नद बाबा के घर गई। वहाँ पर उसे कृष्ण मिले। वे दोनो एक-दूसरे को अपने प्राणो के समान प्यार करते थे। दोनो ने एक-दूसरे को आधी दृष्टि से देखा और फिर वे लज्जा के कारण भयभीत हो गये। इस प्रकार उन दोनो ने अपना प्रेम आँखो के द्वारा ही पक्का कर लिया। तब 'दही लो' राधा ने यह आवाज लगानी शुरू कर दी।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

केसरिया पट, केसरि खौद, बनौ गर गु ज को हार ढरारो।
को हौ जू आपनी या छवि सो जु खरे अँगना प्रति डीठि न डारो।
आनि विकाऊ से होइ रहे रसखानि कहै तुम्ह रोकि दुवारो।
'है तौ विकाऊँ जौ लेत बनै हँसबोल तिहारो है मोल हमारो' ॥१५८॥

शब्दार्थ—पट=वस्त्र। खौर=तिलक। ढरारो=सु दर। अँगना=नारी। हँसबोल=हँस कर बाते करना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह केसरिया रग के वस्त्र धारण किए हुए है, मस्तक पर केसरी रग का तिलक लगा हुआ है, गले मे गु जो का सुन्दर हार पहने हुए है। इस व्रज मे कौन ऐसी नारी है जो इस शोभा को देखकर इस पर अपनी दृष्टि नही डालेगी, अर्थात् सभी नारियाँ इस शोभा को देखे बिना नही रह सकेगी। यदि तुम्हारा द्वार रोककर वह तुमसे यह कहे कि मै बिकने के लिए हूँ और मेरा मूल्य तुम्हारा हँसकर बात करना है तो तुम भी अन्य जैसी हो जाओगी, अर्थात् अपनी सुधि-बुधि भूलकर उनके सामने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दोगी।

सवैया

एक समय इक ग्वालिनि को व्रजजीवन खेलत दृष्टि पर्यौ है।
बाल प्रवीन सकै करि कै सरकाइ कै मौरन चीर धर्यौ है॥
यौ रस ही रस ही रसखानि सखो अपनो मन भायो कर्यौ है।
नन्द के लाडिले ढाँकि दै सीस इहा हमरो बरु हाथ भर्यौ है ॥१५९॥

शब्दार्थ—व्रजजीवन=कृष्ण। सकै करि कै=बलपूर्वक।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से मिलन-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! एक समय एक गोपी ने कृष्ण को खेलते हुए देखा। वह वाला था और कृष्ण चतुर थे, अत कृष्ण ने वलपूर्वक अपने सिर से मोर-मुकुट उतार कर उसके सिर पर रख दिया। हे सखि ! इस प्रकार कृष्ण ने आनन्द-पूर्वक अपनी मनोकामना पूर्ण की। तव उस गोपी ने कहा—हे नन्द के प्रिय पुत्र, हमारा सिर ढँक दो, क्योकि हमारा हाथ तो खाली नही है, अत हम स्वयं अपना सिर ढँकने मे असमर्थ है।

पाठातर—इस सवैया की दूसरी पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—
'वाल प्रवीन प्रवीनता कै सरकाय काँधे लै चीर धर्यौ है।'

सवैया

मै रसखान की खेलनि जीति कै मालती माल उतार लई री।
मेरीये जानि कै सूधि सबै चुप ह्वै रही काहु करी न खई री।
भावते स्वेद की वास सखी ननदी पहिचानि प्रचड भई री।
मैं लखिवी लखि कै अँखियाँ मुसकाय लचाय नचाय दई री ॥१६०॥

शब्दार्थ—खेलनि जीति कै=खेल मे जीत कर। मेरीये=मेरी ही है। सूधि=भोली। खई=झगडा। भावते=प्रेम के। स्वेद=पसीना। प्रचड=अत्यन्त क्रुद्ध।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैंने खेल मे आनन्द-सागर कृष्ण को जीत कर उसकी मालती की माला लेकर स्वय पहन ली। मेरी भोली सखियो ने यह समझकर कि यह माला मेरी ही है, मुझसे कोई झगडा नही किया, अर्थात् किसी प्रकार के व्यग्य नही कसे। उस माला मे से प्रेम-पसीने की सुगधि की पहिचान कर मेरी ननद मुझ पर अत्यन्त क्रुद्ध हुई। तव मैंने हँसकर, आँखो को नीचा करके और नचाकर, अर्थात् अपनी आँखो से अपने प्रेम-भाव को सूचित करके वह माला मैने उन्हे ही वापिस कर दी।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

व्रषभान के गेह दिवारी के द्यौस अहीर अहीरनि भीर भई।
जितही तितही धुनि गोधन की सब ही व्रज ह्वै रह्यौ राग मई ॥

रसखान तबै हरि राधिका यो कछु सैननि ही रस बेल वई।
उहि अंजन आँखिनि आँज्यौ भटू इन कुंकुम आड लिलार दई ॥१६१॥

शब्दार्थ—द्यौस=दिन। राग मई=रागपूर्ण, प्रेमानन्द से परिपूर्ण। वई=उत्पन हुई। उहि=कृष्ण ने। भटू=सखी। आड=तिलक। लिलार=मस्तक।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वृषभानु के घर दिवाली के दिन अहीर और अहीरनियो की भारी भीड हुई। सब ओर से गोचारण के गीत गाये जा रहे थे जिनके कारण समूचा व्रज प्रेमानन्द से परिपूर्ण हो रहा था। उसी समय कृष्ण और राधा के मध्य नेत्रो के कुछ ऐसे सकेत हुए जिनके कारण उनके हृदयो मे आनन्द देने वाली प्रेम-वेलि उत्पन्न हुई। अपने प्रेम को साकेतिक रूप से प्रकट करने के लिए कृष्ण ने अपनी आँखो मे अजन लगाया और राधा ने अपने मस्तक पर कुंकुम का तिलक लगाया। अंजन लगा कर कृष्ण ने सकेत से राधा को यह बताया कि मै तुम्हे अजन की भाँति सदैव अपनी आँखो में रक्खूँगा, और तिलक लगाकर राधा ने यह प्रकट किया कि तुम्हारे कारण ही मेरा सौभाग्य बना रहेगा।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

बात सुनी न कहूँ हरि की, न कहूँ हरि सो मुख बोल हँसी है।
काल्हि ही गोरस बेचन कौं निकसी व्रजवासिनि वीच लसी है॥
आजु ही बारक 'लेहु दही' कहि कै कछु नैनन मैं बिहसी है।
बैरिनि वाहि भई मुसकानि जु वा रसखानि के प्रान बसी है॥१६२॥

शब्दार्थ—काल्हि ही=कल ही। गोरस=दही। लसी=सुशोभित होना। बारक=एक बार।

अर्थ—कृष्ण-प्रेम मे व्याकुल किसी गोपी का वर्णन एक गोपी अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि! उसने तो कभी कृष्ण की बात भी नही सुनी, न कभी उसने हँसकर कृष्ण से बाते की हैं। यह तो कल ही दही बेचने के लिए निकली थी और व्रजवासियो के मध्य सुशोभित हो रही थी। आज

ही वह एक वार यह कह कर कि 'दही लेओ' वह आँखो ही आँखो मे कुछ मुसकरा दी थी। उसकी वही मुसकराहट उसके लिए वैरिन बन गई और वह आनन्द-सागर कृष्ण के प्राणो मे बस गई, अर्थात् कृष्ण उस पर मुग्ध हो गये।

सवैया

ग्वालिन द्वैक भुजान गहै रसखानि कौ लाई जसोमति पाहै।
लूटत है कहै ये वन मैं मन मै कहै ये सुख-लूट कहाँ है॥
अग ही अंग ज्यौं ज्यौं ही लगैं त्यौं त्यौं ही न अग ही अग समाहै।
वे पछलैं उलटे पग एक तौ वै पछलैं उलटे पग जाहै॥१६३॥

शब्दार्थ—पाहै=पास। न अग ही अग समाहै=अपने अगो मे नहीं समाती है, अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न होती है।

अर्थ—दो-एक ग्वालिने कृष्ण को बाँहो से पकड़कर यशोदा जी के पास ले गईं और उनसे कृष्ण की शिकायत करने लगी कि इनसे पूछो कि ये वन मे और मन मे हमे लूटते है। भला इनसे इनको क्या सुख मिलता है? हमारे अग से ज्यो-ज्यो इनका शरीर छूता है तो ऐसे आनन्द का अनुभव होता है कि हम अपने अंगो मे ही नही समाती, अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न होती है। गोपियाँ यदि एक पग लौटती है तो ये लौटकर उनके मार्ग को घेर लेते है।

विशेष—उपालम्भ के माध्य से कृष्ण के प्रति गोपियो के अमित प्रेम का वर्णन है।

सवैया

दूर ते आई दुरे ही दिखाइ अटा चढि जाइ गह्यौ तहाँ आरौ।
चित्त कहूँ चितवै कितहूँ, चित्त और सो चाहि करै चखवारौ॥
रसखानि कहै यहि वीच अचानक जाइ सिढी चढि खास पुकारौ।
सूखि गई सुकुवार हियो हनि सैन पटू कह्यौ स्याम सिधारौ॥ १६४॥

शब्दार्थ—चितवै=देखना। सिढी=सीढी। भटू=सखी।

अर्थ—दूर से आते हुए कृष्ण को दिखाकर किसी गोपी ने अपनी सखी से कहा कि अटारी पर चढ कर देखो कि कृष्ण कहाँ आ गया है। यह सुन कर वह सखी ऊपर गई, पर उसका मन कही था और वह देख किसी और ओर रही थी (क्योकि उसके मन मे डर था कि घर के लोग उसे देख न ले।) रसखान कहते है कि जब वह कृष्ण को देख रही थी तो इसी बीच अचानक सिढ़ी

पर चढ़कर उसकी सासु ने उसे आकर पुकारा। इस भय से कि कहीं सासु ने उन्हे देख तो नही लिया है, वह कोमलागी भय के मारे सूख गई, उसका हृदय धडकने लगा। उसकी भयग्रस्त दशा को देखकर उसकी सखी ने आँखों के इशारे से ही बता दिया कि कृष्ण चला गया है, अत. डरने की कोई बात नही है।

पाठान्तर—इस सवैया की द्वितीय पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'चित्त कहूँ चितवै कितहूँ चित चोर सो चाहि करैं चख चारौ।'

तुलना—'ताही समै औचक ही चढि परकारी 'सेख'
सासु आनि अनजानि नीचे ते पुकारिये।
मूरछि मृगाछी गिरी हियो हनि हाथनि सो।
नैनन सो कह्यौ हा हा स्याम जू सिधारिये॥'

—शेख आलम

दोहा

बक बिलोकनि हसनि मुरि, मधुर बैन रसखानि।
मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिये रसखानि॥ १६५॥

शब्दार्थ—बक बिलोकनि=वक्र दृष्टि। हरखि=हर्षित होकर।

अर्थ—मिलन का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि वक्र दृष्टि से मुड़कर हँसते हुए और मधुर वचन बोलते हुए आनन्द सागर कृष्ण हृदय मे हर्षित होकर राधा से इस प्रकार मिले मानो रसिक और रसराज दोनो मिल गये हों।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलकार।

प्रेम-वेदना

सवैया

वह गोधन गावत गोधन मैं जब ते इहि मारग ह्वै निकस्यौ।
तब ते कुलकानि कितीय करौ यह पापी हियो हुलस्यौ हुलस्यौ॥
अब तौ जु भई सु भई नहि होत है लोग अजान हँस्यौ सुहँस्यौ।
कोउ पीर न जानत जानत सो तिनके हिय मै रसखानि बस्यौ॥१६६॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत। गोधन मैं=गऊओ के समूह मे। कितीय करौ=कितना ही करे, कितना ही रोके।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने आकर्षण को व्यक्त करती हुई कहती है कि जब से कृष्ण गोचारण के गीत गाता हुआ गौओं के समूह के साथ इस मार्ग से निकला है, तब से यह कुल की मर्यादा चाहे जितना रोकती है, पर यह पापी हृदय बार-बार हुलस रहा है। अब तो जो हो गया है, सो हो गया है, वह टल नहीं सकता, चाहे अज्ञानी लोग कितना ही मुझ पर हँसे, मेरे हृदय की वेदना को कोई नहीं जानता, केवल वही जान सकता है जिसके हृदय में आनन्द-सागर कृष्ण बसा हुआ है, अर्थात् जिसे कृष्ण से प्रेम है।

विशेष—प्रथम पंक्ति में यमक अलंकार है।

सवैया

वा मुसकान पै प्रान दियौ जिय जान दियौ वहि तान पै प्यारी।
मान दियौ मन मानिक के संग वा मुख मंजु पै जोबनवारी॥
वा तन कौं रसखानि पै री तन ताहि दियौ नहि ध्यान बिचारी।
सो मुंह मोरि करी अब का हुए लाल लै आज समाज मे ख्वारी॥१६७॥

शब्दार्थ—मंजु=सुन्दर। आन=मर्यादा। ख्वारी=बदनामी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैंने कृष्ण की मुस्कराहट पर अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया था। उसकी मधुर बाँसुरी की तान पर अपने जी को न्यौछावर कर दिया था। अपने मन रूपी मोती के साथ ही मैंने अपना सम्मान भी उन्हें सौंप दिया था; अर्थात् प्रेम के कारण जो बदनामी होगी, उसकी भी मैंने तनिक भी चिन्ता नहीं की थी। उसके सुन्दर मुख पर मैंने अपने यौवन को न्यौछावर कर दिया था। उसके शरीर पर मैंने अपना शरीर वार दिया था। इस आत्म-समर्पण में मैंने अपनी कुल मर्यादा का भी विचार नहीं किया था। जिस कृष्ण के लिए समाज में मेरी बदनामी हुई है, वह कृष्ण अब मुझसे मुँह मोड़कर चला गया है। यह बड़े ही दुख की बात है।

विशेष—रूपक अलंकार।

सवैया

मोहन सो अटक्यौ मनु री कल जाते परै सोई क्यौं न बतावै।
व्याकुलता निरखे बिन मूरति भागति भूख न भूषन भावै॥

देखे ते नेकु सम्हार रहै न तबै झुकि के लखि लोग लजावै।
चैन नही रसखानि दुहूँ विधि भूली सबै न कछू बनि आवै ।। १६८।।

शब्दार्थ—कल जातें परै=जिससे सुख हो। नेकु=तनिक।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरा मन कृष्ण से लग गया है जिसके कारण मैं सदैव व्याकुल रहती हूँ। मेरी यह व्याकुलता नष्ट हो और मुझे सुख मिले, ऐसी विधि मुझे कोई नही बताता। कृष्ण की मूर्ति को देखे बिना मुझे व्याकुलता रहती है। भूख भाग जाती है, अर्थात् कुछ भी खाने को मन नही करता और न आभूषण ही मुझे अच्छे लगते है। किन्तु जब मैं उन्हे देख लेती हूँ तो अपने को तनिक भी नही सँभाल पाती, तब उसके सामने मुझे झुकी देखकर लोग मुझे लज्जित करते है। रसखान कहते है कि मुझे दोनो प्रकार से चैन नही है। उनके देखने पर और न देखने पर मैं सब कुछ भूल जाती हूँ और उस समय मुझे कोई उपाय नही सूझता।

सवैया

भई बावरी ढूँढति वाहि तिया अरी लाल ही लाल भयौ कहा तेरो।
ग्रीवा ते छूटि गयौ अबही रसखानि तज्यौ घर मारग हेरो ।।
डरियै कहै माय हमारी बुरी हिय नेकु न सूनो सहै छिन मेरो।
काहे को खाइबो जाइबो है सजनी अनखाइबो सीस सहेरो ।। १६९ ।।

शब्दार्थ—लाल=रत्न। लाल=कृष्ण। ग्रीवा=गर्दन, हृदय। माय=सासु। अनखाइबो=डॉट-फटकार। सहेरो=सहना ही पडेगी।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के विरह मे पागल सी हो गई है। उसकी सखी उससे उस स्थिति का कारण पूछती है तो वह कुशलता से और बाते उसे बताती है। दूसरी सखी पूछती है कि हे सखि ! तुम पागल सी बनकर किसको ढूँढ रही हो ? वह उत्तर देती है—मेरे हार का रत्न टूट कर गिर गया है। वह अभी-अभी मेरी गर्दन से छूट कर गिर गया है। मैंने घर तक का मार्ग ढूँढ लिया है, लेकिन वह मिला ही नही। यह सुन कर उसकी सखो कहती है—तब इसमे डरने की क्या बात है ? वह उत्तर देती है—मेरी सासु बहुत बुरी है, वह मेरे हृदय को क्षणभर के लिए भी सूना नही देख सकती। अब तो उसका पाना-पाना क्या है। अब तो मुझे सासु की डॉट-फटकार सहनी ही पड़ेगी।

विशेष—१ वाग्वैदग्ध्य की सुन्दर योजना है।
२. लाल शब्द के प्रयोग मे यमक अलंकार है।

सवैया

मो मन मोहन कों मिलि कै सवहीं मुसकानि दिखाइ दई।
वह मोहनी मूरति रूपमई सवही चितई तव हौ चितई॥
उन तौ अपने अपने घर की रसखानि चली विधि राह लई।
कछु मोहि को पाप पर्यौ पल मैं पग पावत पौरि पहार भई॥ १७०॥

शब्दार्थ—रूपमई=सौन्दर्य युक्त। चितई=देखना। पग पावत पौरि पहार भई=पैदल अपने घर तक पहुँचना पहाड वन गया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखि! मेरा मन जव मोहन के मन से मिला; अर्थात् जव मुझे कृष्ण के प्रति प्रेम हुआ तो सारी सखियाँ मुस्करा दीं। वास्तविकता तो यह है कि कृष्ण की सौन्दर्यमयी मूर्ति को जव सव अन्य सखियों ने देखा था तो मैंने भी देखा था। रसखान कहते हैं कि वे सव तो अपने-अपने घर अच्छी तरह से पहुँच गई, पर मुझे ही पल भर मे यह पाप लगा है कि पैदल अपने घर तक पहुँचना मेरे लिए पहाड वन गया, अर्थात् वहुत कठिन हो गया।

सवैया

डोलिवो कुजनि कुजनि को अरु वेनु वजाइवो वेनु चरैवो।
मोहिनी ताननि सो रसखानि सखानि के सग को गोवन गैवो॥
ये सव डारि दिये मन मारि विसारि दयौ सगरौ सुख पैवो।
भूलत क्यो करि नेहन ही को 'दही' करिवो मुसकाई चितैवो॥ १७१॥

शब्दार्थ—वेनु=वेणु वशी। मोहिनी=मोहित करने वाली। रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण। गोधन=गोचारण के गीत।

अर्थ—एक गोपी अपने हृदय मे उमड़े हुए कृष्ण-प्रेम का वर्णन अपनी सखी से करती है कि आनन्द-सागर कृष्ण का कुन्ज-कुन्ज मे घूमना, वशी वजाना, गौएँ चराना, मोहित करने वाली ताने सुनाना, अपने साथियो के साथ गोचारण के गीत गाना, प्रेम से दही माँगना और मुस्करा कर देखना कैसे भूला जा सकता है? अर्थात् कृष्ण की ये सव क्रीड़ाएँ मेरे मन मे गड़ गई हैं। इन्होने

मेरे मन को अपने वश मे कर लिया है और इन्ही के कारण मेरा सारा प्राप्त किया हुआ सुख छू-मन्तर-हो गया है।

सवैया

प्रेम मरोरि उठै तब ही मन पाग मरोरनि मे उरझावै।
रूसे से ह्वै दृग मोसो रहै लखि मोहन मूरति मो पै न आवै॥
बोले बिना नहि चैन परै रसखानि सुने कल श्रौनन पावै।
भौह मरोरिबो री रूसिबो झुकिबो पिय सो सजनी सिखरावै॥१७२॥

शब्दार्थ—पाग मरोरनि मे=पगडी के घुमावो मे। रूसे से=रूठे हुए से। श्रौनन=कान।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! जब भी वह अपनी पगड़ी के घुमावो मे मेरे मन को उलझाता है, तभी मेरा प्रेम सजग उठता है। मेरे नेत्र मुझसे रूठे हुए से रहते है और वे कृष्ण को देख कर मेरे वश मे नही रहते। कृष्ण की बाते सुने बिना मुझे चैन नही पडता, तथा उसकी बाते सुनने पर कानो को आनन्द प्राप्त होता है। यह सुन कर उसकी सखी ने प्रियतम से भौह मोडने की, वक्र दृष्टि से देखने की, रूठने की तथा फिर मान जाने की शिक्षा दी।

विशेष—अनुभावो की सुन्दर योजना है।

सवैया

बागन मे मुरली रसखान सुनी सुनिकै जिय रीझ पचैगो।
धीर समीर को नीर भरी नहि माइ झकै औ बबा सकुचैगो॥
आली दुरेधे को चोटनि नैम कहौ अब कौन उपाय बचैगो।
जायबी भाँति कहाँ घर सो परसों वह रास परोस रचैगो॥१७३॥

शब्दार्थ—रीझि पचैगो=प्रेम के वशीभूत हो जायेगा। धीर समीर=वृन्दावन का एक कुज। झकै=झकझक करना। दुरेधे—निर्लज्ज। नैम=नियम।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपनी आसक्ति का सकेत देती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! बागो मे कृष्ण की मुरली की ध्वनि को सुन कर यह मन प्रेम के वशीभूत हो जायेगा। धीर समीर से पानी भरकर न लाने के कारण सास झक-झक करेगी और बाबा शर्म से सकुचा जायेगे। हे सखि! उस निर्लज्ज कृष्ण की चोटो से कुल की मर्यादा का नियम किस प्रकार

वच सकता है ? अब घर से भी किस प्रकार कहाँ चली जाऊँ, क्योकि परसो ही वह हमारे पडौस मे अपनी रासलीला करेगा।

विशेष—यह सवैया श्रीविश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

वेनु वजावत गोवन गावत ग्वालन सग गली मधि आयौ।
वासुरी मैं उनि मेरोई नाँव सुग्वालिनि के मिस टेरि सुनायौ॥
ए सजनी सुनि सास के त्रासनि नन्द के पास उसास न आयौ।
कैसी करौ रसखानि नही हित चैनन ही चितचोर चुरायौ॥१७४॥

शब्दार्थ—मेरोई नाँव=मेरा ही नाम। मिस=वहाने से। त्रासनि=डर से। नद=ननद।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कह रही है कि हे सखि! वशी वजाता हुआ, गोचारण के गीत गाता हुआ अन्य ग्वालो के साथ जव कृष्ण मेरी गली मे आया तो उसने सुग्वालिन के वहाने से वाँसुरी मे मेरा नाम वजाकर सुनाया। हे सजनी। अपने नाम को सुनकर मैं तो सास के डर से इतनी डर गई कि मुझे अपनी ननद के पास भी ठीक तरह से साँस नही आये। आनन्द-सागर कृष्ण ने यह कैसी वात कर दी, इसमे मेरा भला नही है, क्योकि उस चितचोर ने मेरे सुख को भी चुरा लिया है, अर्थात् जव से वाँसुरी मे उसने मेरा नाम वजाया है, तव से मैं उसके प्रेम मे इतनी डूव गई हूँ कि मुझे पलभर के लिए भी चैन नही मिलता। मेरा मन हर समय कृष्ण के लिए ही तडपता रहता है।

सोरठा

एरी चतुर सुजान, भयौ अजान हि जान कैं।
तजि दीनी पहचान, जान अपनी जान कौ॥ १७५॥

शब्दार्थ—सुजान=प्रिय। जान=जानकर। जानको=प्रिया को।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! वह चतुर प्रिय मुझे जानकर भी अजान वना हुआ है, अर्थात् उसने मेरी पूर्णतया उपेक्षा कर दी है। अपनी प्रिया मुझसे गहरा सम्वन्ध वनाकर भी वह आज मुझे पहिचानता भी नही है।

विशेष—यमक, विरोधाभास अलकार।

सवैया

पूरब पुन्यनि ते चितई जिन ये अखियाँ मुसकानि भरी जू ।
कोऊ रही पुतरी सी खरी कोऊ घाट डरी कोऊ वाट परी जू ।।
जे अपने घरही रसखानि कहै अरु हौसनि जाति मरी जू ।
लाल जे बाल बिहाल करी ते निहाल करी न निहाल करी जू ।।१७६।।

शब्दार्थ—चितई=देखी । पुतरी=काठ की पुतली । हौसनि=प्रसन्नता-भरी लालसाएँ । बिहाल=व्याकुल । निहाल=प्रसन्न ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण की हँसी भरी आँखो को जो बालाएँ देख पाई, यह उनके पूर्व जन्मो के पुण्यो का ही फल था । उन मुस्कान-भरी आँखो को देखकर कोई तो काठ की पुतली की तरह निश्चेष्ट खडी रही, कोई घाट पर डर गई और कोई अपनी सुधि-बुधि खोकर मार्ग मे ही पड गई । रसखान कहते है कि जो बालाएँ अपने घर थी, वे प्रसन्नता-भरी लालसाओ मे मरी जाती थी । कृष्ण ने जिन बालाओ को व्याकुल किया था, वस्तुत उन्हे व्याकुल न करके प्रसन्न किया था ।

सवैया

आजु री नन्दलला निकस्यौ तुलसीवन ते बन कै मुसकातो ।
देखे बनै न बनै कहतै अब सो सुख जो मुख मै न समातो ।।
हौ रसखानि बिलोकिबे कौ कुलकानि के काज कियौ हिय हातो ।
आइ गई अलबेली अचानक ए भटू लाज को काज कहा तो ।।१७७।।

शब्दार्थ—नन्दलला=कृष्ण । तुलसीबन=वृन्दावन । बनकै=बन-ठनकर । हातो=दूर । भटू=सखी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज बन-ठनकर मुस्कराता हुआ कृष्ण वृन्दावन से निकला । उसकी शोभा न तो देखते बनती थी और न कहते बनती थी और उसे देखकर जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उस आनन्द-सागर को देखने के लिए सभी व्रज-बालाओ ने कुल की लाज और मर्यादा को अपने हृदय से दूर कर दिया । हे सखि ! इतने मे ही, अचानक वह अलबेली आ गई तो फिर लाज का क्या काम था ? अर्थात् सभी कृष्ण के प्रति पूर्णतया अनुरक्त होकर अपनी लौकिक मर्यादाओ को भूल गई ।

सवैया

अति लोक की लाज समूह मै छोरि कै राखि थकी वहु सकट सो ।
पल मै कुलकानि की मेड नखी नहिं रोकी रुकी पल के पट सो ।।
रसखानि सु केतो उचाटि रही उचटी न सकोच की औचट सो ।
अलि कोटि कियौ हटकी न रही अटकी अँखियाँ लट की लट सो ।।१७८।।

शब्दार्थ—समूह मै=भीड मे ही । मेड=सीमा । नखी=लाघ दी । पल के पट सो=पलक रूपी वस्त्र मे । उचाटि=व्याकुल । औचट=ठेस, चोट ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! भीड़ मे ही अत्यधिक लोक की लाज को छोडकर मै अत्यन्त सकटमे पड़कर थक गई, क्योकि उस समय भी मैं अपने मन को काबू मे न रख सकी । कृष्ण को देखते ही क्षणभर मे ही कुल की मर्यादा की सीमा मैने लॉघ दी, अर्थात् कुल-लाज को छोड दिया । मेरी दृष्टि पलको के वस्त्र मे भी नही रुक सकी । रसखान कहते है कि मैं चाहे जितनी व्याकुल रही, पर मैं सकोच की चोट से पृथक् न हो सकी, अर्थात् सकोच किये विना न रह सकी । हे सखि ! मैंने करोड़ो प्रयत्न किये, पर स्वय को न रोक सकी और मेरी आँखे कृष्ण की लटकती हुई कु तल-राशि मे उलझ गई ।

रास लीला

कवित्त

अधर लगाइ रस प्याइ बाँसुरी वजाइ,
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियौ मन मैं ।
नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करि कै अचेत चेत हरि कै जतन मैं ।
झटपट उलट पुलट पट परिधान,
जान लागी लालन पै सवै वाम वन मै ।
रस रास सरस रँगीलो रसखानि आनि,
जानि जोर जुगुति विलास कियौ जन मै ।।१७९।।

शब्दार्थ—नवल=युवक । सुघर=सुन्दर । जतन मैं=यत्नपूर्वक । पट=वस्त्र । वाम=स्त्री । सरस=आनन्द देने वाला ।

अर्थ— कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती

है कि जब कृष्ण ने अपनी बाँसुरी को अपने अधरो से लगाकर और उसे अधरो का रस पिलाकर तथा मेरा नाम गाकर बजाया तो मेरे मन पर मानो वह जादू कर गया। नटखट युवक सुन्दर कृष्ण ने मुझे अचेत करके यत्नपूर्वक हरि के ध्यान मे लगा दिया, अर्थात् कृष्ण के ध्यान के बिना मुझे और किसी बात का पता न रहा। बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर सारी व्रज की स्त्रियाँ जल्दी से अपने वस्त्रो को उलटा-सीधा पहनकर वन मे पहुँच गई। तब सुन्दर रास रचने वाले सरस और रँगीले कृष्ण ने वहाँ आकर रासलीला की तथा युवतियो का समूह एकत्र करके उनके साथ आनन्द मनाया।

सवैया

काछ नयौ इकतौ बर जेउर दीठि जसोमति राज कर्‌यौ री।
या व्रज-मडल मे रसखान कछू तब ते रस रास पर्‌यौ री॥
देखियै जीवन को फल आजु ही लाजहि काल सिगार हौ बौरी।
केते दिनानि पै जानति हौ अँखियान के भागनि स्याम नच्चौरी॥१८०॥

शब्दार्थ—काछ=कटिवस्त्र। इकतौ=अद्वितीय, अनुपम। जेउर=जेवर आभूषण। दीठि=ढिठौना, काजल का टीका (माताएँ अपने बच्चो को काजल का टीका इसलिए लगा देती है ताकि उन्हे किसी की नजर न लग जाये)। राज=सुन्दर। बौरी=पगली।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रास-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि रासलीला के लिए तत्पर कृष्ण का कटि-वस्त्र अनुपम और नवीन है। वे सुन्दर आभूषण पहने हुए है। यशोदा ने उसके माथे पर सुन्दर ढिठौना लगाया हुआ है। हे पगली! जब से इस व्रज-मंडल मे आनन्द-सागर कृष्ण ने रासलीला करनी शुरू की है, तब से व्रजवासियो मे नवीन जीवन का सचार हो गया है। अपने जीवन के पुण्य बल से प्राप्त इस रासलीला का आज तो देखकर आनन्द उठा ले, कल से लज्जा का शृगार कर लेना; अर्थात् लज्जा को त्याग कर रासलीला को देख, क्योकि न जाने कितने दिनो के पश्चात् इन आँखो के भाग्य से कृष्ण नृत्य करेगे।

विशेष—१. 'बौरी' शब्द का प्रयोग घनिष्ठ आत्मीयता का सूचक है।
२. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे यह सवैया नही है।

सवैया

आजु भटू इक गोपकुमार ने रास रच्यौ इक गोप के द्वारै ।
सुन्दर बानिक सौं रसखानि बन्यौ वह छोहरा भाग हमारैं ॥
ए बिधना ! जो हमै हँसती अब नेकु कहूँ उतको पग धारैं ।
ताहि बदौं फिरि आवै घरै बिनही तन औ मन जोवन वारैं ॥१८१॥

शब्दार्थ—भटू=सखी । बानिक=वेश । बदौं=शर्त लगाकर कहती हूँ । वारैं=न्यौछावर करके ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज एक गोप ने (कृष्ण ने) दूसरे गोप के द्वारे पर रास-लीला रचाई । हमारे सौभाग्य से वह नन्द पुत्र कृष्ण अच्छे वेश वाला बन गया, अर्थात् उसकी छवि द्विगुणित हो गई । हे भगवान् ! जो हमारे प्रेम को लक्ष्य करके हमारे ऊपर हँसती है, अब यदि वह तनिक भी उस ओर चली जाये तो मैं शर्त लगाकर कहती हूँ कि वे अपना मन और यौवन कृष्ण पर न्यौछावर किये बिना अपने घर वापिस नही आ सकती ।

सवैया

आज भटू मुरली-बट के तट नद के सांवरे रास रच्यौ री ।
नैननि सैननि बैननि सो नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री ॥
जद्यपि राखन को कुल कानि सबै ब्रज-बालन प्रान पच्यौ री ।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानी कौ अंत लच्यौ पै लच्यौ री ॥१८२॥

शब्दार्थ—भटू—सखी । सांवरे—कृष्ण ने

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण द्वारा रचाई गई रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी ! आज मुरली-बट के नीचे श्रीकृष्ण ने रासलीला रची थी । उसमे उन्होने जो प्रदर्शन किया, वह इतना विविधतापूर्ण था कि उनकी आँखो से, सैनो से तथा वचनो से कोई भी मनोहर भाव नही बचा, अर्थात् अपने आंगिक और वाचिक नृत्यो के द्वारा उन्होने सभी प्रकार के मनोहर भावो की अभिव्यक्ति कर दी थी । यद्यपि अपने वंश की मर्यादा का पालन करने के लिए सारी ब्रज-बालाओ ने प्राणपण से प्रयत्न किया, तथापि वे अंत मे अपने प्रण से झुक गई और आनन्द-सागर कृष्ण के हाथ बिक गई । अर्थात् सभी ब्रज-बनिताएँ कृष्ण की छवि पर मुग्ध हो गईं ।

सवैया

कीजै कहा जु पै लोग चवाव सदा करिबौ करि है बजमारौ।
सीत न रोकत राखत कागु सुगावत ताहिरी गावन हारौ।
आव री सीरी करै अँखिया रसखान धनै धन भाग हमारौ।
आवत है फिरि आज बन्यौ वह राति के रास को नाचन हारौ ।।१८३।।

शब्दार्थ—चवाव=निन्दा। बजमारौ=अत्यन्त घातक। सीत न रोकत राखत कागु=कौआ शीतकाल (शरद् ऋतु) का आगमन नही रोक सकता। (शरद् आगमन के साथ ही श्राद्ध-समय समाप्त हो जाता है। अत कौवा नही चाहता कि शरद् ऋतु आवे, पर उसे रोकना उस बेचारे के बस की बात नही है। सीरी करै=शीतल करे, आनन्द प्राप्त करे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला मे सम्मिलित होने का आग्रह करती हुई कहती है कि हे सखि! यदि लोग हमारी अत्यन्त घातक निन्दा सदा करते रहते है, तो करे, हमे इससे चिन्तित नही होना चाहिए, क्योकि कौआ चाहे जितनी काँव-काँव करे, पर वह शरद् ऋतु के आगमन को नही रोक सकता। अत. चलो, रासलीला मे सम्मिलित होकर हम अपनी आँखे शीतल करे, आनन्द प्राप्त करे। हमारा भाग्य धन्य है जो हमे इस प्रकार की रासलीला को देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। कल रात को रासलीला मे नृत्य करने वाला वह कृष्ण आज फिर बन-ठनकर रासलीला मे सम्मिलित हो रहा है।

विशेष—१ लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है।
२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसादमिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

सासु अछै बरज्यौ बिटिया जु बिलोके अतीक लजावत है।
मोहि कहै जु कहूँ वह बात कही यह कौन कहावत है।
चाहत काहू के मूँड चढ्यौ रसखान झुकै झुकि आवत है।
जब तै वह ग्वाल गली मे नच्यौ तब तै वह नाच नचावत है ।।१८४।।

शब्दार्थ—अछै बरज्यौ=अच्छी प्रकार रोकी। बिटिया=पुत्रवधू। मूड चढ्यौ=सिर पर चढ गया, धृष्ट हो गया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती

है कि यद्यपि अपनी पुत्रवधू को उसकी सास ने रासलीला मे आने से अच्छी प्रकार रोक दिया, तथापि वह न रुक सकी। अपनी आज्ञा का उल्लघन देखकर सास बहुत लज्जित हो रही है। यदि मुझसे वह यह बात कहती तो मैं तुरन्त उत्तर दे देती कि यह कहाँ की बात है। आनद-सागर कृष्ण इतने धृष्ट हो गये हैं कि वे किसी गोपी को अपने वश मे करना चाहते है, तभी तो वे बार-बार उसकी ओर झुकझुककर आते है। जब से कृष्ण ने उस गली मे रासलीला की है, तब से उसने सभी गोपियो को पूर्णतया अपने वश मे कर लिया है।

विशेष—१. मुहावरो का सुन्दर प्रयोग।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

देखत सेज बिछी री अछी सु बिछी बिष सो भिदिगौ सिगरे तन।
ऐसी अचेत गिरी नहिं चेत उपाय करे सिगरी सजनी जन।
बोली सयानी सखी रसखानि बचै यौ सुनाइ कह्यौ जुवती गान।
देखन कौ चलियै री चलौ सब रास रच्यौ मनमोहन जू बन ॥१८५॥

शब्दार्थ—अछी=अच्छी। भिदिगौ=दौड गया। सयानी=चतुर।

अर्थ—रासलीला के प्रभाव से एक गोपी इतनी भाव-विभोर हो गई कि उसे अपनी सुधि ही न रही। उसी की अवस्था का वर्णन एक गोपी अपनी सखी से कर रही है कि एक गोपी अपनी अच्छी सेज को बिछी देखकर उस पर सोना चाहती थी कि इतने मे बाँसुरी की ध्वनि सुनाई दी। उसे सुनकर उसके सारे शरीर मे विष-सा फैल गया। वह ऐसी अचेत होकर गिरी कि उसकी सारी सखियो ने अनेक उपाय किये, पर उसे चेत नही हुआ। तब एक चतुर गोपी ने अपनी सखियो को बताया कि इसकी अचेतना तभी हट सकती है जब इसको सुनाकर यह कहा जाये कि हे सखि! कृष्ण ने बन मे रास रचा है, अत सब उसे देखने के लिए चलो।

तुलना—१ 'दुसह विरह दारुन दसा, रहै न और उपाय।
जात जात ज्यो राखियतु, पिय को नाम सुनाय॥
—बिहारी

२. 'मोहि घरीक जिवायौ चहै तो।
कहै किन वाही बिसासी की बातें।' —किशोर

फाग-लीला

सवैया

खेलतु फाग लख्यौ पिय प्यारी को ता सुख की उपमा किहि दीजै ।
देखत ही बनि आवै भलै रसखान कहा है जो वारि न कीजै ।।
ज्यौ ज्यौ छवीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै ।
त्यौ त्यौ छवीलो छकै छवि छाक सो हेरै हँसे न टरै खरौ भीजै ।।१८६।।

शब्दार्थ—किहि=किस प्रकार । वारि=न्यौछावर करना । छकै छवि छाक सो=रूप के नशे मे मस्त होते है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से फागलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैने कृष्ण और उनकी प्यारी राधा को फाग खेलते हुए देखा । उस समय की जो शोभा थी, उसकी किस प्रकार उपमा दी जा सकती है। उस समय की शोभा तो देखते ही बनती है और कोई भी ऐसी वस्तु नही है जो उस शोभा पर न्यौछावर न की जा सके । ज्यो-ज्यो वह सुन्दरी राधा चुनौती देकर एक के वाद दूसरी पिचकारी कृष्ण के ऊपर चलाती है, त्यो-त्यों वे रूप के नशे मे मस्त होते जाते है । राधा की पिचकारी को देखकर वे हँसते तो है, पर वे वहाँ से भागे नही और खडे-खड़े भीगते रहे ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' मे नही है ।

सवैया

खेलत फाग सुहागभरी अनुरागहि लालन कौ झरि कै ।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन मै रग को भरि कै ।।
गेरत लाल गुलाल लली मन मोहिनि मौज मिटा करि कै ।
जात चली रसखानि अली मदमत्त मनी-मन को हरि कै ।।१८७।।

शब्दार्थ—अनुरागहि=प्रेम को । मनी-मन=मन रूपी मणि ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सौभाग्यवती व्रजवालाएँ कृष्ण के प्रेम को हृदय मे धारण करके फाग (होली) खेल रही है । वे कुंकुम और केसर को तथा रंग भरी पिचकारी को कृष्ण के ऊपर छोड रही है । व्रजवालाएँ, जो मन को मोहने वाली है, अपने सुख को भुलाकर कृष्ण के ऊपर लाल गुलाल डाल रही है । हे सखि !

वह ब्रजबाला मदमस्त मन रूपी मन का हरण करके चली जा रही है।

पाठातर—इस सवैया की अतिम पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'जात चली रसखान अली मदमत्त मनौ मन को हरि कै।'

सवैया

फागुन लाग्यौ जब ते तब ते ब्रजमडल धूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचै नहि एक विसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है।
साँझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
को सजनी निलजी न भई अब कौन भटू जिहि मान बच्यौ है ॥१८८॥

शब्दार्थ—नवेली=नई, युवती। अच्यो=पीना। सुरग=सुन्दर रग, लाल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई करती है कि हे सखि! जबसे फागुन का महीना लगा है, तबसे सारे ब्रज-मंडल मे धूम मची हुई है। कोई भी युवती नारी इस धूमधाम से नही बची है और सभा ने एक विशेष प्रकार का प्रेम पी लिया है। प्रातः और साय आनंद-सागर कृष्ण लाल गुलाल लेकर फाग का खेल खेलते रहते हैं। हे सजनी! इस फागुन के महीने मे कौन ऐसी व्रजबाला है जो निर्लज्ज नही बन गई है? तथा जिसका मान बचा रह गया है?

विशेष—अतिम पक्ति मे काकुवक्रोक्ति अलकार।

कवित्त

आई खेलि होरी ब्रजगोरी वा किसोरी सग,
अंग अग इगनि अनग सरसाइ गौ।
कुकुम की मार वा पै रगनि उद्दार उडै,
बुक्का औ गुलाल लाल लाल बरसाइगौ।
छोडै पिचकारिन धमारिन बिगोइ छोडै,
तोडै हिय-हार धार रग बरसाइ गौ।
रसिक सलोनो रिझवार रसखानि आजु,
फागुन मै औगुन अनेक दरसाई गौ ॥१८९॥

शब्दार्थ—अनग=कामदेव। तरसाइ गौ=ललचा गया। धपारिन=होली-गीत। सलोनो=सुन्दर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई

कहती है कि आज कृष्ण ने व्रज की गोरियो और राधा के साथ ऐसी होली खेली कि उनके अंग-अग को रग कर कामभावना उत्पन्न कर दी। कु कुम की मार से और उसके ऊपर अनेक प्रकार के रगो को डालकर लाल गुलाल की मुट्ठियाँ विखेरकर वह कृष्ण सवको ललचा गया। उसने पिचकारियाँ छोडी, होली के गीत गाये तथा गोपियो के हृदय के हारो को तोडकर वह रग की धारा वरसा गया। रसखान कहते है कि वह रसिक और सुन्दर कृष्ण आज फागुन मे होली खेलते समय अपने अनेक अवगुणो को प्रकट कर गया।

कवित्त

गोकुल को ग्वाल काल्हि चौमुँह की ग्वालिन सो,
चाचर रचाइ एक धूमहि मचाइ गौ।
हियो हुलसाइ रसखानि तान गाइ बाँकी,
सहज सुभाइ सब गाँव ललचाइ गौ।
पिचका चलाइ और जुवती भिजाइ नेह,
लोचन नचाइ मेरे अगहि नचाइ गौ।
सासहि नचाइ भोरी नदहि नचाइ खोरी,
वैरनि सचाइ गोरी मोहि सकुचाइ गौ ॥१९०॥

शब्दार्थ—काल्हि=कल। चौमुँह=चारो ओर की। पिचका=पिचकारी। भिजाई नेह=प्रेम मे भिगोकर। खोरी=गली। वैरनि सचाइ=वैरो का वदला लेकर। सकुचाइ गौ=लज्जित कर गया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कल गोकुल का एक ग्वाला (कृष्ण) चारो ओर की गोपियो को घेरकर, चाँचर रचाकर धूम मचा गया। रसखान कहते है कि वह बाँकी बाँसुरी की तान सुनाकर तथा हृदय को उल्लसित करके सहज स्वभाव से सव गाँव वालो को ललचा गया है। वह अपनी पिचकारी चलाकर तथा समस्त युवतियो को प्रेम से भिगोकर और अपनी आँखो को नचाकर मेरे सारे अगो को नचा गया है। वह हमारी ही गली मे मेरी सासु को तथा भोली ननद को नचाकर और पुराने वैरों का वदला लेकर मुझे लज्जित कर गया।

सवैया

आवत लाल गुलाल लिये मग सूने मिली इक नार नवीली।
त्यौं रसखानि लगाइ हिये भटू मौज कियौ मन माहि अधीनी।
सारी फटी सुकुमारी हटी अगिया दर की सरकी रगभीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अक रिझाइ विदा करि दीनी ॥१६१॥

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण। सारी=साडी। अक=हृदय।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण हाथ मे गुलाल लिये हुए आ रहे थे कि सूने मार्ग मे उन्हे एक युवती नारी मिली। उसे उन्होने अपने हृदय से लगाकर आनन्द के साथ अपनी मनचाही की। उसकी साडी फट गई, सौकुमार्य नष्ट हो गया, चोली फट गई और अपने स्थान से हट गई। कृष्ण ने उसके कपोलो पर गुलाल लगाकर, उसके हृदय से लगाकर तथा रिझाकर विदा कर दिया।

सवैया

लीने अबीर भरे पिचका रसखानि खारो वहु भाय भरौ जू।
मार से गोपकुमार कुमार से देखत ध्यान टरौ न टरौ जू॥
पूरव पुन्यनि हाथ पर्यौ तुम राज करौ उठि काज करौ जू।
ताहि सरौ लखि लाज जरौ इहि पाख पतिव्रत ताख धरौ जू ॥१६२॥

शब्दार्थ—पिचका=पिचकारी। भाय=भाव मार=कामदेव। कुमार=थोडी अवस्था के। सरौ=समक्ष, सम्मुख। पाख=पक्ष। ताख=आला। ताख धरौ=छोड दिया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह आनद सागर कृष्ण अनेक प्रकार के भावो मे भरकर तथा अबीर भरी पिचकारी लेकर खडा हुआ था। छोटी अवस्था के गोपकुमार कामदेव जैसे दिखाई दे रहे थे जिन्हे देखते देखते ध्यान उन पर टारे से भी नही टरता था। वह तुम्हारे हाथ पूर्व जन्म के पुण्यो के कारण ही लग गया है, अत तुम उठकर अपना काम करो और उस पर शासन करो उसको सामने देखकर लज्जा को छोडो तथा। इस पक्ष मे पतित-धर्म का त्याग कर दो।

विशेष—१ द्वितीय पक्ति मे उपमा अलकार।

२. चतुर्थ पंक्ति मे मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग ।

तुलना—हम भाषत है हरिचन्द पिया अहो लाडिलि देर न यामै करो ।
चलो फूलौ झूलाओ झुकौ उझकौ इहि पाख पतिव्रत ताख़ धरो ॥

सवैया

मिलि खेलत फाग बढ्यौ अनुराग सुराग सनी सुख की रमकै ।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी प्रिय के दृग लावन को घमकै ॥
रसखानि गुलाल की धूँधर मै ब्रजबालन की दुति यौ दमकै ।
मनो सावन माँझ ललाई के माँझ चहूँ दिसि तै चपला चमकै ॥१६३॥

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम । रमकै=अठखेलियाँ । कंजमुखी=कमल जैसे सुन्दर मुख वाली । लावन को=फेंकने के लिए । धूंधर=धुंधार । चपला=बिजली ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण गोपियो के साथ फाग खेल रहे थे । सुख की इन सौभाग्यशाली अठखेलियो मे उनका प्रेम बढ गया था । कमल जैसे सुन्दर मुख वाली गोपियाँ हाथ मे कुंकुम लेकर उसे उनके ऊपर फेकने के लिए अवसर ताक रही थी । रसखान कहते है कि गुलाल की धुँआधार मे ब्रजबालाओ की द्युति इस प्रकार चमक रही थी, मानो सावन मास की लालिमा मे चारो ओर से बिजली चमक रही हो ।

विशेष—अंतिम पंक्ति मे उत्प्रेक्षा अलंकार ।

राधा का सौन्दर्य

कवित्त

आजु बरसाने बरसाने सब आनन्द सो,
लाडिली बरस गाँठि आई छवि छाई है ।
कौतुक अपार घर घर रंग विसतार,
रहत निहारि सुध बुध बिसराई है ।
आये ब्रजराज ब्रजरानी दधि दानी संग,
अति ही उमगे रूप रासि लूटि पाई है ।
गुनी जन गान धन दान सनमान, बाजे—
पौरनि निसान रसखान मन भाई है ॥१६४॥

शब्दार्थ—बरसाने=वर्षा ऋतु मे । बरसाने=ब्रज का एक गाँव, राधा

इसी गाँव की रहने वाली थी। रंग विसतार=आनंद का प्रसार। निसान=नगाडा।

अर्थ--राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! आज वर्षा ऋतु मे वरसाने गाँव के सभी निवासी प्रसन्न हैं, क्यो आज प्यारी राधा की वर्षगाँठ है, इसीलिए चारो ओर शोभा छाई हुई है। हर स्थान पर अपार आश्चर्य और आनन्द का प्रसार है जिसे देखकर लोग अपनी सुधि-बुधि भूल जाते है। दही का दान लेने वाले कृष्ण राधा के साथ यहाँ आये है। वे अत्यन्त प्रसन्न है, क्योकि उन्हे रूप-राशि राधा को लूटने का अवसर मिला है। गाँव मे हर स्थान पर गुणी व्यक्ति गीत गाते हुए सम्मानपूर्वक धन का दान कर रहे है और सर्वत्र मनोहर नगाडे बज रहे है

विशेष—यह कवित्त श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली मे नही है।

कवित्त

कैधो रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि कै पियूष पूष कीनो विधि चंद घर।
कैधो मनि मानिक वैठारिबै को कंचन मैं,
जरिया जोवन जिन गढिया सुघर घर।
कैधो काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैधों यह भौर ज्ञान बोहित गुमान हर।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रम्भा की,
वारि डारो तेही चित चोरनि चिबुक पर ॥१६५॥

शब्दार्थ—रस कोस—आनन्द-निधि। पियूष पूष=अमृत का सार। विधि=ब्रह्म। गढिया सुघर घर=सुन्दर घर बना लिया। बोहित=नौका। गुमान हर=गर्व को नष्ट करने वाला। दुति=शोभा।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि ब्रह्मा ने ससार को प्यासा जानकर उसकी तृप्ति के लिए तुम्हारे नेत्रो मे आनन्द-निधि भर दिया है। तुम्हारा मुख इतना सुन्दर है जैसे अपने अमृत-सार को सजोकर स्वय चन्द्रमा उपस्थित हो गया हो। तुम्हारे शरीर का गठन ऐसा है जैसे सोने मे मणि-मुक्ताओ को जडने के लिए कुशल जडिया यौवन ने

सुन्दर घर (रत्न जड़ने के लिए) स्थान बना लिया हो। तुम्हारे अधरो की लाली काम कामना जैसी सुशोभित है। तुम्हारी नासिका का छिद्र उस भौरे के समान है जिसमे ज्ञान की नौका का गर्व नष्ट हो जाता है, अर्थात् सुधि-बुधि नष्ट हो जाती है। मेरी प्यारी सखी राधा! तेरी मनोहर चिबुक पर मै करोडो रति और रम्भा की शोभा को न्यौछावर करती हूँ।

विशेष—यह कवित्त श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

श्री मुख यौ न बखान सकै वृषभान सुता जू को रूप उजारो।
हे रसखान तू ज्ञान सभार तरैनि निहार जु रीझन हारो।
चारु सिंदूर को लाल रसाल लसै व्रज बाल को भाल टिकारो।
गोद मे मानौ विराजत है घनस्याम के सारे को सारे को सारो॥१९६॥

शब्दार्थ—श्रीमुख=मुख की शोभा। वृषभान सुता=राधा। तरैनि= नक्षत्र। रसाल=सरस। टिकारो=टीका। घनस्याम के सारे की सारे को सारो=मगल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! राधा के मुख की शोभा का कौन वर्णन कर सकता है। उसका सौन्दर्य प्रकाशित करने वाला है। रसखान कहते है कि हे मनुष्य! तू अपना ज्ञान सभाल और यदि तू राधा के रूप का कुछ बोध करना चाहता है तो नक्षत्रो की ओर देख, अर्थात् जिस प्रकार नक्षत्रों की प्रभा अनुपम है, उसी प्रकार राधा का रूप भी अद्वितीय है। उस ब्रजबाला के मस्तक पर लगा हुआ सिन्दूर का टीका अत्यन्त सुन्दर एवं सरस है। वह टीका ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा की गोद मे मंगल सुशोभित हो।

विशेष—१. उत्प्रेक्षा अलकार।

२ 'घनस्याम के सारे की सारे को सारो' मे क्लिष्टत्व दोष है क्योकि इसका अर्थ क्लिष्टता से निकलता है—घनस्याम का साला= चन्द्रमा; चन्द्रमा की स्त्री=बीरबहूटी; बीरबहूटी का भाई मगल।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली ! अलि कुंतल राजत है।
मखतूल समान के गुंज घरानि मैं किंसुक की छवि छाजत है।।
मुकता के कदंब ते अंब के मौर सुने सुर कोकिल लाजत है।
यह आवनि प्यारी जु की रसखानि बसंत-सी आज बिराजत है ।।१९७।।

शब्दार्थ—अली=सखी। अलि=भ्रमर। कुंतल=केश। मखतूल=काला रेशम। छरानि मैं=डोरियो मे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उसका अत्यन्त लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है। उसकी काली केशराशि भौंरो के समान सुशोभित है। काले रेशम की डोरियो मे बँधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा सम्पन्न है। उसके मोती कदंब और आम की मंजरियो के समान शोभायमान है। उसकी वाणी मे इतना माधुर्य है कि उसके वचनों को सुनकर कोयल भी लजा जाती है। इस अपनी प्यारी और आनन्द की खान राधा की शोभा वसन्त श्री के समान प्रतीत हो रही है।

विशेष—यमक, उपमा, छेकानुप्रास और सांग रूपक अलंकार।

सवैया

तन चन्दन खौर कै बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी।
मनौ इन्दुवधून लजावन को सब ज्ञानिन काढि धरी गन सी।।
रसखानि बिराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन सी।
दमकै दृग बान के घायन को गिरि सेत के संधि के जीवन सी ।।१९८।।

शब्दार्थ—सुधा की सुता मनसी=सुधा की मानस-पुत्री। इंदुवधून=चन्द्रमा की पत्नियो तारिकाओ को। लजावन=लज्जित करने के लिए। गन सी=गणश्री, अपने समूह की सात्विक छटा। चौकी=हार के बीच का चंदा। उत्तमताहि=सौन्दर्य को। संधि=बीच। जीवन-सी=जलाशय की भाँति।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! अपने शरीर पर चन्दन लगाकर बैठी हुई वह सुधा की मानस पुत्री राधा ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो चन्द्रमा की पत्नियों

तारिकाओ को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी समग्र सात्विक शोभा को बाहर निकाल कर बैठी हुई हो। रसखान कवि कहते है कि उसके कुचो के बीच मे हार का चदा इस प्रकार शोभा दे रहा है, जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर मे जड दिया गया हो। वह चन्दा ऐसा प्रतीत होता है मानो दृग बाणो का घाव दमक रहा हो, अथवा श्वेत पर्वत के सधिस्थान मे कोई जलाशय हो।

विशेष—१. उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अर्थालकारो का बडा ही भावपूर्ण प्रयोग हुआ है।

२ 'दमकै दृग बान के घायन को' मे दी गई उपमा रसानुभूति मे बाधक है।

सवैया

आज सँवारति नेकु भटू तन, मद करी रति की दुति लाजै।
देखत रीझि रहे रसखानि सु और छटा विधिना उपराजै॥
आए है न्यौते तरैमन के मनो सग पतंग पतग जु राजै।
ऐसे लसै मुकुतागन मै तित तेरे तरौना के तीर विराजै॥१९९॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। रति=कामदेव की स्त्री, जो सर्वाधिक सुन्दर मानी जाती है। दुति=द्युति, शोभा। लाजै=लज्जित हो जाती है। रसखानि =आनन्द सागर कृष्ण। विधिना=ब्रह्मा। उपराजै=उत्पन्न करे। तरैमन के=नक्षत्रो के, मोतियो के। पतग=सूर्य, तरौना। पतग=शलभ, तिल। तीर=किनारा।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज तनिक अपना शरीर सभाल लो, क्योकि इसके सौन्दर्य के समक्ष रति का सौन्दर्य भी मन्द हो गया है और वह इसी कारण लज्जित हो रही है। आनन्द सागर कृष्ण तुम्हारी शोभा को देखकर रीझ रहे है। तुम्हारे अतिरिक्त ब्रह्मा और क्या उत्पन्न करे? अर्थात् तुम उसकी सौन्दर्य सृष्टि की चरम पराकाष्ठा हो। मोतियो से युक्त तुम्हारे तरौना के किनारे पर सुशोभित होता हुआ तिल इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो सूर्य के साथ सारे नक्षत्र आकर एकत्र हो गए हो।

विशेष—प्रतीप, श्लेष, यमक, उपमा अलंकार।

सवैया

प्यारी की चारु सिंगार तरगनि जाय लगि रति की दुति कूलनि ।
जोवन जेव कहा कहियै उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि ।
कंचुकी सेत मै जावक विन्दु विलोकि मरै मघवानि की सूलनि ।
पूजे है आजु मनौ रसखान सु भूत के भूप वधूक के फूलनि ।।२००।।

शब्दार्थ - सिगार तरगन=सौन्दर्य की लहरे । जेव=कान्ति । सेत=श्वेत, सफेद । जावक=महावर, लाल रग । मघवानि की सूलनि=इन्द्र वज्र की चोट । भूत के भूप=शिव । वधूक के फूलनि=दुपहरिया के लाल रग के फूलो से ।

अर्थ—कोई गोपी राधा के सौन्दर्य का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! उस प्यारी राधा के सुन्दर सौन्दर्य की लहरे रति की शोभा के किनारो से जा लगी है, अर्थात् वह रति के समान सुन्दर है । उसके यौवन की काति का तो कहना ही क्या ? उसके हृदय पर अनेक सुन्दर वस्त्रों की शोभा सुशोभित है । उसकी श्वेत कचुकी मे लाल रग के विन्दु को देखकर तो मनुष्य इन्द्र के वज्र की चोट की भाँति भारी चोट खाकर मर जाता है । उसके कुचो पर पडा हुआ लाल वस्त्र इस प्रकार प्रतीत हो रहा है । मानो वन्धूक के फूलो से शिव की पूजा की गई हो ।

विशेष—१ उत्प्रेक्षा अलकार ।
२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रथावली' मे नही है ।

तुलना—'दुरत न कुच बिच कचुकी, चुपरी सादी सेत ।
कवि अंकन के अर्थ लौं, प्रगट दिखाई देत ।।'
—बिहारी

सवैया

बाँकी मरोर गटी भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की ।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि ते दुति दूनी हिमा की ।।
सोहै तरग अनग की अंगनि ओप उरोज उठी छतिया की ।
जोवन जोति सु यौं दमकै उसकाइ दई मनो वाती दिया की ।।२०१।।

शब्दार्थ—टाक=पतली । लाक=लक, कमर । सुदामिनि=सौदामिनी,

विजली। दुति द्युति, शोभा। अनग=कामदेव। ओप=शोभा। उरोज=स्तन।

अर्थ—कोई गोपी राधा की वय सन्धि का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि राधा की तिरछी आखो ने, जो भृकुटी तक फैली हुई है, गर्वीली वक्रता ग्रहण कर ली है। आनन्द सागर राधा की कमर पतली हो गई है। उसके हृदय की (शीरर की) शोभा दामिनी से भी अधिक वढ गई है। उसके अगो मे कामदेव की तरगे शोभायमान है, उसकी छाती के उठे हुए स्तन भी शोभायुक्त है। उसकी यौवन शोभा इस प्रकार दमक रही है, मानो दीपक की वाती उकसा दी गई हो; अर्थात् जिस प्रकार दीपक की वाती को वढाने से धूमिल प्रकाश स्पप्ट हो जाता है, उसी प्रकार राधा के अगो मे भी यौवन की शोभा स्पष्ट दिखाई दे रही है।

विशेष—उपमा, अधिक, छेकानुप्रास अलंकार।

तुलना—१ 'अग अंग नग जगमगैं, दीप सिखा सी देह।
दिया वढाये हू रहै, वडो उजेरो गेह।।
—विहारी

२. 'पलट चली मुसकाय, दुति रहीम उपजाय अति।
वाती सी उकसाय, मानो दीनी देह की।'
—रहीम

सवैया

वासर तूँ जु कहूँ निकरै रवि को रथ माँझ अकास अरै री।
रैन यहै गति है रसखानि छपाकर आँगन ते न टरै री।।
द्यौस निस्वास चल्यौई करै निसि द्यौस की आसन पाय धरै री।
तेरो न जात कछू दिन राति विचारे बटोही की बाट परै री।।२०२।।

शब्दार्थ—वासर=दिन। छपाकर=चन्द्रमा। द्यौस=दिवस, दिन। वाह परै=रास्ता रुक जाता है।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे राधा! यदि तू दिन मे अपने घर से वाहर निकल आती है तो तेरे सौन्दर्य से सूर्य इतना चकित हो जाता है कि उसका रथ आकाश मे ही रुक जाता है, अर्थात् सूर्य अपनी गति भूलकर एकटक तुझे ही देखता रह जाता

है। हे आनन्द-सागर राधा ! रात को भी यही दशा होती है। तेरा सौन्दर्य देखकर चन्द्रमा तेरे आँगन मे ही ठहर जाता है और आगे नही बढता। दिन मे तो पवन चलता ही रहता है, पर रात मे भी वह दिन की आशा से तेरे पीछे लगा रहता है, अर्थात् तेरी सुगन्धि का लोभी पवन रात-दिन चलता रहता है। इस पवन के रात-दिन चलते रहने के कारण तेरा तो कुछ नही बिगडता, पर बेचारे पथिक का रास्ता रुक जाता है, अर्थात् वह अपने रास्ते पर चल नही पाता।

विशेष—अत्युक्ति और व्याजस्तुति अलंकार।

तुलना—'मेरे कहे हाहा करि नीरे ह्वै निहारी जब,
जेते बट बाट के बटाऊ मारे जात हैं।'

—आलम

सवैया

जाको लसै मुख चन्द समान कमानी सी भौह गुमान हरै।
दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पाँत दरै॥
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै।
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै॥२०३॥

शब्दार्थ—गुमान हरै=गर्व को नष्ट करती है। सरोज=कमल। दरै=चूर्ण करना। उरोज=स्तन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिसका मुख चन्द्रमा के समान सुशोभित है। कमानी सी भौहे गर्व को नष्ट करती है, विशालहै नेत्र कमल से बढकर हैं और मृग, खजन तथा मीन की पक्तियो को चूर्ण करने वाले है। आनन्द-सागर स्तनो को देखते ही ऐसा कौन ऋषि है जो अपनी समाधि से विचलित नही हो जाता। जो कटि के हार के बोझ से ही, अपनी सुकुमारता के कारण, नीचे झुक जाती है, उससे सब काम करने को कहते है।

विशेष—१. उपमा, व्यतिरेक, वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति अलकार।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रंथावली' मे नही है।

पाठान्तर—इस सवैये की प्रथम दो पक्तियो का यह रूप भी मिलता है।

'यह जाको लसै मुख चन्द-समान कमान-सी भौह गुमान हरै।
अति दीरघ नैन सरोजहूँ ते मृग खजन मीन की पाँति दरै।।'

सवैया

प्रेम कथानि की वात चलै चमकै चित चंचलता चिनगारी।
लोचन बक विलोकनि लोलनि वोलनि मै बतियाँ रसकारी।।
सोहै तरग अनग को अगनि कोमल यौ भमकै भनकारी।
पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी।।२०४।।

शब्दार्थ—लोलनि=सुन्दर, मधुर। रसकारी=आनन्ददायक। अनंग=कामदेव। भमकै=ध्वनि करती है। पूतरी=चौसर की गोट।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से चौपड का वर्णन करती हुई कह रही है कि जब भी प्रेम-कथाओ की चर्चा चलती है तो कृष्ण के मन मे चचलता की चिनगारी चमकने लगती है। वे वक्र दृष्टि से देखने लगते है, मधुर बोल बोलने लगते है और उनकी बाते अत्यधिक आनन्द से भरी हुई होती है। उनके अगो मे कामदेव की लहरे सुशोभित हो जाती है। रसखान कहते है कि उन्होने अपनी प्राणप्रिया के साथ चौपड खेलते हुए अपनी गोट को पटक दिया, अर्थात् वे अपनी प्रिया के प्रेम मे इतने तल्लीन हुए कि चौपड़ खेलना ही भूल गये।

विशेष—अनुप्रास अलकार।

मानवती राधा

सवैया

वारति जा पर ज्यौ न थकै चहुँ ओर जिती नृप ती धरती है।
मान सकै धरती सो कहाँ जिहि रूप लखै रति सी रती है।
जा रसखान बिलोकन काज सदाई सदा हरती बरती है।
तौ लगि ता मन मोहन की अँखियाँ निसि द्यौस हहा करती है।।२०५।।

शब्दार्थ—वारति=न्यौछावर करती हुई। ज्यौ=जीव, प्राण। ती=स्त्रियाँ। मान सकै धर=जो मान धारण कर सके। रती=रत्ती के समान। हरती बरती है=आकुल रहती है। तौ लगि=तेरे लिए। निसि द्यौस=रात-दिन। हहा करती है=अनुनय-विनय करती रहती है।

अर्थ—मानवती राधा को उसकी सखी समझाती हुई कहती है कि हे राधे! जिस कृष्ण पर चारो ओर के राजाओ की सभी स्त्रियाँ अपने प्राणो

को न्यौछावर करते हुए नही थकती। ऐसी स्त्रियाँ कहाँ है जो कृष्ण से विमुख होकर मान धारण कर सके, भले ही उनकी सुन्दरता मे रति भी रत्ती के समान हो, नगण्य हो। जिस आनन्द-सागर कृष्ण को देखने के लिए सभी स्त्रियाँ सदा ही आकुल रहती है, उसी मनमोहन कृष्ण की आँखे रात-दिन तेरे लिए अनुनय-विनय करती रहती है। (अत तू अपना मान छोडकर कृष्ण से शीघ्र मिल।)

विशेष—१. यमक, व्यतिरेक, उपमा।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

मान की औधि है आधी घरी अरी जौ रसखानि डरै हित के डर।
कै हित छोड़ियै पारियै पाइनि ऐसे कटाछनही हियरा-हर॥
मोहनलाल को हाल विलोकियै नेकु कछु किनि छ्वै कर सो कर।
ना करिवे पर वारे हैं प्रान कहा करि है अव हाँ करिवे पर॥२०६॥

शब्दार्थ—औधि=अवधि। हित=प्रेम। कै=या तो। हियरा हर=हृदय को हर; मन को जीत लो।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि यदि आनन्द-सागर प्रेम के कारण डर जाये तो मान की आधी घडी होनी चाहिए, अर्थात् यदि कृष्ण तेरे मान से भयभीत हो गये है तो मुझे अपना मान छोड देना चाहिए। या तो तुम उनसे प्रेम ही छोड दो, और यदि प्रेम को नही छोड सकती तो उसके पैरो मे पडकर ऐसी तिरछी दृष्टि से देखो कि उसके मन को ही जीत लो। तुम अपने वियोग मे कृष्ण का तनिक हाल तो देखो, वह वेचारा तुम्हारे विरह मे हाथ मल रहा है। वह तुम्हारी 'नही' पर ही अपने प्राणो को न्यौछावर करता है। न जाने 'हाँ' करने पर वह क्या करेगा।

विशेष—परम्परागत वर्णन है।

सवैया

तू गरवाइ कहा झगरै रसखानि तेरे वस वावरो होसै।
तौ हूँ न छाती सिराइ अरी करि झार इतै उतै वाझिन कोसै।

लालहि लाल किये अँखियाँ गहि लालहि काल सो क्यौ भई रोसै ।
ए विधना तू कहा री पढी बस राख्यौ गुपालहिं लाल भरोसैं ॥२०७॥

शब्दार्थ—गरबाइ=गर्व करके । सिराइ=ठडी पडना । करि झार=डाह करके ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि तू गर्व करके मुझसे क्या झगड़ा करती है । आनन्द सागर कृष्ण तेरे प्रेम मे पागल होकर तेरे वश मे हो गये है, तो भी तेरी छाती ठडी नही हुई और डाह करके फिर भी मुझे वध्या होने की गाली देती है । कृष्ण तेरे लिए लाल आँखे किये हुए है, अर्थात् आतुरता से तेरी प्रतीक्षा करते है । कृष्ण को अपने वश मे करके भी काल की भाँति क्यो क्रोध करती है । हे दैव ! तूने यह विद्या कहाँ से पढी है कि तूने कृष्ण को अपने प्रेम का झूठा विश्वास दे दिया है और वह तेरे ही भरोसे रहता है ।

विशेष—अनुप्रास और यमक अलकार ।

सवैया

पिय सो तुम मान कर्यौ कत नागरि आजु कहा किनहूँ सिख दीनी ।
ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनी बरुनी पग पोछै नवीनी ॥
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख नैननि चैन महारस भीनी ।
रसखानि न लागत तोहिं कछू अब तेरी तिया किनहूँ मति दीनी ॥२०८॥

शब्दार्थ—कत=क्यो । सिख=शिक्षा । बरुनी=बरौनियो से । सुधानिधि=चन्द्रमा । महारस=अत्यधिक आनन्द ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी, राधा की ताड़ना करती हुई कहती है कि हे चतुर सखि ! तुम अपने प्रिय से क्यो मान कर रही हो ? तुम्हे आज क्या हो गया है ? किसने तुमको ऐसी शिक्षा दी है ? तुम्हारा प्रिय तो इतना मनोहर है कि तरुणियाँ उसके पैरो को अपनी बरौनियो से पोछती है । उसका हास्य सुन्दर है, मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है, उसके नेत्र सुख देने वाले और अत्यन्त आनन्द से भरे हुए है । ऐसा आनन्द सागर प्रिय अब तेरा कुछ नही लगता, अर्थात् तू उससे रूठी हुई है । हे तिया ! न जाने किसने तेरी मति को छीन लिया है जो तू ऐसे मनोहर प्रियतम से मान करके बैठी हुई है ।

विशेष—१. अनुप्रास, उपमा अलकार ।

२ 'तिया' शब्द के प्रयोग मे भर्त्सना का भाव निहित है ।

कवित्त

डहडही बैरी मंजु डार सहकार की पै,
चहचही चुहल चहूँकित अलीन की ।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै,
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की ।
तहतही करि रसखानि के मिलन हेत,
वहवही वानि तजि मानस मलीन की ।
महमही मन्द मन्द मारुत मिलनि तैसी,
गहगही खिलनि गुलाव की कलीन की ॥२०९॥

शब्दार्थ—डहडही=फली हुई । सहकार=आम । अलीन की=भौंरों की । लहलही=हरी भरी । लोनी=सुन्दर । काकलीन की=कुजो की । तहतही=शीघ्रता । रसखानि=आनन्द सागर कृष्ण । वहवही=भद्दी । वानि=आदत, स्वभाव । मारुत=हवा । गहगही=पूर्ण विकसित ।

अथ—कोई गोपी अपनी सखी मानवती राधा से वसन्त ऋतु का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आम की बौरो से युक्त तथा फली हुई सन्दर डाली पर चारो ओर से भौरो की गूँज आनन्दपूर्वक गूँज रही है । हरी भरी सुन्दर लताये तमाल वृक्षो से लिपटी हुई है जिनपर कोयले कूज रही है । शीघ्रता से कृष्ण से मिलने के लिए गोपियाँ अपने हृदय का मलीन स्वभाव छोडकर आतुर हो गई है । सुगधित मन्द मन्द मारुत चल रहा है और गुलाब की कलियाँ खिलकर पूर्ण विकसित हो गई है ।

ऐसे समय मे तेरा मान करना उचित नही है ।

सवैया

जो कवहूँ मग पाँव न देत सु तो हित लालन आपुन गौनैं ।
मेरो कह्यौ करि मान तजौ कहि मोहन सो वलि वोल सलौनैं ॥
सौहै दिवावत हौ रसखानि तूँ सौहै करै किन लाखनि लौनैं ।
नोखी तूँ मानिनि मान कर्यौ किन मान वसत मैं कीनौ है कौनैं ॥२१०॥

शब्दार्थ—सलौनैं=मधुर । सौहै=सौगन्ध । सौहै=सम्मुख । लाखनि=

लाखों मे सुन्दर मुख। नोखी=विलक्षण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि जो स्त्रियाँ कभी घर से बाहर कदम भी नही रखती, वे भी कृष्ण के लिए स्वय छिपकर गमन करती है, अर्थात् कृष्ण मे इतना आकर्षण है कि धीरा भी उनसे मिलने के लिए अधीरा बन जाती है। अत तू मेरा कहना मान कर अपना मान छोड और मोहन से मधुर-मधुर शब्दो मे बाते कर। रसखान कहते है कि मै तुझको सौगन्ध दिलाकर कहती हूँ कि हे लाखो मे सुन्दर मुखवाली तू कृष्ण के सामने जा। हे मानिनी ! तू तो बहुत ही विलक्षण है, वरना बसन्त-ऋतु मे भी कोई मान करता है ? अत तू मेरा कहना मान और अपना मान तजकर कृष्ण से बाते कर।

विशेष—तृतीय और चतुर्थ पक्ति मे यमक अलकार।

सखी-शिक्षा

सवैया

सोई है रास मैं नैसुक नाच कै नाच नचायौ कितौ सबको जिन।
सोई है री रसखानि किते मनुहारनि सूँधे चितौत न हो छिन॥
तो मै धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयौ बस हाहा करी तिन।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिर लगर मौडो कनौड़ो करै छिन॥२११॥

शब्दार्थ—लंगर=शरारती। मौडो=बालक। कनौड़ो=कृतज्ञ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को शिक्षा देती हुई कहती है कि हे सखि। वह वही कृष्ण है जो रासलीला मे तनिक नाच कर सबको नचाया करता है। वही आनन्द-सागर कृष्ण है जो अनेक मनुहारे करने पर भी पलभर के लिए भी सीधी तरह नही देखता; अर्थात् हर समय शरारत करता रहता है। न जाने तुझ मे वह कौन-से मनोहर भाव देखकर तेरे प्रति आकृष्ट हो गया है। ऐसा अवसर शायद आगे मिले या न मिले कि वह शरारती कृष्ण तुझे कृतज्ञ करे, अर्थात् तेरे प्रति आकृष्ट हो, अत अब जो अवसर मिला है, उसे हाथ से न जाने दे।

विशेष—उल्लेख अलकार।

सवैया

तौ पहिराइ गई चुरिया तिहिं को घर बावरी जाय भरै री।
वा रसखान को ऐतौ अधीन कै मान करै चलि जाहि परै री॥

आवन को पुतरीत हठा करैं नैननि धार अखण्ड ढरैं री।
हाथ निहारि निहारि लला मनिहारिन की मनुहारि करै री ॥२१२॥

शब्दार्थ—ऐतौ अबीर ने=इस प्रकार अपने प्रेम के वश मे करके। चलि जाहि परै=दूर हट, यह स्त्रियो की भर्त्सना देने की एक प्रकार की गाली है। मनुहारि=सत्कार।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि। तुझे जो मनिहारी चूडियाँ पहना गई, तू जाकर उसका घर क्यो नही भर देती; अर्थात् उसे काफी धन क्यो नही दे देती। तू ने उस आनन्द-सागर कृष्ण को इस प्रकार अपने प्रेम के वश मे कर लिया है कि वह तेरे बिना अब एक पल भी नही रह सकता और अब तू उसके पास जाने मे हिचकिचाती है, उससे मान करती है। चल दूर हट। तेरे आने के लिए, तुझसे मिलने के लिए, कृष्ण की आँखे तुझसे अनुनय-विनय करती है और तेरे वियोग मे उसकी आँखो से निरन्तर आँसू बहते रहते है। तू ने जो चूडियाँ पहन रक्खी हैं, इन चूडियो वाले हाथो को देखकर कृष्ण उस मनिहारी का अवश्य सत्कार करेगे, अर्थात् उसे साधुवाद देगे।

विशेष—१ यमक अलकार।
२ यह सवैया श्री विश्नाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

मेरी सुनौ मति आइ अली उहाँ जौनी गली हरि गावत है।
हरि है विलोकति प्रानन को पुनि गाढ परे घर आवत है॥
उन तान की तान तनी व्रज मैं रसखानि समान सिखावत है।
तकि पाय धरौ रपटाय नही वह चारो सो डारि फँदावत है ॥२१३॥

शब्दार्थ—अली=सखी। जौनी=जिस। गाढ=विपत्ति। समान=ज्ञान।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति सचेत रहने के लिए कहती हुई वर्णन करती है कि हे सखि। मेरी बात को ध्यान से सुनो और जिस गली मे कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाता हुआ जाता है, उस गली मे बिल्कुल मत जाओ, क्योकि देखते ही कृष्ण प्राणो को हर लेता है और फिर गोपियाँ

बेचारी प्रेम की विपत्ति लेकर ही अपने घरो को लौटती है। उसने अपनी बाँसुरी की तानो का सारे ब्रज मे तान तान रक्खा है, अत: मैं तुझसे ज्ञान की बात कहती हूँ कि बहुत सोच समझकर पैर रक्खो, क्योकि वह कृष्ण इसी प्रकार फँसाता है, जिस प्रकार चारा देकर मछली को फँसाया जाता है।

विशेष—१ यमक, श्लेष अलकार।

२. 'तकि पाय धरौ रपटाय नही' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

सवैया

काहे कूँ जाति जसोमति के गृह पोच भली घर हूँ तो रई ही।
मानुष को डसिबौ अपुनो हँसिबौ यह बात उहाँ न नई ही॥
बैरिनि तौ दृग-कोरनि मे रसखान जो बात भई न भई ही।
माखन सौ मन लै यह क्यो वह माखनचोर के ओर नई ही॥२१४॥

शब्दार्थ—पोच भली=चाहे कमजोर ही सही। रई=दूध मथने की लकडी। उहाँ=वहाँ पर। बैरिनि=औरतो का आत्मीयता-सूचक सम्बोधन। तौ=तेरे। न भई ही=पहले नही थी। माखन सौ=मक्खन के समान कोमल।

अर्थ—कोई गोपी यशोदा के घर गई और वहाँ से कृष्ण के प्रेम के वशीभूत होकर लौटी। उसकी भर्त्सना करती हुई उसकी सखी कह रही है कि तू यशोदा के घर गई ही क्यो? रई तो तेरे भी पास थी, भले ही वह कमजोर सही। वहाँ कृष्ण के द्वारा प्रेम का जाल फैलाकर भोली नारियो को डसना और उन नारियो के फिर अपनी हँसी कराना कोई नई बात नही है। वहाँ तो प्रतिदिन ऐसा ही होता रहता है। हे बैरिनि! तेरे नेत्रो मे आज जो बात मैं देख रही हूँ, वह पहले तो नही थी, अर्थात् आज तुम्हारी आँखों मे प्रेम की मादकता है। अपना मक्खन-जैसा कोमल हृदय लेकर तू उस माखनचोर की ओर गई ही क्यो थी?

विशेष—१ उपमा अलकार।

२. अतिम पक्ति मे 'माखन' और 'माखनचोर' का प्रयोग अत्यन्त औचित्यपूर्ण है।

३. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे यह सवैया नही है।

सवैया

हेरति बारही बार उसै तुव बावरी बाल, कहा धौ करैगी ।
जौ कबहुँ रसखानि लखै फिर क्यो हूँ न बीर ही धीर धरैगी ॥
मानि है काहू की कानि नही, जब रूप ठगी हरि रंग ढरैगी ।
यातै कहौ सिख मानि भटू यह हेरनि तेरे ही पैंडे परैगी ॥२१५॥

शब्दार्थ—हेरति=देखती है । बीर=सखी । कानि=लज्जा, भय । रंग=प्रेम । सिख=शिक्षा । भटू=सखी । हेरनि=देखा । पैंडे=पीछे ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! तू बार-बार कृष्ण की ओर देखती है । हे पगली ! तू नही जानती कि इसका परिणाम क्या होगा ? यदि कभी आनन्द-सागर कृष्ण ने तेरी ओर देख लिया तो, हे सखि ! फिर तू अपना सारा धैर्य खो बैठेगी और उसमे अनुरक्त हो जायेगी । तब तू किसी भी प्रकार की लज्जा नही पावेगी और कृष्ण के प्रेम मे रग जायेगी । हे सखि ! इसलिए मैं तुझसे कहती हूँ कि तू मेरी शिक्षा मान, अन्यथा यह देखना तेरे ही पीछे पड जायेगा, अर्थात् जब तू कृष्ण से प्रेम करने लगेगी तो फिर तुझे बडी व्याकुलता होगी, तेरा सुख-चैन सब दूर हो जायेगा ।

सवैया

बाँके कटाछ चितैबो सिख्यौ बहुधा बरज्यौ हित कैं हितकारी ।
तूं अपने ढग की रसखानि सिखावनि देति न हौं पचिहारी ॥
कौन की सीख सिखी सजनी अजहूँ तजि दै बलि जाउँ तिहारी ।
नन्द के नन्दन के फन्द अजूँ परि जैहै अनोखी निहारिनिहारी ॥२१६॥

शब्दार्थ—कटाछ=कटाक्ष, तिरछी दृष्टि से । हितकारी=प्रेम करने वाला पति । हौ पचिहारी=मैं कोशिश करके हार गई हूँ । निहारिनिहारी= देखने वाली ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! तूने बाँकी-तिरछी दृष्टि से देखना तो सीख लिया है, अर्थात् तू प्रेम करना तो जान गई है, पर प्राय अपना अपने प्रेम करने वाले पति की भर्त्सना कर देती है । तू तो अपने ही प्रकार की आनन्द-सागर से भरी हुई युवती है, जो मेरी शिक्षा नही मानती । मैं तो तुझे शिक्षा देते-देते कोशिश

करके हार गई हूँ। हे सजनी ! तू ने किसकी शिक्षा को ग्रहण कर लिया है? अपना मान छोड दे, मै तुझ पर न्योछावर होती हूँ। हे विलक्षण दृष्टि से देखने वाली ! यदि तू कही कृष्ण के फन्दे मे पड गई तो फिर मुसीवत आ जायेगी। अत तुझे अपना मान छोडकर अपने प्रियतम से प्रेम करना ही उचित है।

सवैया

बैरिन तूँ बरजी न रहै अवही घर वाहिर बैरु बढैगो।
टोना सु नन्द छुटोना पढै सजनी तुहि देखि विसेपि पढ़ैगो ॥
हसि है सखि गोकुल गाँव सतै रसखानि तबै यह लोक रढ़ैगो।
बैरु चढै घरहि रहि बैठि अटा न एढै बदनाम चढैगो ॥२१७॥

शब्दार्थ—वरजी न रहैं=रोकने पर नही रुकती। टोना=जादू। छुटोना=लडका। विसेप=विशेप। लोक=दुनिया। बैरु=आयु।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रेम मे दिवानी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि। तू रोकने पर भी नही रुकती। यदि तेरा कृष्ण के प्रति ऐसा ही लगाव रहा तो घर और बाहर बैर बढ जायेगा। नन्दपुत्र कृष्ण जादू के मन्त्र से तो सदा ही पढता रहता है, पर तुझे देखकर वह और भी विशेष रूप से पढेगा। सारा गोकुल गाँव तेरी हँसी उडायेगा और सारी दुनिया तेरी निन्दा करेगी। अब तेरी आयु चढ रही है; अर्थात् तू युवती हो रही है, अत तेरा घर के अन्दर बैठना ही ठीक है; अट्टाली पर चढना ठीक नही है, क्योकि इससे तेरी बदनामी होगी।

विशेष—१. 'बैरिनि' शब्द का प्रयोग आत्मीयता का सूचक है।
२. 'बैरु चढ़ै' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।
३. अन्तिम पक्ति मे लक्षणा शब्द-शक्ति और असंगति अलंकार का प्रयोग भाववर्द्धक है।

सवैया

गोरस गाँव ही मै विचिवो तचिवो नही नन्द-मुखानल झारन।
गैल गहे चलियै रसखानि तौ पाप बिना डरियै किहि कारन ॥
नाहि री ना भटू, क्यों करि कै बन पैठत पाइबी लाज सम्हारन।
कुंजनि नन्दकुमार बसै तहाँ मार बसै कचनार की डारन ॥ २१८ ॥

शब्दार्थ—तचिबो=जलना। नद-मुखानल-झारन=ननद के मुंह की आग की लपटे। गैल—मार्ग। भटू=सखी। मार=कामदेव।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से गोरस बेचने के लिए बाहर चलने के लिए कहती है। उसकी बात सुनकर वह सखी कहती है कि हे सखि ! मैं गोरस गाँव मे ही बेचूँगी, क्योकि ननद के मुख की आग की लपटों मे जलना, ननद की फटकारे सुनना, अच्छा नही है। जब मैं बाहर जाती हूँ तो मेरी ननद कृष्ण और मुझे लक्ष्य करके अनेक प्रकार की मर्मान्तक गालियाँ देती है। यह सुनकर वह गोपी कहती है कि हम अपने रास्ते चली जायेंगी। जब तुम्हारे मन मे कोई पाप ही नही है तो फिर तुम अपने मन मे क्यो डरती हो ? यह सुनकर फिर सखी कहती है कि सखि ! मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगी, क्योकि उस वन मे घूमने पर जहाँ कृष्ण रहते हैं, किस प्रकार अपनी लाज सँभाली जा सकती है। वहाँ कुंजों मे तो कृष्ण रहते है और कचनार की डालियों मे कामदेव निवास करता है।

कहने का भाव यह है कि उस वन का, जहाँ कृष्ण रहते हैं, वातावरण ही इतना मादक है कि वहाँ पहुँचते ही मन इतना कामपूर्ण हो जाता है कि फिर उचित-अनुचित का ध्यान ही नही रहता। अत. मुझे गाँव से बाहर निकलना उचित नही है।

सवैया

वार ही गोरस बेंचि री आजु तू माइ के मूड चढ़ै कत मौड़ी।
आवत जात ही होइगी साँझ भटू जमुना मतरौंड लौ औंड़ी ॥
पार गए रसखानि कहै अँखियाँ कहूँ होहिंगी प्रेम कनौड़ी।
राधे बलाइ ल्यौं जाइगी बाज अबै ब्रजराज सनेह की डौंडी ॥ २१६ ॥

शब्दार्थ—वार ही=इस पारही। मौडी=सखी। मतरौंड़=मथुरा और वृन्दावन के बीच का एक स्थान। प्रेम कनौड़ी=प्रेम के वशीभूत।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज तू अपना गोरस नदी के इस पार ही बेच ले और नदी के उस पार न जा। क्योकि यमुना पार से मतरौड़ तक जाते-आते ही साँझ हो जायेगी। दूसरा कारण यह है कि नदी के उस पार जाने पर आनन्द सागर कृष्ण मिल जायेंगे, जिन्हे देखते ही न जाने आँखे प्रेम के वशीभूत हो जायें। फिर यह बात राधा तक भी पहुँच जायेगी और सारे ब्रज मे कृष्ण के प्रेम की डोडी पिट जायेगी।

तुलना—'हाय दई न बिसाखी सुनै कछु है जग बाजत नेह की डौडी।'
—घनानन्द

कवित्त

ब्याही अनब्याही ब्रज माही सब चाही तासौ,
दूनी सकुचाही दीठि परै न जुन्हैया की।
नेकु मुसकानि रसखानि को बिलोकत ही,
चेरी होति एक बार कुंजनि दिखैया की॥
मेरो कह्यौ मानि अन्त मेरो गुन मानिहै री,
प्रात खात जात ना सकात सौहै मैया की।
माई की अटक तौ लौ सासु की हटक जौ लौ,
देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की॥ २२०॥

शब्दार्थ—जुन्हैया=चाँदनी। चेरी=दासी। हटक=बाधा।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि ब्रज की जितनी भी विवाहित नारियाँ और अविवाहित युवतियाँ है, सब कृष्ण को चाहती है, उससे प्रेम करती है। वैसे वे इतनी लज्जाशील है कि चाँदनी की दृष्टि भी उन पर न पड जाये, इसलिए दूने सकोच के साथ वे अपने घर से बाहर निकलती है। किन्तु उस तथा कुन्ज दिखाने वाले कृष्ण की तनिक सी मुस्कराहट को भी देख कर वे तुरन्त उसकी दासी बन जाती है। हे सखि। तुम मेरा कहना मानो और अन्त मे तुम मेरा अहसान स्वीकार करोगी। तुम्हे अपनी माँ की सौगन्ध है, तुम कभी भी प्रात काल बिना खाना खाये बन मे न जाना, अन्यथा वहाँ सारे दिन तुम्हे भूखा रहना पड़ेगा। भाई की बाधा और सासु की रुकावट मेरे मार्ग मे तब तक ही बनी हुई है, जब तक उन्होने मेरे प्रिय कृष्ण की छवि को नही देखा है; अन्यथा वे स्वय भी उस छवि पर मुग्ध हो जायेगी।

सवैया

मो हित तो हित है रसखान छपाकर जानहि जान अजानहि।
सोउ चबाव चल्यौ चहुँवा चलि री चलि री खत तोहि निदानहि॥
जो चहियै लहियै भरि चाहि हियै सहियै हित काज कहा नहि।
जान दै सास रिसान दै नन्दहि पानि दै मोहि तू कान दै तानहि॥२२१॥

शब्दार्थ—मो हित तो हित है=मेरी भलाई तेरी ही भलाई मे है।

छपाकर=चन्द्रमा। चवाव=निन्दा। खत=हानि। निदानहिं=अन्त में। जो चहियै लहियै भरि चाहि=यदि कृष्ण को प्रेम पूर्वक आँख भरकर देखना चाहती है। हित काज=प्रेम के लिए। पानि=हाथ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को शिक्षा देती हुई कहती है कि मेरी भलाई तेरी ही भलाई है। अर्थात् मैं जो कुछ कह रही हूँ वह सब तेरी ही भलाई के लिए कह रही हूँ। तू चन्द्रमा को जानकर भी अजान क्यो बनी हुई है; अर्थात् चन्द्रमा भावोद्दीपक है, इस बात को जानकर भी तू कृष्ण से क्यो नही मिल रही है। तेरे कलक की चर्चा चारो ओर चल रही है और इस चर्चा से अन्त मे तुझे ही हानि होगी, अत तू चल कर कृष्ण से मिल। यदि तू कृष्ण को प्रेमपूर्वक आँख भरकर देखना चाहती है तो तुझे सभी प्रकार की निन्दा सहन करनी होगी, क्योकि प्रेम के लिए क्या कुछ नही सहा जाता। अत तू सास की चिन्ता छोड, ननद को क्रुद्ध होने दे, मुझे अपना हाथ दे; अर्थात् मेरे ऊपर विश्वास कर और कृष्ण की तानो को सुन; अर्थात् कृष्ण से मिल।

विशेष—१. तृतीय पक्ति मे यमक अलकार।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

तेरी गलीन मैं जा दिन ते निकसे मन मोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सो कौन सी बात चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत॥
वे रसखानि जो रीझिहै नेकु तौ रीझि कै क्यो न बनाइ रिझावत।
बावरी जौ पै कलक लग्यौ तो निसक ह्वै क्यौ नही अंक लगावत॥२२२॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत। अक=हृदय।

अर्थ—कृष्ण प्रेम से विमुख किसी गोपी को उसकी सखी समझती हुई कहती है कि जिस दिन से तेरी गली मे से श्रीकृष्ण गोचारण का गीत गाते हुए निकले है, उस दिन से न जाने ब्रज मे लोगो ने कौन सी बात चला दी है कि तेरे नेत्र ही पटकने बन्द हो गये है। यदि आनन्द सागर कृष्ण तुझ पर तनिक भी रीझ गये है तो तू अच्छी प्रकार से रिझाकर उन्हे अपने वश मे क्यो नहीं करती, यदि तुझे प्रेम का कलक लग ही गया है तो निर्भय होकर कृष्ण को अपने हृदय से क्यो नही लगाती ?

विशेष—१. 'बात' का क्लिष्ट प्रयोग है।

२ अंतिम पंक्ति मे शब्द एव भाव छटा अनुपम है।

तुलना—१. 'कौन संकोच रह्यौ है निवाज,

जो तू तरसै उनहूँ तरसावत।

बावरी जो पै कलक लग्यौ,

तो निसक ह्वै क्यो नहि अक लगावत।

—निवाज

२. विस्नु विरचि बिचारि मनावत,

गावत कीरति मोद पगावत।

बावरी जो पै कलक लग्यौ,

तो निसक ह्वै क्यो नही अक लगावत।'

—मोहन

३ होनी हुती सो तो होय चुकी,

इन बातन मे अब लाभ कहा है।

लागे कलंकहु अक नही,

तो सखि भूल हमारी महा है।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

जाहु न कोऊ सखी जमुना जल रोके खड़ो मग नन्द को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै रसखानि चलावत प्रेम को भाला॥
मैं जु गई हुती बैरन बाहर मेरी करी गति टूटि गौ माला।
होरी भई कै हरी भए लाल कै लाल गुलाल पगी ब्रजबाला॥ २२३॥

शब्दार्थ—मग=मार्ग। नन्द को लला=कृष्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि! किसी को भी यमुना जल भरने नही जाना चाहिए, क्योकि कृष्ण मार्ग रोके हुए खड़ा है। वह अपनी आँखो को नचाकर मन को चचल बना कर प्रेम का भाला चलाता है। मैं जो बाहर निकल गई तो मेरी उस कृष्ण ने ऐसी दुर्गति की कि मेरे गले की माला भी टूट कर गिर गई। यह होली है या कृष्ण के द्वारा हरण है, क्योकि सभी ब्रजबालाएँ कृष्ण के गुलाल से लाल हो रही हैं।

सोरठा

अरी अनोखी वाम, तू आई गौने नई।
वाहर धरसि न पाय, है छलिया तुव ताक मैं।२२४।

शब्दार्थ—अनोखी=सुन्दर । वाम=स्त्री । छलिया=कृष्ण । तुव ताक मैं=तेरी खोज मे ।

अर्थ—ब्रज मे आई किसी नई गोपी को अन्य गोपी चेतावनी देती हुई कहती है कि हे सुन्दर नारी ! तू नई-नई गौने मे आई है, अत यहाँ की वातो को नही जानती । तू अपने घर से वाहर पैर न रखना, क्योकि कृष्ण तेरी खोज मे है । यदि तू उसे मिल गई तो वह तुझे अपने प्रेम-बन्धन मे बाँध लेगा ।

संयोग-वर्णन

सवैया

बिहरैं पिय प्यारी सनेह सने छहरैं चुनरी के फवा कहरैं।
सिहरैं नव जोवन रग अनग सुभग अपागनि की गहरैं ॥
वहरैं रसखानि नदी रस की लहरैं वनिता कुल हू भहरैं।
कहरैं बिरही जन आतप सो लहरैं लली लाल लिये पहरैं ॥२२४॥

शब्दार्थ—सनेह सने=प्रेम पूर्वक । फवा=फुंदने । फहरैं=गिरते हैं । सुभग=सुन्दर । अपागनि=नेत्रो की कोरे । कहरैं=दुखी होते है । आतप=विरह दुख ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण प्रिया राधा के साथ प्रेमपूर्वक विचरण करते है जिसकी चुनरी के फुदने छहर कर गिरते है । सुन्दर नेत्र-वोरो की गभीरता से उसका नव-यौवन सिहरता है तथा प्रेम के कारण काम-भावना उत्पन्न होती है । रसखान कहते है कि वहाँ पर आनन्द की नदी वहती है जिसके किनारो पर खडी व्रज-वालाएँ काँपती है । उसके कारण विरही जनो का विरह दुख वढता है और वे उससे दुखी होते है तथा कृष्ण राधा के साथ प्रसन्न हो रहे है ।

विशेष—अनुप्रास अलकार ।

सवैया

सोई हुती पिय की छतियाँ लगि बाल प्रबीन महा मुद मानै ।
केस खुले छहरैं बहरैं फहरैं छबि देखत मैन अमानै ।।
वा रस मै रसखानि पगी रति रैन जगी अँखियाँ अनुमानै ।
चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब कैरव कैरव पै मुकता प्रयानै ।।२२६।।

शब्दार्थ—सोई हुई=सोई हुई थी । मुद=प्रसन्नता । छहरैं=फैले हुए थे । बहरैं फहरैं=बाहर निकलकर हिल रहे थे । मैन=कामदेव अमानै=अमान्य, तिरस्करणीय । चन्द=चन्द्रमा जैसा मुख । बिम्ब=कुँदरु, आँखों की ललाई । कैरव=कुमुद, आँखो के सफेद कोए । मुकतान—मोतियो के; रात मे जागने के कारण आँसओ के ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी के सुरतान्त का वर्णन करती हुई कहती है कि वह चतुर बाला अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपने प्रियतम की छाती से लगाकर सोई हुई थी । उसके खुले हुए केश बाहर निकलकर हिल रहे थे । उसकी शोभा को देखकर कामदेव भी तिरस्करणीय था । प्रिय के साथ आनन्द मे डूबी रहकर रातभर जागने की बात का पता उसकी आँखो से चल रहा था । उसका अलसाया हुआ मुख, लाल आँखे, आँखो के सफेद कोए और रातभर जगाने के कारण जम्भाई के कारण निकले हुए आँसू ऐसे प्रतोत होते थे मानो चन्द्रमा पर बिम्ब, बिम्ब पर कुमुद और कुमुद पर मोती हो ।

विशेष—प्रतीप और रूपक अलकार ।

सवैया

अगनि अग मिलाइ दोऊ रसखानि रहे लिपटे तरु छाही ।
संगनि सग अनग को रंग सुरंग सनी पिय दै गलबाही ।।
बैन ज्यौ मैन सु ऐन सनेह को लूटि रहे रति अन्तर जाही ।
नीबी गहै कुछ कंचन कुम्भ कहै बनिता पिय नाही जु नाही ।।२२७।।

शब्दार्थ—अनग=कामदेव । रग=प्रेम । सुरग=उन्मादक । ऐन=घर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी अन्य गोपी के सुरत-शृगार का वर्णन करती हुई कहती है कि वे दोनो वृक्ष की छाया मे अपने अग से अंग मिला रहे थे । वह नायिका उसके साथ कामदेव के उन्मादक प्रेम मे डूबकर

उसे वाहुपाश मे जकड़े हुए थी। उसके वचन कामदेव के घर जान पडते थे; अर्थात् उसके वचनो से काम-भावना की अभिव्यक्ति हो रही थी। वे दोनो रति के अन्तर्गत प्रेम की लूट कर रहे थे। जब उसका प्रिय उसकी नीवी को और कचन कुच-कुम्भो को ग्रहण करता था तो वह वनिता नही नही कर रही थी।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, रूपक अलकार।

तुलना—'हाथन सो गहि नीवी कह्यौ पिय,
नाही जु नाही जु नाही जु नाही।'
—हरिश्चन्द्र

सवैया

आज अचानक राधिका रूप-निधान सो भेट भई वन माही।
देखत दीठि परे रसखानि मिले भरि अक दियें गलबाही॥
प्रेम-पगी वतियाँ दुहुँ घाँ की दुहूँ को लगी अति ही चितचाही।
मोहिनी मत्र वसीकर जन्त्र हटा पिय की तिय की नहिं नाही॥२२८॥

शब्दार्थ—रूप-निधान—सौन्दर्य-भण्डार। रसखानि—आनन्द-सागर कृष्ण। अक—वाहुपाश। प्रेम-पगी=प्रेमपूर्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज अचानक वन मे राधा और सौन्दर्य-भण्डार कृष्ण की भेट हो गई। आनन्द-सागर कृष्ण ने उसे देखते ही गलवाँही देकर वाहुपाश मे वाँध लिया। दोनो प्रेम-पूर्ण वाते करने लगे, दोनो के मन मे ही मिलन की अत्यन्त प्रवल इच्छा थी। प्रियतम कृष्ण का 'हा हा करना' यदि मोहिनी मत्र था तो राधा का 'नही नही करना' वशीकरण मन्त्र था।

सवैया

वह सोई हुती परजक लली लला लीनो सु आइ भुजा भरिकै।
अकुलाइ कै चौकि उठी सु डरी निकरी चहै अकनि ते फरिकै॥
झटका झटकी मैं फटौ पटुका दर की अगिया मुकता झरिकै।
मुख वोल कढे रिस से रसखानि हटौ जू लला निविया धरिकै॥२२९॥

शब्दार्थ—हुती=थी। परजक=पर्यंक। अकनि ते=भुजाओ मे से। पटुका=दुपट्टा। दरकी=फट गई। मुकता=मोती।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी की सुरत का वर्णन करती हुई कहती है कि वह अपने पलग पर सोई हुई थी कि कृष्ण ने आकर उसे अपनी भुजाओ मे भर लिया। वह आकुल होकर चौक उठी, डर गई और फड़क कर उसकी गोद से निकलने का प्रयत्न करने लगी। इस झटका झटकी मे उसका दुपट्टा फट गया, चोली भी फट गई और उसमे से मोती टूटकर नीचे गिर पड़े। रसखान कहते है, तब उसने क्रोधपूर्वक कृष्ण से कहा कि हे कृष्ण! दूर हट जाओ, मेरी नीवी धडक रही है।

विशेष—अनुभावो का सजीव एव स्वाभाविक वर्णन है।

सवैया

अँखियाँ अँखियाँ सौ सकाइ मिलाइ हिलाइ रिझाइ हियो हरिबो।
बतिया चित चोरन चेटक सी रस चारु चरित्रन ऊचरिबो॥
रसखानि के प्रान सुधा भरिबो अधरान पै त्यौ अधरा धरिबो।
इतने सब मैन के मोहिनी जन्त्र पै मन्त्र बसीकर सी करिबो॥ २३०॥

शब्दार्थ—सकाइ=सकोचपूर्वक। चेटक=जादू। चारु=सुन्दर। ऊचरिबो=उच्चरित करना, कटना। बसीकरण=वशीकरण। सी=सी सी की ध्वनि।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी के सुख शृंगार का वर्णन कहती हुई कहती है कि उसने सकोचपूर्वक अपने प्रियतम की आँखो से अपनी आँखे मिलाई; गर्दन हिलाकर और उसके द्वारा अपने प्रिय को रिझाकर उसने उसका हृदय अपने वश मे कर लिया। चित्त को चुराने वाले चोरो की सी जादू-भरी बाते करके उसने रमणीय आनन्द दिया। अपने प्रिय के अधरो पर अपने अधर रखकर उसने उसके प्राणो मे अमृत उड़ेल दिया। इतने सारे मोहने वाले कामदेव के मन्त्रो को अपनाकर भी उसने सी-सी ध्वनि करके अपने करने प्रियकर वशीकरण मन्त्र डाल दिया।

विशेष—यमक, उपमा अलकार।

सवैया

बागन काहे को जाओ पिया, बैठी ही बाग लगाम दिखाऊँ।
एडी अनार सी मौरि रही, बरियाँ दोउ चम्पे की डार नवाऊँ॥

छातिन मैं रस के निवुआ अरु घूंघट खोलि कै दाख चखाऊं।
टाँगन के रस के चसके रति फूलनि की रसखानि लूटाऊँ ॥२३१॥

शब्दार्थ—मौरि रही=फूल रही है। दाख=द्राक्षा, अधर। टाँगन=छुहारा।

अर्थ—कोई नायिका नायक से कह रही है कि हे प्रियतम ! तुम वाग मे क्यो जाते हो ? मै घर वैठे ही तुम्हे वाग लगाकर दिखा सकती हूँ। मेरी एडियाँ अनार की भाँति फूल रही है, मानो ये ही अनार है। दोनो वाँहे ही मानो चम्पे की डाले है। छाती मे उभरे हुए स्तन ही मानो रस भरे नीवू है। मैं घूघट खोलकर तुम्हे द्राक्षा चखा सकती हूँ, अर्थात् मेरे अवरो के चुम्वन मे द्राक्षा का आनन्द भरा हुआ है। रसखान कहते हैकि जंग रूपी छुहारो का रस तुम्हे चखा सकती हूँ और प्रेम की कलियाँ तुम पर लुटा सकती हूँ।

विशेष—वर्णन मे काव्यात्मकता कम है और सागरूपक की सयोजना का प्रयत्न अधिक है।

वियोग-वर्णन

सवैया

फूलत फूल सवै वन वागन वोलत मौर वसत के आवत।
कोमल की किलकार सुनै सब कत विदेसन ते सब धावत॥
ऐसे कठोर महा रसखान जु नेकहु मोरी ये पीर न पावत।
हूक सी सालत है हिय मैं जव वैरिन कोमल कूक सुनावत ॥२३२॥

शब्दार्थ—कंत=प्रियतमा। हूक=वरछी।

अर्थ—कोई विरहणी गोपी अपनी सखी से कहती है कि सारे वागो मे फूल खिल गये है। वसन्त के आगमन के कारण भौरे उन पर गूँज रहे है। कोयल की कू-कू सुनकर सवके प्रियतम कृष्ण इतने कठोर है कि मेरी विरह-वेदना की तनिक भी चिन्ता नही करते। जव कोयल वोलती है तो उसकी कूक हृदय मे वरछी के समान लगती है।

विशेष—१. उपमा अलकार।
२ परम्परागत वर्णन।
३. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्था-वली' मे नही है।

सवैया

रसखान सुनाह वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की ।
पकज सौ मुख गौ मुरझाय लगी लपटै बरै स्वाँस हिया की ।।
ऐसे मे आवत कान्ह सुने हुलसै सुतनी तरकी अँगिया की ।
यो जन जोति उठी तन की उसकाय दई मनौ वाती दिया की ।।२३३।।

शब्दार्थ—सुनाह=प्रियतम । ताप=दुख । पकज=कमल । बरै=जलने लगी । हुलसै=प्रसन्न हुई । सुतनी=दृढ डोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से किसी अन्य विरहिणी गोपी के विषय मे कह रही है । वह गोपी अपने प्रियतम के वियोग-दु ख से इतनी दुखी थी कि उसके शरीर की शोभा भी मद पड गई थी । उसका कमल-जैसा मुख भी मुरझा गया था । उसके हृदय की साँसे लपट बनकर जलने लगी थीं । इसी बीच उसने अपने प्रियतम के आगमन की खबर सुनी । वह इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी कचुकी की दृढ डोर भी कसमसाने लगी । उसका शरीर इस प्रकार शोभायुक्त हो उठा, मानो दीपक की वत्ती को उकसा दिया गया हो ।

विशेष—१. उपमा, उत्प्रेक्षा, समाधि अलकार ।
२ सवैया २०० मे भी यही उत्प्रेक्षा है ।
३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है ।

सवैया

विरहा की जु आँच लगी तन मे तब जाय परी जमुना जल मे ।
विरहानल तैं जल सूखि गयौ मछली वही छाँडि गई तल मे ।।
जब रेत फटी रु पताल गई तब सेस जर्‍यौ धरती-तल मे ।
रसखान तबै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगै गल मे ।।२३४।।

शब्दार्थ—विरहानल=वियोग की आग । धरती-तल—पाताल लोक । आँच मिटै=दुख दूर होगा, ज्वाला शान्त होगी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य विरहिणी गोपी का वियोग-दुख वर्णन करती हुई कहती हैं जब उसके शरीर मे वियोग-दुख की आग बढ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना जल मे कूद गई । तब विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के अभाव के कारण

यमुना के तल मे बैठ गईं। उस आग के कारण जब यमुना का जल अत्यन्त गर्म हो गया तो उसकी गरमी से पाताल-लोक मे स्थित शेषनाग भी जलने लगा। रसखान कहते है कि यह ज्वाला तभी शात हो सकती है जब कृष्ण उसके गले से आकर लगेगे।

विशेष—१. ऊहात्मकता के कारण भाव-शून्यता।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' मे नही है।

तुलना—'प्यारी कौ परसि पौन गयो मानसर पँह,
लागत ही औरे गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सिवार जरि छार भयौ,
जल जरि गयौ पक सूख्यौ भूमि दरकी।'
—गग कवि

सवैया

बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हियै जिन ढारौ।
कज की माल करौ जु बिछावत होत कहा पुनि चदन गारौ॥
एते इलाज बिकाज करौ रसखानि को काहे को जारे पैं जारौ।
चाहत हौ जु जिवायौ भटू तौ दिखावौ बडी बड़ी आँखिनिवारौ॥२३५॥

शब्दार्थ—गुलाब के नीर=गुलाब जल। उसीर=खस। गारौ=लेप। बिकाज=व्यर्थ। भटू=सखी।

अर्थ—कोई विरह-व्याकुल गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! मेरे हृदय मे गुलाबजल और खस छिडकना बेकार है। कंजमाला का बिछावन करने से तथा चदन का लेप करने से भी कोई लाभ नही है। ये सारे उपचार व्यर्थ है, वरन् ये तो मेरी जलन को और अधिक बढ़ाते है। हे सखि! यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मुझे विशाल नेत्र वाले कृष्ण का दर्शन करा दो।

विशेष—वर्णन परम्परागत है।

सवैया

काह कहूँ रतियाँ की कथा बतियाँ कहि आवत है न कछू री।
आइ गोपाल लियौ भरि अक कियौ मनभायौ पियौ रस कू री॥

ताहि दिना सो गडी अँखियाँ रसखानि मेरे अंग अग मैं पूरी ।
पै न दिखाई परै अब बावरी दै कै वियोग विथा की मजूरी ।।२३६।।

शब्दार्थ—रतियाँ की=रात की । अक=गोद ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी-विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं रात की बाते तुमसे क्या कहूँ ? वे बाते तो कहने मे ही नही आती । कृष्ण ने मुझे अपनी गोद मे भर लिया, उसने अपनी मनोकामना पूरी की, और रस का पान किया । उसी दिनसे उस आनन्द-सागर की आँखे पूर्णतया मेरे अग-अग में गडी हुई है, अर्थात् मैं उनकी शोभा को तनिक देर के लिए भी नही भूल पाती । किन्तु हे सखि ! वियोग-व्यथा को मजदूरी रूप मे देकर वह कृष्ण अब दिखाई नही पड़ता ।

विशेष—१. परम्परागत वर्णन है ।
२. 'बावरी' शब्द आत्मीयता का सूचक है ।

कवित्त

काह कहूँ सजनी सँग की रजनी नित बीतै मुकुन्द कोटे री ।
आवन रोज कहै मनभावन आवन की न कबौ करी फेरी ।
सौतिन-भाग बढ्यौ व्रज मै जिन लूटत हैं निसि रग घनेरी ।
मो रसखानि लिखी बिधना मन मारिकै आयु बनी हौ अहेरी ।।२३७।।

शब्दार्थ—मुकुन्द=कृष्ण । रग=आनन्द । विधिना=ब्रह्मा । अहेरी=शिकारी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से सपत्नी-भाव को प्रकट करती हुई कहती है कि हे सजनी ! मै तुमसे अपनी व्यथा किस प्रकार प्रकट करूँ ? सारी रात कृष्ण की बाट देखते-देखते ही बीत जाती है । मनभावन कृष्ण रोजाना मेरे पास आने को कहते है, लेकिन उनकी मेरे यहाँ आने की कभी बारी ही नही आती । आजकल तो ब्रज मे वह सौत ही बहुत भाग्यशाली है जो कृष्ण के साथ रात को अत्यधिक आनन्द का भोग करती है । रसखान कहते है कि मेरे भाग्य मे तो ब्रह्मा ने यही लिखा है कि मै अपने-आपको मारने के लिए स्वयं ही अपनी शिकारी बनी हुई हूँ ।

सवैया

आये कहा करि कै कहिए वृषभान लली सो लला दृग जोरत ।
ता दिन तें अँसुवान की धार रुकी नही जद्यपि लोग निहोरत ।

वेगि चलो रसखान वलाइ लौं क्यो अभिमानन भौंह मरोरत ।
प्यारे । पुरन्दर होय न प्यारी अवै पल आधिक मे व्रज वोरत ॥२३८॥

शब्दार्थ—निहोरत=समझाते हैं । वलाइ लौ=वलैया लेती हूँ । पुरन्दर=इन्द्र । पल आधिक मे=एकआध पल मे । वोरत=डुवोना ।

अर्थ—राधा की कोई सखी कृष्ण को समझाती हुई कहती है कि हे कृष्ण ! तुम यह तो वताओ कि राधा से अपनी आँखे मिलाकर तुम उस पर क्या जादू कर आये हो, क्योकि उसी दिन से उसकी आँसुओ की धारा रुकी नही है, यद्यपि लोग उसे वहुत समझाते हैं । हे आनन्द-सागर कृष्ण । जल्दी चलो, मै तुम्हारी वलैया लेती हूँ, क्यो अभिमान करके तुम रुक रहे हो । हे प्यारे ! यदि तुम नही चले तो वह विरहिणी राधा अपने आँसुओ मे एक-आध पल मे ही इन्द्र वनकर सारे व्रज को डुवो देगी ।

विशेष—१. एक वार इन्द्र ने व्रज-वासियो से रुष्ट होकर समूचे व्रज को डुवा देने का सकल्प किया और मूसलाधार वर्षा शुरू कर दी तव कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर व्रजकी रक्षा की । इस सवैया की अतिम पक्ति मे इसी कथा की ओर सकेत है ।

२. 'पुरन्दर होय न प्यारी' का एक अर्थ यह भी हो सकता है—राधा को इन्द्र मत समझो, क्योकि इन्द्र से तो तुमने गोवर्धन उठाकर व्रज की रक्षा कर ली थी, पर राधा से किसी प्रकार भी उसे नही वचा पाओगे ।

३. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे यह सवैया नही है ।

तुलना—१ 'सखी इन नैननि तै घन हारे ।
विनही रितु वरपत निति वासर, सदा मलिन दोउ तारे
ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे
वदन सदन कहि वसे वचन-खग, दुख पावस के मारे ।
दुरि दुरि वूँद परत कंचुकि पर, मिलि अजन सौ कारे ।
मानौ परनकुटी सिव कीन्ही, विवि मूरति धरि न्यारे ।
घुमरि घुमरि वरषत जल छाँडत, डर लागत अँधियारे ।
वूडत व्रजहिं सूर को राखै, विनु गिरवरधर प्यारे ॥'

२. 'कहु रहीम उत जाय कै, गिरधारी सो टेरि।
अब दृग जल भरि राधिका, जहि डुबावत फेरि ॥'
—रहीम

३. 'लाडिली के अँसुवान को सागर,
बाढत जात मनो नभ छ्वे है।
बात कहा कहिए व्रज की अब,
बूडीई ह्वै है कि बूढत ह्वै है ॥'
—रघुनाथ

४. 'जानि व्रज बूडत जू होते गिरिधारी तौ पे,
व्रज मे बढौते दुख-सोते कहो काहे के।'
—द्विजदेव

सवैया

गोकुल के बिछुरे को सखी दुख प्रान ते नेकु गयौ नही काढ्यौ।
सो फिर कोस हजार ते आय कै रूप दिखाय दधे पर दाध्यौ।
सो फिर द्वारिका ओर चले रसखान है सोच यहै जिय गाढ्यौ।
कौन उपाय किये करि है व्रज मे बिरहा कुरुखेत को बाढ्यौ ॥२२६॥

शब्दार्थ—गोकुल के बिछुरे को=गोकुल गाँव त्यागने का। दधे पर दाध्यौ=जले हुए को और जलाया। कुरुखेत को बाढ्यौ=कुरुक्षेत्र मे दिये गये दान के समान बढता ही जाता है। (पुराणो मे बताया गया है कि कुरुक्षेत्र मे किया गया दान आदि १३ दिन तक प्रतिदिन १३ गुनी वृद्धि को प्राप्त करता है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! अभी तक गोकुल गाँव से बिछुडने का दुख ही अपने मन से नही निकाला गया था कि बहुत दूर से कृष्ण ने आकर अपना सौन्दर्य दिखाकर हमे जले हुओ को और जलाया अपने प्रेम-पाश मे बाँधकर वे फिर द्वारिका को चले गये। हमारे मन मे अब यही दुख है कि ब्रज मे कुरुक्षेत्र मे दिये गये दान के समान नित्यप्रति बढते हुए इस विरह-दुख को किस प्रकार मिटाया जा सकता है।

विशेष—१. रूपक अलकार।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रथावली मे नही है।

तुलना—विरह भरेयौ कर आँगन कोने ।
दिन दिन बाढत जात सखी री, ज्यों कुरुखेत के डारे सोने ॥"
—सूरदास

सवैया

गोकुल नाथ बियोग प्रलै जिमि गोपिन नद जसोमति जू पर ।
बाहि गयौ अँसुवान प्रवाह भयौ जल मे ब्रजलोक तिहू पर ॥
तीरथराज सी राधिका प्रान सु तो रसखान मनौ ब्रज भू पर ।
पूरन ब्रह्म ह्वै ध्यान रह्यौ पिय औधि अखैबट पात के ऊपर ॥२४०॥

शब्दार्थ—प्रलै=प्रलय तीरथराज=प्रयाग, प्रयाग के समान पवित्र । औधि=अवधि । अखैबट=अक्षयवट, इस वृक्ष का प्रलयकाल मे भी नाश नही होता ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि कृष्ण के वियोग का दुख गोपियो, नद और यशोदा पर प्रलय का रूप धारण कर चुका है । इनके वियोगजन्य आँसुओ के प्रवाह मे ब्रजलोक जल मे बह गया है । प्रयाग के समान पवित्र राधा के प्राण ही समूचे ब्रज में इस धरती पर बच पाये हैं और वह भी इसलिए कि वह अपने पूर्ण ब्रह्म प्रियतम के ध्यान मे उनके आगमन की अवधि भी गिनती हुई अक्षयवृक्ष के पत्तो पर चढ गई है ।

विशेष—१. उपमा, अतिशयोक्ति अलकार ।
२. ऊहात्माकता के कारण भावो को क्षति ।
३. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्र थावली' मे नही है ।

सवैया

ए सजनी जब ते मैं सुनी मथुरा नगरी बरषा रितु आई ।
लै रसखान सनेह की ताननि कोकिल मोर मलार मचाई ॥
साँझ ते भोर लौ भोर ते साँझ लौ गोपिन चातक ज्यौ रट लाई ।
एरी सखी कहिये तो कहाँ लगि बैर अहीर ने पीर न पाई ॥२४१॥

शब्दार्थ—सनेह की ताननि=प्रेमपूर्ण स्वरो मे । साँझ ते भोर लौ भोर ते साँझ लौ—सन्ध्याकाल से प्रातःकाल तक और प्रातःकाल से सन्ध्याकाल तक । कहाँ लगि=कहाँ तक । बैरी=शत्रु; आत्मीयता=सूचक सम्बोधन । पीर न पाई=पीड़ा का अनुभव नही हुआ ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सजनी ! जब से मैंने यह सुना है कि मथुरा नगरी मे वर्षाऋतु आ गई है और कोयल तथा मोर प्रेम के स्वरो मे बोलने लगे है, तब से हर समय गोपियाँ चातक की भाँति पी-पी पुकार रही है। लेकिन हे सखि ! यह तो बताओ कि उस बैरी अहीर को (कृष्ण को) इन गोपियो की विरह-वेदना का कहाँ तक अनुभव हुआ है; वह तो अत्यन्त निष्ठुर और पाषाण-हृदय है।

विशेष—१. प्रकृति का उद्दीपन रूप मे परम्परागत वर्णन।

२. उपमा अलंकार।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

मग हेरत धूंधरे नैन भए रसना रट वा गुन गावन की।
अगुरी गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहि पावन की।
पथिकी कोउ ऐसो जु नाहि कहै सुधि है रसखान के आवन की।
मनभावन आवन सावन मे कही औधि करी डग बावन की ॥२४२॥

शब्दार्थ—मग हेरत=रास्ता देखते हुए। धूंधरे=धुंधले। रसना=जीभ। सगुनौती=शुभ शकुन। औधि=आने की अवधि। डग बावन की=वामनावतार के डगो की भाँति निरन्तर बढती हुई।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी विरहावस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! प्रियतम कृष्ण का रास्ता देखते हुए मेरे नेत्र धुंधले पड़ गये हैं; उसके गुणो का गान करती-करती जीभ थक गई है। उसके आने के दिनो को गिनती-गिनती अगुलियाँ थक गई है, लेकिन उनके आने का कोई भी शुभ शकुन प्राप्त नही होता। कोई भी ऐसा पथिक नही आता जो कृष्ण के आगमन का समाचार दे। कृष्ण सावन के महीने मे आने की कह गये थे, पर अभी तक नही आये। उनके आने की अवधि तो वामनावतार की तरह निरन्तर,बढती ही जा रही है।

विशेष—१. उपमा अलकार।

२. विरह का परम्परागत वर्णन।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-

ग्रन्थावली' मे नही है ।

तुलना—1 'बीती औधि आवक की लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ ।'—सेनापति
2. 'बावन को डग यौ बिरहा जु अहो मन भावन सावन आयौ ।'
—अज्ञात

सपत्नी-भाव

सवैया

वा रसखानि गुनौ सुनि कै हियरा सत टूक ह्वै फाटि गयौ है ।
जानति है न कछू हम ह्याँ उनवाँ पढि मत्र कहा धौ दयौ है ।
साँची कहै जिय मै निज जानि कै जानति है जस जैसो लयौ है ।
लोग लुगाई सबै ब्रज माँहि कहै हरि चेरी को चेरो भयौ है ॥२४३॥

शब्दार्थ—गुनौ=गुणो को । सत=सौ । कहा धौ=न जाने क्या । जस=यश । चेरी को=दासी कुब्जा का । चेरो=सेवक ।

अर्थ—गोपियाँ कुब्जा के प्रति ईर्ष्या भाव दिखाती हुई उद्धव से कहती है कि हे उद्धव ! उस आनन्द-सागर कृष्ण के गुणो को सुनकर हमारा हृदय सौ-सौ टुकडे होकर फट गया है । हम नही जानती कि कौन-सा मत्र पढकर कुब्जा ने कृष्ण पर चला दिया है । हम अपने मन मे विचार कर यह बात सत्य कहती हैं और जानती है कि कृष्ण ने इस प्रकार से कितना यश प्राप्त किया है ? अर्थात् वे बहुत बदनाम हो गये है, क्योकि ब्रज के सब नर-नारी यह कहते हैं कि कृष्ण कुब्जा दासी के दास बन गये है ।

विशेष—काकुवक्रोक्ति अलकार ।

सवैया

जानै कहा हम मूढ सबै समझीन तबै जबही बनि आई ।
सोचत है मन ही मन मै अब कीजै कहा बनियाँ जु गँवाई ॥
नीचो भयौ ब्रज को सब सीस मलीन भई रसखानि दुहाई ।
चेरी को चेटक देखहु ही हाई चेरो कियौ धौ कहा पढि माई ॥२४४॥

शब्दार्थ—जबही बनि आई—अवसर था। चेरी को—कुब्जा को। चेटक—जादू।

अर्थ—गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म के उपदेश को सुनकर बहुत दुखी होती है और परस्पर कहती है कि हम मूर्ख कुछ भी नही जानती, इसीलिए जब अवसर था, तभी हम अपने कर्तव्य को नही समझ सकी, अर्थात् जब कृष्ण ब्रज छोड़कर जा रहे थे, तभी उन्हे रोक लेना था। अब मन ही मन यह सोचती है कि जो बाते हो चुकी, उनके विषय मे कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। इस घटना से सारे ब्रज-वासियों का सिर झुक गया और सारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ सिद्ध हो गई। हे सखि ! उस कुब्जा का जादू तो देखो जिससे उसने कृष्ण को अपना दास बना लिया है। न जाने वह जादू उसने कहाँ पढ़ा है।

सवैया

काइ सौ 'माई कहा करियै सहियै सोई जो रसखान सहावै।
नेय कहा जब प्रेम कियौ तव नाचियै सोई जो नाच नचवै॥
चाहत है हम और कहा सखि क्यो हूँ कहूँ पिय देखन पावै।
चेरियै सौ जु गुपाल रच्यौ तौ भलौ ही सवै मिलि चेरी कहावै॥२४५।

शब्दार्थ—नेम—नियम। रूपौ—अनुरूप हो गया।

अर्थ—गोपियाँ परस्पर कहती है कि हे सखी ! किससे अपने मन की व्यथा कहे। आन्द-सागर कृष्ण ने जो दुख दिया है, अब तो उसे सहन करने के अतिरिक्त और कोई सहारा नही है। जब कृष्ण से प्रेम किया है तो फिर नियम आदि का स्थान भी क्या रह गया है। जिस प्रकार वह नचाये उसी प्रकार नाचना होगा। हे सखि ! हम और नहीकुछ चाहती। हम तो केवल यही चाहती हैंकि किस प्रकार कृष्ण के दर्शन कर सके। यदि कृष्ण दासी के वश मे ही होते है व(यो कि वे कुब्जा के वश मे हो गये है,) तो चलो और सब मिलकर उनकी दासी बन जाओ।

तुलना—१. 'चेरी ही सो जो पै रूचि रावही वढी है तो तो,
आओ ब्रजनाथ ब्रज हम सब चेरी है।'
—नाथ

२ 'दासी सो जो साँवरो उद्धव तो हमहूँ चलदासी बनेगी।'
—रसनायक

सवैया

भेती जु पै कुबरी ह्याँ सखी भरी लातन मूका बकोटती लेती ।
लेती निकारि हिये की सबै नक छेदि कै कौडी पिराइ कै देती ॥
देती नचाई कै नाच वा राँड को लाल रिझावन को फल सेती ।
सेती सदाँ रसखानि लिये कुबरी के करेजनि सूलसी भेती ॥२४६॥

शब्दार्थ—भेती=होती । बकोटती लेती=चोट लेती ।

अर्थ—कुब्जा के प्रति आक्रोश दिखाती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! यदि यहाँ पर वह कुब्जा होती लात-घूँसे मारकर उसे मोह लेती । अपने हृदय का सारा गुस्सा लेती और उसकी नाक को छेद कर उसमे कौडी पहिना देती । उस राँड को मैं नाच नचा देती और कृष्ण कोई रिझाने का फल देती । इस प्रकार मैं सदैव आनंद-सागर कृष्ण की सेवा करती जिससे कुब्जा के हृदय मे मैं सदैव काँटे की भाँति कसकती रहती ।

विशेष— १. मुक्त पदग्रहय यमक ।

२ नारी-पन के आक्रोश का स्थान का स्वाभाविक चित्रण ।

तुलना—'नीच जाति लौंडी जाको बेसर सो काम कहा,
दोऊ ओर छेद नाक कौडी एक डारती ।
दाँतनि सो काटि काटि लातन सो मारि मारि,
कुब्जा को कूबरी करेजो ह्ाँ निकारती ।

—अज्ञात

कुवलियापीड़-वध

सवैया

कस के क्रोध की फैलि रही सिगरे ब्रजमंडल माँझ फुकार सी ।
आइ गए कछनी कछिकै तबही नट-नागर नंदकुमार-सी ॥
द्वैरद को रद खैंचि लियौ रसखानि हिये माहि लाइ बिमार सी ।
लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कलक तमाल ते कीरति-डार सी ॥२४७॥

शब्दार्थ—फुकार=फुफकार । द्वैरद=हाथी, कुवलिया पीड । रद=दाँत

अर्थ—इस सवैया मे कवि कुवलयापीड के वध का वर्णन करता हुआ कहता है कि कस के क्रोध की आग सारे ब्रज मे फुफकार की तरह फैल रही थी और उसने कृष्ण को मरवाने के लिए कुवलयापीड से उनका युद्ध निश्चित

कर दिया था। उससे युद्ध करने के लिए कृष्ण कछनी बाँध कर आ गये। रसखान कहते है कि उन्होने अपने मन मे विचार कर के उस हाथी का दाँत लिया और उन्होने उसे तमाल की डाली की भाँति तोड दिया। कृष्ण का यह कार्य ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होने कलकरूपी तमाल वृक्ष जैसे तुच्छ स्थान पर लगी कीर्तिरूपी शाखा को तोड दिया हो।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलकार।

पाठान्तर—'इस सवैया की तृतीय पंक्ति का यह रूप भी मिलता है

'रद्ध दुरद्ध को ऐंच लियौ रसखान यहै, मन आइ बिचार सी।'

उद्धव-उपदेश

सवैया

जोग सिखावत आवत है वह कौन कहावत को है कहाँ को।
जानति है वर नागर है पर नेकहु भेद लख्यौ नहि ह्याँ को॥
जानति ना हम और कछू मुख देखि जियै नित नन्दलला को।
जात नही रसखानि हमै तजि राखनहारी है मोरपखा को॥२४८॥

शब्दार्थ—वर=श्रेष्ठ। नन्दलला=कृष्ण।

अर्थ—निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आए हुए उद्धव को देख कर गोपियाँ परस्पर कहती है कि योग की शिक्षा देता हुआ जो व्यक्ति आ रहा है, यह कौन है? उसका क्या नाम है? कहाँ वह रहता है? यद्यपि हम जानती है कि वह कोई श्रेष्ठ आदमी है, तथापि इसका हमको तनिक भी भेद (परिचय) ज्ञात नही है। यह चाहे कितना ही योगोपदेश करे, पर हम तो इसके अतिरिक्त और कुछ नही जानती कि हम नित्य कृष्ण के दर्शन करके ही जीवित रहती है, रसखान कहते हे कि कृष्ण हमसे नही त्यागे जाते, क्योंकि वे मोर मुकुटधारी कृष्ण ही हमारे रक्षक है।

सवैया

अजन मंजन त्यागौ अली अँग धारि भभूत करौ अनुरागै।
आपुन भाग कर्‌यौ सजनी इन बावरे ऊधो जू को कहाँ लागै॥
चाहै सो और सवै करियै जु कहै रसखान सयानप आगै।
जो मन मोहन ऐसी बसी तो सवै री कहौ मुख गोरस जागै॥२४९॥

शब्दार्थ—अंजन मजन=शृंगार। करौ अनुरागै=प्रेम करो। सयानप=

चतुराई। गोरख जागै=गोरखपंथी 'गोरख जागै' का नाद किया करते हैं।

अर्थ—गोपियाँ उद्धव के उपदेश का परिहास करती हुई कहती है कि हे सखि ! अब शृंगार करना छोड दो और भस्म से प्रेम करके उसे ही अपने अगों पर धारण करो। हे सजनि ! जब हमारे भाग्य मे कृष्ण की प्रीति लिखी हुई है तो इस पागल उद्धव को क्यो ईर्ष्या होती है। इस चतुराई के आगे, और चाहे हम कुछ भी कर ले, पर जब हमारे हृदय मे कृष्ण बसा हुआ है तो उसकी प्रीति हमसे नही छूट सकती। इस पर भी यह उद्धव कहता है कि हम सब कृष्ण की प्रीति छोड कर 'गोरख जागे' का नाद करती रहे।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली मे नही है।

सवैया

लाज के लेप चढाइ कै अंग पची सब सीख को मन्त्र सुनाइ कै।
गाडरू ह्वै ब्रज लोग भक्यौ करि औषद बेसक सौहै दिखाइ कै।।
ऊधो सौ रसखानि कहै जिन चित्त धरौ तुम एते उधाइ कै।
कारे बिसारे को चाहैं उतर्यो अरे बिख बावरे राख लगाइ कै।।२५०।।

शब्दार्थ—पची=कोशिश की। गरुड=साँप का विष उतारने वाला। बेसक—उत्तमोत्तम। कारे=कृष्ण को। बिख=विष।

अर्थ—उद्धव से निर्गुण ब्रह्म का उपदेश सुनकर गोपियाँ उससे कहती हैं कि हे उद्धव ! हम सबने लाज का लेप अपने अगो पर लगाने की कोशिश की, सभी प्रकार के मत्र सुनाए, ब्रज के लोग गरुड बन कर भी थक गये, सौगन्ध दिला कर उत्तमोत्तम औषधियाँ खाई, पर इतने उपाय करने पर भी हमारा कृष्ण प्रेम रूपी विष नही उतर सका, अर्थात् हम कृष्ण को नही छोड सकी। हे कारे ! तुम उसी विषैले नाग रूपी कृष्ण का विष योग की भस्म से उतारना चाहते हो ?

कहने का भाव यह है कि जब इतने अधिक उपाय करने पर भी हम कृष्ण प्रेमसे वियुक्त नही हुई तो तुम्हारा योगोपदेश भी यहाँ पर कोई कार्य नही करेगा।

तुलना—१. सावरे साप डसीहै सबै तिन्है ज्ञान सो मूढि उतारै कहा बिस'
ब्रजनिधि
२ 'स्याम वियोग तै उद्धव जू छतियाँ फटी ता मे मयूप भरो जु।'
—सोमनाथ

सवैया

सार की सारी सो पारी लगै धरिबे कहँ सीस बघम्बर पैया।
हाँसी सो दासी सिखाइ लई है वेई जु वेई रसखानि कन्हैया ॥
जोग गयौ कुबजा की कलानि मै री कब ऐहै जसोमति मैया।
हाहा न ऊधौ कुढाओ हमे अब ही कहि दै ब्रज बाजै बधैया ॥२५१॥

शब्दार्थ—सार=लोहा। बाघम्बर=बाघ की खाल। पैया=पाया हुआ।

अर्थ—उद्धव का निर्गुण गुरू का उपदेश सुनकर गोपियाँ उससे कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम हमे सीस पर बाघम्बर धारण करने को कहते हो, पर वह बाघम्बर हमे लोटे की साडी से भी भारी लगता है। जिसमे हसी-हँसी मे कुब्जा को अपने वश मे कर लिया है, वे ही—केवल वे ही हमारे आनन्द सागर कृष्ण है। तुम्हारा योग तो कुब्जा की चतुरता मे दब गया। हे उद्धव ! हमे बहुत दुख है। तुम हमे अधिक दुखी न करो। हम अभी कह देती हैं कि ब्रज मे बधाई के बाजे बाजे।

ब्रज-प्रेम

सवैया

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारौ।
आठहु सिद्ध नवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौ ॥
ए रसखानि जबै इन नैनन ते ब्रज के बन बाग तडाग निहारौ।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुन्जन ऊपर वारौ ॥ २५२ ॥

शब्दार्थ—वा=उस। लकुठी=लाठी। तिहुँ पुर को=तीनो लोको को। सिद्ध=अलौकिक शक्ति, सिद्धियाँ आठ मानी गई है—अणिमा, महिमा, गरिमा लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और कशित्व। अणिमा सिद्धि से योगी अणुरूप धारण करके अदृश्य हो जाता है। महिमा सिद्धि से योगी अपने देह का चाहे जितना विस्तार कर सकता है। गरिमा सिद्धि से योगी अपने शरीर का चाहे जितना भार बढ़ा सकता है। लघिमा सिद्धि से योगी चाहे जितना छोटा और हलका हो सकता है। प्राप्ति सिद्धि से प्रत्येक पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। प्राकाम्य सिद्धि से योगी जो चाहता है, वही हो जाता है। ईशित्व सिद्धि के बल पर दूसरो पर प्रभुत्व किया जा सकता है। वाशित्व के सिद्धि के बल पर चाहे जिसको वश मे किया जा सकता है। निधि=अपूर्व वैभव,

निधियाँ नौ मानी गई हैं—पद्म, महापद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व । कोटिक=करोडो । कलधौत के धाम=सोने चाँदी के महल । ये=सासारिक प्रभुता के प्रतीक ।

अर्थ—द्वारिका मे रह कर कृष्ण को व्रज की याद आ गई है । वे व्यथित होकर रुक्मणी से कह रहे है कि उस लाठी और कामरी के लिए मै तीनो लोक का राज्य एक दम छोड देने को तैयार हूँ, नन्द की गाय चराने के लिए अणिमा आदि आठो सिद्धियो के तथा पद्म आदि नवो निधियो के सुख का त्याग करने को उद्यत हू । जब से मैंने अपनी इन आँखो से व्रज के वन और तालावो को देखा है अर्थात् मुझे उनकी याद आई है, तब से मैं उसके लिए इतना आतुर हो गया हूँ कि मै वैभव के प्रतीक इन करोडो सोने चादी के महलो को व्रज के करील कु जो के ऊपर न्यौछावर करता हूँ ।

विशेष--'व्रज के वन-बाग' और 'करील की कु जन' मे छेकाप्रप्रास है ।

पाठान्तर—ए रसखानि कबौ इन आँखिन सो व्रज के बान बाग तडाग निहारो ।'

कोटि कई कलधौत के धाम करील की कु जन ऊपर वारो ।"

कवित्त

ग्वालन सग जैबौ वन ऐबौ सु गायन सग,
हेरि तान गैबो हा हा नैन कहकत हैं ।
ह्याँ के गज मोती माल वारो गु ज मालन पै,
कु ज सुधि आये हाय प्रान धरकत है ॥
गोवर को गारौ सु तो मोहि लागै प्यारौ कहा,
भयौ मौन सोने के जटित मरकत है ।
मदर ते ऊँचे यह मदिर हैं द्वारिका के,
व्रज के खिरक मेरे हिम खरकत है ॥२५३॥

शब्दार्थ—जैबौ=जाना । ऐबौ=आना । हेरि=देखकर । गैबो=गाना । जटित मरकत=रत्नो से जडे हुए । मदर=मदराचल । खिरक=गोशाला ।

अर्थ—व्रज का स्मरण आने पर कृष्ण रुक्मणी से अपने व्रज प्रेम को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वन मे ग्वालो के सग जाना, वहाँ से गायो के साथ लौटना, व्रज के सुन्दर दृश्यो को देख कर बाँसुरी बजाना आज भी मेरी

आंखो मे करकते है, अर्थात् उन घटनाओ की स्मृति से मुझे बहुत दुख होता है। यहाँ पर मुझे गज मोतियो की जो मालाये मिली हुई है, इन्हे मैं उन गुन्जमालाओ के ऊपर न्यौछावर कर सकता हूँ। जब भी मुझे ब्रज के कु जों की याद आती है तो मेरे अग धड़कने लगते है। वहाँ के गोबर का गारा भी मुझे इतना प्रिय है कि उसके सामने रत्नो से जडे हुए ये सोने के भव्य भवन भी नगण्य है। वह सच है कि द्वारिका के ये राजमहल मदिराचल (पर्वत) से ऊँचे है। फिर भी ब्रज की गोशालाओ की याद मेरे हृदय को कुदेरती रहती है।

विशेष—यह कवित्त श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान' ग्रन्थावली मे नही है।

गंगा-महिमा

सवैया

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि आधिक ओठ पै आधिक नन्द से वाजत री॥
रसखानि पितम्बर एक कँधा पर एक बाघम्बर राजत री।
कोउ देखउ सगम लै बुडकी निकसे यहि मेख सो छाजत री॥२५४॥

शब्दार्थ—किरीट=मुकुट। लसै=सुशोभित है। नागन के गन=सर्पों के समूह। अधिक=आधा। नाद=शृगी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से गगा महिमा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! उसके सिर पर एक ओर तो मुकुट सुशोभित है और दूसरी ओर सर्पों के समूह फुंकार रहे हैं। एक ओर आधे ओठ पर मधुरी मुरली बज रही है और दूसरी ओर आधे ओठ पर शृगी वज रही है। रसखान कहते है कि उनके एक कन्धे पर पीला वस्त्र है और दूसरे पर बाघ की खाल सुशोभित है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण गगा और यमुना मे डुबकी लगाकर इस सुन्दर रूप को धारण करके निकले हो।

विशेष—यह माना जाता है कि गगा मे स्नान करने से शिवरूप की और यमुना मे स्नान करने से कृष्णरूप की, तथा सगम (गगा-यमुना) मे स्नान करने से हरिहर (शिव-कृष्ण) रूप की प्राप्ति होती है।

सवैया

वैद की औषध खाइ कछू न करै बहु संजम री सुनि मोसें।
तो जल-पान कियौ रसखानि सजीवन जानि लियौ रस तोसें।
ए री सुधामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य बनै तोहिं पोसें।
आक धतूरो चबात फिरै विख खात फिरै सिव तेरे भरोसें ॥२५५॥

विशेष—औषध=औषधि। संजम=संयम। भागीरथी=गंगा। पथ्य=परहेज। अपथ्य=बद परहेज। पोसैं=प्रसन्न करने पर।

अर्थ—कवि रसखान गंगा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे गंगे! जिस व्यक्ति पर तुम्हारी कृपा हो जाती है, उसे न तो वैद्य की औषधि खाने की आवश्यकता है और न किसी प्रकार का संयम करने की ही जरूरत है। रसखान कहते हैं कि तेरे जल को पीने से सजीवन शक्ति और अपार आनन्द प्राप्त होता है। हे अमृत जल से युक्त गंगे! तेरे प्रसन्न करने पर बदपरहेज भी परहेज के समान लाभदायक बन जाता है। इसीलिए तेरे भरोसे पर शिव आक और धतूरे को चबाते हैं तथा विष को खाते हैं।

तुलना—'बाँधे जटाजूट बैठि परवत कूट माँहि,
महाकाल कूटे कहौ कैसे के ठहरतौ।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगै ऐसे,
पूछतौ को नंगै जो न गंगै सीस धारतौ।'

—पद्माकर

शिव-महिमा

सवैया

यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सो धूलि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अटकै लटकै फनि सो कफनी फहरावत हैं।
रसखानि जेई चितवैं चित दै तिनके दुखदुन्द भजावत हैं।
गज खाल कपालकी माल बिसाल सो गाल बजावत आवत हैं ॥२५६॥

शब्दार्थ—पात=पत्ते। फनि=सर्प। कफनी=एक प्रकार का वस्त्र जिसे साधु पहनते हैं। भजावत हैं=नष्ट करते हैं।

अर्थ—कवि रसखान शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि यह देखो! शिव धतूरे के पत्ते चबाते हैं तथा शरीर में धूलि लगाते हैं। उनकी जटाएँ

चारो ओर बिखर कर लटक रही है। उनके गले मे पड़ा हुआ सर्प साधु-वस्त्र के समान दिखाई दे रहा है। रसखान कहते है कि जो मन लगाकर शिव की इस मूर्ति को देखते है, शिव उनके दुखो को नष्ट करते है। वे गज की खाल ओढ़े, कपालो की माला पहने हुए गाल बजाते हुए आते है।

प्रेम-वाटिका

दोहा

प्रेम अयनि श्री राधिका, प्रेम-वरन नदनन्द ।
प्रेम-वाटिका के दोऊ, माली मालिन द्वंद ।। १ ।।

शब्दार्थ—प्रेम-अयनि=प्रेम-धाम । प्रेम-वरन=प्रेम का साक्षात् रूप ।। द्वंद=युगल, जोडा ।

अर्थ—रसखान कवि राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए कहते है कि श्रीराधा प्रेम का धाम है और कृष्ण प्रेम का साक्षात् रूप है । अत. राधा और कष्ण का जोडा प्रेम-वाटिका के मालिन और माली का जोड़ा है ।

विशेष—रूपक अलकार ।

दोहा

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोइ ।
जो जन जानै प्रेम तौ, परै जगत क्यौं रोइ ।। २ ।।

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—सब लोग प्रेम-प्रेम चिल्लाते हैं, अर्थात् प्रेमी होने का दावा करते हैं और प्रेम की महत्ता का बखान करते हैं, पर वास्तविकता तो यह है कि वे प्रेम के सच्चे स्वरूप को नही जानते । यदि व्यक्ति प्रेम के सच्चे स्वरूप से परिचत हो जाये ससार रो-रोकर न मरे, अर्थात् इसमे कोई क्लेश एव बाधा न रहे ।

दोहा

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान ।
जो आवत यहि ढिग बहुरि जात नाहि रसखान ।। ३ ।।

शब्दार्थ—अगम=अगम्य । अमित=अपार । सरिस=समान । ढिग=समीप । बहुरि=फिर ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम को अगम्य, अनुपम, अपार और सागर के समान गम्भीर समझना चाहिए। जो व्यक्ति इस प्रेम-सागर के पास आ जाता है, वह फिर इसमे दूर नहीं जाता; अर्थात् जो प्रेमी बन जाता है, वह फिर प्रेम के बन्धन से नही छूट पाता।

विशेष—उपमा अलकार।

दोहा

प्रेम-वारुनी छानि कै, वरुन भरा जल धीस।
प्रेमहिं तें विष-पान करि, पूजे जात गिरीस ॥४॥

शब्दार्थ—वारुन=शराब। वरुन=वरुण। जलधीस=जल का देवता।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम की शराब छानने के कारण वरुण जल के देवता बन गये और प्रेम से ही विष को पी लेने के कारण शिव की पूजा होती है।

दोहा

प्रेम-रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।
या मै अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल ॥५॥

शब्दार्थ—दर्पन=दर्पण, शीशा। अजूबो=अजीब, अद्भुत।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि प्रेम रूपी दर्पण मे अद्भुत खेल रचा हुआ है, क्योकि इसमे अपना स्वरूप कुछ-कुछ अनमेल-सा दिखाई देता है।

दोहा

कमल-तन्तु सो छीद अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम-पथ अनिवार ॥६॥

शब्दार्थ—कमल तंतु=कमल का रेशा। छीन=क्षीण, पतला। खडग=तलवार। वहुरि=फिर। अनिवार=अनिवार्य।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कवि कहते हैं कि प्रेम पंथ अनिवार्य रूप से विलक्षण है। यह कमल के रेशे के समान पतला और तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होता है। यह अत्यन्त सीधा भी है और टेढा भी है।

विशेष—उपमा अलकार।

क्योकि प्रेम को अनुकूल बनाये विना भगवत्प्रेम की ओर उन्मुख हुए विना, दृढ़ निश्चयात्मिका बुद्धि उत्पन्न नही होती ।

दोहा

सास्त्रन पढि पडित भए, कै मौलवी कुरान ।
जु पै प्रेम जान्यौ नही, कहा कियौ रसखान ॥१३॥

शब्दार्थ—सास्त्रन=शास्त्रो को । जु पै=यदि ।

अर्थ—प्रेम के विना सारा ज्ञान व्यर्थ है, इस बात का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि व्यक्ति चाहे शास्त्रो को पढकर पडित बन जाये, या कुरान को पढकर मौलवी बन जाये । लेकिन यदि उसने प्रेम-तत्व को नहीं जाना है तो उसका यह ज्ञान पूर्णतया व्यर्थ है ।

तुलना—'पोथी पढि पढि जग मुआ, पडित भया न कोय ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढै सो पंडित होय ॥—कवीर

दोहा

काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य ।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥१४॥

शब्दार्थ—काम=काम-भावना । मद=अहकार । द्रोह=शत्रुता । मत्पर्य ईर्ष्या । परे=दूर । पुनिवर्य=मुनि प्रवर ।

अर्थ—प्रेम सब प्रकार के भावो से श्रेष्ठ है और अशुद्ध भावो से दूर है, इसका प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि काम-भावना, क्रोध, अहकार, ममता, भय, लोभ, शत्रुता और ईर्ष्या इन सभी भावो से प्रेम दूर होता है, अर्थात् प्रेम मे ये भाव नही होते । यह मुनिप्रवरो का मत है ।

दोहा

विन गुन जोवन रूप धन, विन स्वारथ हित जानि ।
सुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥१५॥

शब्दार्थ—गुन=गुण । जोवन=यौवन । विन स्वारथ हित=स्वार्थ-लाभ से रहित । कामना=इच्छा । कामना ते रहित=निष्काम । रसखान=आनन्द का धाम ।

अर्थ—प्रेम के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि जो प्रेम विना गुण के, यौवन के, रूप के, धन के, स्वार्थ-लाभ से रहित, शुद्ध और निष्काम होता है, वही सच्चा प्रेम है और ऐसा ही प्रेम सुख का धाम होता

है, अर्थात् सहज प्रेम ही सच्चा एव सुखकारक प्रेम होता है।

दोहा

अति सूक्षम कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब ते सदा, नित इकरस भरपूर ।।१६।।

शब्दार्थ—सूछम=सूक्ष्य। पतरो=पतला, क्षीण। अति दूर=अगम्य। इकरस=एक-सा रहने वाला।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि सच्चा प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म, कोमल, क्षीण और अगम्य होता है। यह सदैव एक-सा रहने वाला और परिपूर्ण होता है। ऐसा प्रेम सबसे कठिन होता है।

दोहा

जग मै सब जान्यौ परै, अरु सब कहै कहाइ।
मै जगदीस 'रु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाइ ।।१७।।

शब्दार्थ—जान्यौ परै=जाना जासकता है। कहै कहाइ=कहा जा सकता है। अकथ=अकथ्य।

अर्थ—प्रेम और ईश्वर की समानता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि इस ससार की सारी वस्तुएँ जानी जा सकती है, अर्थात् सारी वस्तुएँ बोधगम्य है और सारी वस्तुएँ कही जा सकती है, अर्थात् वर्णनीय हैं, किन्तु ईश्वर और प्रेम ये दोनो अकथ्य एव प्रदर्शनीय है। अर्थात् इन दोनो का न तो वर्णन ही किया जा सकता है और न ये दोनो देखे ही जा सकते हैं। कहने का भाव यह है कि प्रेम ईश्वर की भाँति सूक्ष्म एव दुर्बोध है।

दोहा

जेहि बिनु जाने कछुहि नहि, जान्यौ जात बिसेष।
सोइ प्रेम, जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेष ।।१८।।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि जिस प्रेम को जाने विना और किसी वस्तु का वोध नही होता और जिसे जानने पर विशेष ज्ञान हो जाता है वही प्रेम है जिसका बोध होने पर और कुछ जानने के लिए शेष नही रह जाता। कहने का भाव यह है कि प्रेम सब ज्ञानो का मूल आधार है।

दोहा

दम्पति-सुख अरु विपम-रस, पूजा निप्ठा ध्यान ।
इन ते परे बखानियै, सुद्ध प्रेम रसखान ।।१९।।

शब्दार्थ—दम्पति-सुख=गृहस्थ जीवन का आनन्द । विपय-रस=सासारिक पदार्थो से प्राप्त आनन्द । निप्ठा=धार्मिक विश्वास । ध्यान=ध्यान धारणा आदि । परे=दूर, रहित ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि गृहस्थ जीवन के आनन्द से, सासारिक पदार्थो से प्राप्त आनन्द से, पूजा से धार्मिक विश्वास से, ध्यान धारणा आदि से रहित शुद्ध प्रेम होता है जो आनन्द का सागर है ।

दोहा

मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमे सहज सनेह ।
सुद्ध प्रेम इनमे नही, अकथ कथा सविसेह ।।२०।।

शब्दार्थ—कलत्र=स्त्री। सुबन्धु=हितैपी भाई । सुत=पुत्र । सहज=स्वाभाविक । सविसेह=विशेप रूप से ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि यद्यपि स्त्री मे हितैपी भाई मे और पुत्र मे स्वाभाविक रूप से प्रेम होता है, परन्तु इस प्रेम को शुद्ध प्रेम नही कहा जा सकता, क्योकि शुद्ध प्रेम तो विशेप रूप से अवर्णनीय कथावाला होता है; अर्थात् उसका वर्णन नही हो सकता ।

दोहा

इक अगी बिनु कारनहि, इक रस सदा समान ।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ।।२१।।

शब्दार्थ—इक अंगी=एकांगी । इक रस=एक ही प्रकार का आनन्द । सोई प्रेम प्रमान=वही शुद्ध प्रेम है ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि जो प्रेम एकांगी हो, अर्थात् प्रत्युत्तर की भावना से परे हो, बिना स्वार्थ आदि कारणो के उत्पन्न हुआ हो और सदैव एक ही प्रकार के आनन्द मे समान रहता हो, अर्थात् जिसमे आनन्द की मात्रा घटती न हो; जिसके होने पर प्रिय को ही सर्वस्व माना जाता हो, वही शुद्ध प्रेम कहलाता है ।

दोहा

डरै सदा चाहे न कछु, सहै सबै जो होय ।
रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानो सोय ॥२२॥

शब्दार्थ—चाहि कै=इच्छा करके ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि जो प्रेमी सदैव इस भावना को लेकर डरता रहे कि कही उसके प्रेम मे चूक न हो जाये, जो किसी भी प्रकार की स्वार्थ-भावना से रहित हो, जो सब प्रकार की विपत्तियो को सहने के लिए तैयार हो, जो सदैव इच्छा करके एक ही रस मे डूबा हुआ हो, ऐसे ही व्यक्ति को सच्चा प्रेमी कहा जाता है और उसी का प्रेम शुद्ध प्रेम कहलाता है ।

दोहा

प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस ।
प्रान तरफि निकरै नही, केवल चलत उसाँस ॥२३॥

शब्दार्थ—फाँस=चुभने वाला काँटा । तरफि=तडप कर ।

अर्थ—प्रेम वेदना का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि सभी लोग प्रेम-प्रेम चिल्लाते है; अर्थात् प्रेमी होने का दावा करते है, पर वे यह नहीं जानते कि प्रेम की फाँस बडी दुखदाई होती है । इसमे प्राण तडपते ही रहते है, पर निकलते नही इसके आघात से मनुष्य मृतप्राय हो जाता है और उसके केवल उच्छ्वास चलते रहते है ।

दोहा

प्रेम हरी को रूप है, त्यौ हरि प्रेम स्वरूप ।
एक होइ द्वै यो लसै, ज्यौ सूरज अरु धूप ॥२४॥

शब्दार्थ—द्वै=दो होकर । लसै=सुशोभित होते है ।

अर्थ—प्रेम और परमात्मा के एक स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि जिस प्रकार प्रेम परमात्मा का रूप है, उसी प्रकार परमात्मा भी प्रेम का स्वरूप है । एक होकर भी दोनो दो रूपो मे इस प्रकार सुशोभित है जैसे सूरज और उसकी धूप ।

विशेष—उदाहरण अलकार ।

दोहा

ग्यान ध्यान विद्या मती, मत-बिस्वास बिवेक ।
बिना प्रेम सब धूरि हैं, अगजग एक अनेक ॥२५॥

शब्दार्थ—मती=मति, बुद्धि। विवेक=ज्ञान। अगजग एक अनेक=इस चराचर सृष्टि मे प्रेम एक होकर भी अनेक है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि ज्ञान, ध्यान, विद्या, विविध मतो का विश्वास और विवेक सब विना प्रेम के धूलि के समान निरर्थक है, क्योकि प्रेम ही वह तत्त्व है जो ब्रह्म की भाँति इस संसार मे एक होते हुए ही अनेक रूपो मे दिखाई देता है।

विशेष—रूपक अलकार।

दोहा

प्रेम फाँस मैं फंसि मरै, सोई जिए सदाहि।
प्रेम परम जाने विना, मरि कोइ जीवत नाहि ॥२६॥

शब्दार्थ—फाँश=फन्दा। परम=रहस्य।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रेम के वन्धन मे वॅध कर मर जाता है, कह सदैव जीवित रहता है; अर्थात् प्रेम के वन्धन मे वॅधकर व्यक्ति अमर हो जाता है। कोई भी व्यक्ति जो प्रेम के रहस्य को नही जानता, वह मर कर जीवित नही रहता।

विशेष—विरोधाभास अलकार।

दोहा

जग मैं सब तैं अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहूँ तैं अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२७॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि हम ससार मे सबसे अधिकम मत्व शरीर के प्रनि देखा जाता है, परन्तु प्रेम इस शरीर से भी अधिक प्यारा होता है।

दोहा

जेहि पाएँ वैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥२८॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस प्रेम को प्राप्त करके वैकुंठ की और भगवान की भी इच्छा नही रहती, उसे ही अलौकिक, शुद्ध, शुभ और सरस प्रेम कहा जाता है।

दोहा

कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा भाला तीर कोउ, कहत अनोखी ढार ॥२९॥

शब्दार्थ—नेजा=बरछी।

अर्थ—प्रेम के विविध रूप हैं, इसी बात का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि कोई व्यक्ति तो इस प्रेम को फाँसी बताता है, कोई तलवार, कोई बरछी, भाला और तीर; तथा कोई इसे अनोखी ढाल बताता है।

दोहा

पै मिठास या मार के, रोम-रोम भरपूर।
मरत जियै झुकतौ थिरै, बनै सु चकनाचूर ॥३०॥

शब्दार्थ—झुकतौ=गिरना। थिरै=स्थिर होना, सभलना।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि प्रेम की चोट गहरी होते हुए भी मधुर होती है। इसकी चोट से मनुष्य का रोम-रोम माधुर्यपूर्ण आनन्द से भरपूर हो जाता है, प्रेम मे मरने वाला व्यक्ति ही जीवित रहता है प्रेम मे गिरता हुआ व्यक्ति ही सम्भलता है। जो व्यक्ति अपना अहंकार पूर्णतया नष्ट करके प्रेम की ओर उन्मुख होता है, उसी का जीवन सुधर जाता है।

विशेष—विरोधाभास अलंकार।

दोहा

पै एतोहूँ रम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ॥३१॥

शब्दार्थ—अजूबो=अजीव, अद्भुत। जाँबाजी=प्राणो की बाजा।

अर्थ—प्रेम की विलक्षणता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि हमने केवल इतना सुना है कि प्रेम अद्भुत खेल है यह वही खेल है जिसमे प्राणों की बाजी लगाकर दिल से मेल किया जाता है।

दोहा

सिर काटौ छेदौ हियो, टूक टूक करि देहु।
पै याके बदले जिहँसि, वाह वाह ही लेहु ॥३२॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की कठिनता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि जव व्यक्ति अपने सिर को काट लेता है और हृदय को छेद कर टूक-टूक कर लेता है, तव उसके वदले मे उसे प्रशसा मिलती है, अर्थात् वही व्यक्ति प्रेमी होकर प्रशसा का पात्र वनता है।

दोहा

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूव।
दो तनहूँ जहँ एक ये, मन मिलाइ महवूव ॥३३॥

शब्दार्थ—अकथ=अकथ्य। लैली=लैला, मजनूं की प्रेमिका। महवूव=प्रेमी।

अर्थ—प्रेम की कहानी अकथनीय है जिसे मजनू की प्रेमिका लैला अच्छी तरह जानती है। प्रेम वह वरदान है जो दो प्रेमियो के तन को तथा मन को मिलाकर एक कर देता है।

दोहा

दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि
होइ जवै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि ॥३४॥

शब्दार्थ—आहि=है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि यद्यपि मैंने प्रेम मे दो मनो को एक होते हुए सुना है, लेकिन यह वास्तविक प्रेम नही है। जब दो शरीर एक हो जाते हैं, तो उसे ही प्रेम कहते हैं।

'प्रेमानन्द प्रकारेण द्वैत विस्मरणं गतम्।'

तुलना—१. 'आसिक-मासुक ह्वै गया, इस्क कहावै सोय।
दादू उस मासूक का, अल्ला आसिक होय ॥'—दादूदयाल

दोहा

याही तें सव मुक्ति ते, लही वडाई प्रेम।
प्रेम भए नसि जाहि सव, वँधे जगत के नेम ॥३५॥

शब्दार्थ—याही ते=इसी कारण से। लही=प्राप्त की। नसि जाहिं=नष्ट हो जाते हैं। नेम=नियम।

अर्थ—प्रेम मे दो शरीरो को एक करने की शक्ति होती है, इसी कारण से प्रेम ने मुक्ति से भी अधिक प्रशसा प्राप्त की है, अर्थात् प्रेम का स्थान मुक्ति

से भी ऊँचा है। प्रेम के होने पर संसार के सारे बँधे हुए नियम नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् प्रेमी संसार के किसी भी नियम को नही मानता।

दोहा

हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम-अधीन।
याही ते हरि आपुही, याहि बडप्पन दीन ॥३६॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम भगवान से भी बडा है, इसी बात का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि ससार के सब प्राणी भगवान के वश मे हैं, पर भगवान प्रेम के वश मे होते है। इसीलिए स्वय भगवान् से अपने-से अधिक प्रेम को महत्ता प्रदान की है।

तुलना—१. 'हरि ब्रज जन आधीन है, ब्रजजन हरि आधीन।'—नागरीदास
२. 'स्वामी ते सेवक बडो, जो निज धर्म सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गए हनुमान ॥'—तुलसी

दोहा

वेद मूल सब धर्म यह, कहैं सबै स्त्रुतिसार।
परम धर्म है ताहु ते, प्रेम एक अनिवार ॥३७॥

शब्दार्थ—स्त्रुतिसार=वेदो का तत्व। अनिवार=अनिवार्य।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि वेद सब धर्मो का मूल है, परन्तु प्रेम को श्रुतियो का तत्व कहा जाता हैं। इसलिए प्रेम परम धर्म और अनिवार्य तत्त्व है।

जदपि जसोदानन्दन अरु ग्वाल-बाल सब धन्य।
पै या जग मैं प्रेम कौ गोपी भई अनन्य ॥३८॥

शब्दार्थ—जसोदानन्दन=कृष्ण। अनन्य=अद्वितीय।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि यद्यपि कृष्ण का प्रेम पाने से कृष्ण, ग्वाल-बाल आदि सब धन्य है, किन्तु इस ससार मे अत्यधिक प्रेमिका होने के कारण गोपियाँ अद्वितीय बन गई है; अर्थात् उनके समान कोई नही है।

तुलना—'कबिरा कबिरा क्या कहै, जा जमुना के तीर।
इक इक गोपी प्रेम पै, बहिगे कोटि कबीर ॥'—कबीर

दोहा

वा रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि ।
पावै बहुरि मिठास अरु, अब दूजो को आहि ।।३६।।

शब्दार्थ—वा रस की=प्रेमानन्द की । बहुरि=फिर ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि प्रेमानन्द का कुछ माधुर्य उद्धव ने सराह कर ग्रहण किया था। जो माधुर्य उद्धव को प्राप्त हो गया है, अब उस माधुर्य को फिर से कौन प्राप्त कर सकता है ?

दोहा

स्रवन कीरतन दरसनहिं, जो उपजत सोइ प्रेम ।
सुद्धासुद्ध विभेद तें, द्वैविध ताके नेम ।।४०।।

शब्दार्थ—स्रवन=श्रवण, सुनना । सुद्धासुद्ध=शुद्ध और अशुद्ध । द्वैविध =दो प्रकार के । नेम=नियम ।

अर्थ—प्रेम के भेदो का निरूपण करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम श्रवण, कीर्तन और दर्शन से उत्पन्न होता है, वही शुद्ध और अशुद्ध, निष्काम और सकाम, ये दो प्रकार के प्रेम होते हैं ।

दोहा

स्वारथमूल असुद्ध त्यों, सुद्ध स्वभावऽनुकूल ।
नारदादि प्रस्तार करि, कियौ जाहि को तूल ।।४१।।

शब्दार्थ—स्वारथमूल=स्वार्थ-भावना से युक्त । स्वभावऽनुकूल=सहज भाव से । प्रस्तार करि=विस्तार से । तूल=विस्तार ।

अर्थ—प्रेम के दो भेद होते हैं—शुद्ध और अशुद्ध । शुद्ध और अशुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम स्वार्थ-भावना से युक्त होता है, उसे अशुद्ध प्रेम कहते है और जो सहज भाव से होता है, उसे शुद्ध प्रेम कहते हैं । नारद आदि महर्षियो ने इन दोनों प्रकार के प्रेमो का वर्णन विस्तार से किया है ।

दोहा

रसमय स्वाभाविक विना, स्वारथ अचल महान ।
सदा एकरस सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान ।।४२।।

शब्दार्थ—रसमय=आनन्द से पूर्ण । स्वाभाविक=सहज । एकरस= निरन्तर समान रहने वाला ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि जो प्रेम आनन्द से पूर्ण, सहज, निष्काम, अचल, महान् और निरन्तर समान रहने वाला होता है, जो कभी घटता नही है, वह शुद्ध प्रेम कहलाता है।

दोहा

जाते उपजत प्रेम सोइ, बीज कहावत प्रेम।
जामैं उपजत प्रेम सोइ, क्षेत्र कहावत प्रेम ॥४३॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि जिस कारण से प्रेम उत्पन्न होता है, उसे प्रेम का बीज कहते है और जो प्रेम का आश्रय होता है, उसे प्रेम का क्षेत्र कहते है।

दोहा

जाते पनपत बढ़त अरु, फूलत फलत महान।
सो सब प्रेमहि प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ॥४४॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि जिससे प्रेम उत्पन्न होता है, बढता है, फूलता तथा बढता है और महान् बनता है, यह सब प्रेम ही होता है।

दोहा

वही बीज अकुर वही, सेक वही आधार।
डाल पात फल फूल सब, वही प्रेम सुखसार ॥४५॥

शब्दार्थ—सेक=सिंचन।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते है कि प्रेम ही बीज है, वही अकुर है, वही सिंचन है, वही आधार है, वही डाल, पात, फल, फूल और सुख का सार है।

दोहा

जो जाते जामैं बहुरि, जा हित कहियत बेष।
सो सब प्रेमहि प्रेम है, जग रसखानि असेष ॥४६॥

शब्दार्थ—बहुरि=फिर। वेष=श्रेष्ठ। असेष=पूर्णरूप से।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते है कि जो, जिससे और फिर जिसमे जगत् का सौन्दर्य, श्रेयता, महत्ता, उत्कृष्टता आदि गुण विद्यमान है, वे सब इस चराचर सृष्टि मे प्रेम- रूप से भासित है।

दोहा

कारज कारन रूप यह, प्रेम अहै रसखान ।
कर्ता कर्म क्रिया करन, आपहि प्रेम बखान ॥४७॥

शब्दार्थ—कारज—कार्य । करन—साधन, कारण ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता एवं व्यापकता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम ही जगत् का कारण है; अर्थात् जगत् की उत्पत्ति प्रेम से ही हुई है और जगत् की रचना रूप कार्य भी प्रेममय है । प्रेम ही कर्ता, कर्म, क्रिया और भगवान् का रूप है ।

दोहा

देखि गदर हित-साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छोरि रसखान ॥४८॥

शब्दार्थ—हित-साहिबी—प्रभुत्व के लिए । ठसक—गर्व ।

अर्थ—अपने जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हुए रसखान कहते हैं कि दिल्ली में प्रभुत्व के लिए विप्लव होकर सारी दिल्ली को श्मशान हुआ देखकर, पठान बादशाहों के वंश का झूठा गर्व त्यागकर और वैराग्य लेके दिल्ली छोड़ दी ।

दोहा

प्रेम-निकेतन श्रीबनहिं, आइ गोबर्धन-धाम ।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम ॥४९॥

शब्दार्थ—प्रेम-निकेतन—प्रेम धाम । श्रीबनहिं—वृन्दावन में । गोबर्धन धाम—कृष्ण का एक प्रसिद्ध स्थान । चित चाहि कै—मन लगा करके । जुगल-सरूप—राधा और कृष्ण का रूप । ललाम—सुन्दर ।

अर्थ—अपने वृन्दावन-निवास की घटना की ओर संकेत करते हुए रसखान कहते हैं कि दिल्ली छोड़कर मैं प्रेम-धाम वृन्दावन में आकर गोवर्धन नामक स्थान पर बस गया और राधा-कृष्ण के सुन्दर रूप की श्रद्धापूर्वक शरण ग्रहण की; अर्थात् राधा कृष्ण की भक्ति में तल्लीन हो गया ।

दोहा

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान ।
प्रेमदेव की छबिहि लखि, भए मियाँ रसखान ॥५०॥

शब्दार्थ—प्रेमदेव=कृष्ण। छबिहि=शोभा को।

अर्थ—कृष्ण-भक्ति की ओर अपना प्रेम प्रदर्शित करते हुए रसखान कहते है कि मान करने वाली नारी का हृदय तोडकर, अर्थात् उसके प्रेम के बंधनो को छोडकर और मन को मोहित करने वाली स्त्रियो के गर्व को चूर्ण करके तथा कष्ण की शोभा को देखकर मुसलमान-धर्मावलम्बी रसखान कृष्ण-भक्ति मे तन्मय हो गये।

दोहा

बिधु सागर रस इन्दु सुभ, बरस सरस रसखान।
प्रेम वाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान ॥५१॥

शब्दार्थ—बिधु सागर रस इन्दु=सवत् १६७१। रुचिर=सुन्दर।

अर्थ—रसखान कहते है कि मैंने उल्लसित होकर इस सरस और सुन्दर प्रेम वाटिका की रचना शुभ वर्ष मे सवत् १६७१ वि० मे की।

दोहा

अरपी श्री हरि चरन जुग पुहुप पराग निहार।
बिचरहिं या मैं रसिकबर, मधुकर निकर अपार ॥५२॥

शब्दार्थ—अरपी=अर्पित की। पुहुप पराग=कमल-केसर। मधुकर-निकर=भौरो का समूह।

अर्थ—रसखान कहते है कि मैंने यह प्रेम-वाटिका श्रीकृष्ण के दोनो चरणो के कमल-केसर को देखकर उनको अर्पित की। आशा है कि अपार भौरो के समूह रूपी रसिकवर इसमे विचरण करेंगे; अर्थात् इससे आनन्द प्राप्त करेंगे।

दोहा
(शेष पूरण)

राधा-माधव सखिन संग, बिरहत कुंज-कुटीर।
रसिकराज रसखानि तहँ, कूजत कोइल कीर ॥५३॥

शब्दार्थ—माधव=कृष्ण। कोइल=कोयल। कीर=तोता।

अर्थ—रसखान् कहते है कि राधा और कृष्ण अन्य सखियो के साथ कुंज-कुटीरो मे विचरण करे और वहाँ पर रसिकराज रसखान कोयल तथा तोते के रूप मे कूजता रहे।

दानलीला

सवैया

आवत हौ रस के चसके तुम जानत हौ रस होत कहा हो ।
नैसक वै रस भीजन दैहौ दिना दस के अलवेले लला हो ।
अत वही दिन आवेगे झूमि गुवालिन ही के जु संग सखा हो ।
ल्यौगे कहा इन वातन तै घर जाव लला अब ही लरका हो ।।१०।।

शब्दार्थ—चसके=लोभ से । नैसक=थोड़ा-सा । लरका=अबोध ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे कृष्ण ! तुम मेरे पास रस के लोभ से आये हो, लेकिन तुम यह नही जानते कि रस क्या होता है ? अभी तो तुम दस दिन के अलवेले लडके हो; अर्थात् अल्पायु के हो, अत. स्वय को थोडा-सा रस मे तो भीगने दो; अर्थात् वह अवस्था तो आने दो, जब रसास्वादन का बोध हो जाता है । अंत मे वे ही दिन आ जायेंगे जब तुम ग्वालिनो के साथ झूमकर रस का आनन्द लोगे । अतः तुम अभी से इन बातों से क्या लोगे । तुम अभी अबोध हो, इसलिए अपने घर चले जाओ ।

सवैया

आई हौ आज नई ब्रज मे कछु नैन नचाइ कै रार मचैहौ ।
जानति हौ हमही छलि कै दधि बेचन जाव सो जान न पैहौ ।
लैहौ चुकाइ सबै तुम सो रसखानि भले मन मैं पछतैहौ ।
जो तुम होहु बड़े घर की अइलात कहा हौ जगात न दैहौ ।।२।।

शब्दार्थ—रार=झगड़ा । अइलात==गर्व करना । जगात=कर, टैक्स ।

अर्थ—गोपी की बाते सुनकर कृष्ण कहते हैं कि तुम अभी ब्रज मे नई-नई आई हो, इसीलिए आँखें नचाकर झगड़ा कर रही हो, अर्थात् तुम्हारा यह झगडा केवल दिखावे के लिए है, वास्तविक नही है । तुम चाहती हो कि हमे धोखा देकर तुम दही वेचने के लिए निकल जाओ, पर हम तुम्हे इस प्रकार नही जानें देगे । रसखान कहते हैं कि चाहे तुम अपने मन मे जितना पछतावा करो, पर हम तुमसे सब कर वसूल कर लेंगे । यदि तुम किसी बड़े घर की हो तो इसमे गर्व करने की भी कोई वात नही है, क्योकि तुम्हारा कर न देने का आग्रह व्यर्थ है; अर्थात् चाहे तुम जितने बड़े घर की हो, हम बिना कर लिए तुम्हे नही छोड़ें ।

सवैया

सुनिकै यह वात हिये गुनि कै तव वोलि उठि वृपभान-लली ।
कहौ कान्ह अजान भए वन मे कहूँ माँगत दान कि छेकि गली ।।
मग आइ कै जाइ रिसाइ कहा तुम एकऊ वात कही न भली ।
हम है वृपभानपुरा की लली अव गोरस वेचन जात चली ।।३।।

शव्दार्थ—गुनि कै=सोचकर । वृपभान-लली=राधा । गौरस=दही ।

अर्थ—कृष्ण की वाते सुनकर और उन्हे अपने हृदय मे सोचकर राधा कहती है कि हे कृष्ण ! आज तुम अजान वन गये हो, जो वन मे हमारा मार्ग रोकते हो । तुम हमारा मार्ग ही रोकना चाहते हो, अथवा कुछ माँगना चाहते हो । मार्ग मे आकर और अपनी इच्छा पूरी न हो सकने के कारण तुम क्रोधित होकर क्यो जाते हो ? तुमने तो एक भी वात ठीक नही कही । हम राजा वृपभानु की पुत्री है और अव दही वेचने के लिए जा रही है । तुम्हारे रोके से हम नही रुक सकती ।

सवैया

एरी कहा वृषभानुपुरा की तौ दान दिये विन जान न पैहौ ।
जौ दधि-माखन देव जू चाखन झूमत लाखन या मग ऐहौ ।
नाहिं तौ जो रस सो रस लैहो जु गोरस वेचन फेरि न जैहौ ।
नाहक नारि तू रारि बढावति गारि दिये फिरि आपहि दैहौ ।।४।।

शब्दार्थ—लाखन=लाखो वार । नाटक=व्यर्थ मे । आपहि दैहौ=आप भी खाओगी ।

अर्थ—राधा की चुनौती सुनकर कृष्ण कहते है कि तुम मुझे वृषभानु की पुत्री होने का क्या भय दिखाती हो ? मै विना कर दिये तुम्हे यहाँ से जाने न दूँगा । यदि तुम मुझे खाने के लिए दही और मक्खन दे दोगी, तो इस मार्ग से लाखो वार निशक होकर निकल जाओ, कोई तुम्हे कुछ न कहेगा । यदि तुम अपनी मरजी से मुझे गोरस नही दोगी तो जो तुम्हारे पास गोरस है, वह तो मै छीन ही लूँगा, और फिर तुम्हे इस मार्ग से कभी भी जाने नही दूँगा । हे नारी ! तुम व्यर्थ मे ही झगड़ा वढाती हो । यदि तुम मुझको गाली दोगी तो उनके वदले मे स्वयं भी गाली खाओगी ।

कवित्त

गारी के देवैया वनवारी तुम कहौ कौन,
हम तौं वृषभान की कुमारी सव जानो है।
जोर तौ करौगे जाइ जासो हरि पार पाइ,
भुरही ते आज मो सो कैसो हठ ठानो है।
वूझि देखौ मन माहि अरुझत मग जात,
वूझिहौ निदान कान्ह जौन कहो मानो है।
मेरे जान कोऊ मीरखान आवै दही छीनै,
तू तौ है अहीर मोहि नाहि पहिचानो है ॥५॥

शब्दार्थ—गारी=गाली । जोर=वल-प्रयोग । पार पाइ=पार पाना, कार्य की सिद्धि होना। भुरही ते=प्रात.काल से ही। अरुझत=झगड़ना। मीरखान=राज्य ; उच्च अधिकारी।

अर्थ—कृष्ण की वाते सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण ! तुम गाली देने वाले कौन होते हो, अर्थात् तुम्हे गाली देने का क्या अधिकार है। सब लोग इस वात को जानते हैं कि हम राजा वृषभानु की पुत्री हैं और इसलिए हमे गाली देना आसान नही है। हे कृष्ण ! यदि वल-प्रयोग करना ही है तो उससे करो जिससे तुम्हारी कार्य-सिद्धि हो जाये। आज न जाने तुमने क्यो प्रात काल से ही मेरे साथ झगडा शुरू कर दिया है। तुम अपने मन में सोचकर देख लो कि रास्ते मे किसी से भी झगडा करना उचित नही है। यदि तुम्हे मेरा विश्वास न हो तो जिसका तुम्हे विश्वास हैं, उसी से वात को पूछकर देख लो। मै तो यह जानती हूँ कि राज्य का कोई उच्च अधिकारी ही दही छीनने के लिए आ सकता है। पर तुम तो केवल अहीर हो; अर्थात् साधारण-सी जाति के पुत्र हो और तुम मुझे को नही पहिचान रहे हो।

विशेष—व्यग्यात्मकता के द्वारा प्रभावोत्कर्ष।

कवित्त

तोहूँ पहचानौ वृषभान हूँ को जानौ नेकु,
काहू की न शका मानौं हौ अहीर ऐसो हौ।
मीरन को मारि मान तोरिहो गुमान लैहो,
आज तोसो दान लैहो देखियै जु जैसो हो।

फोरिहो मटूकी माट लै दही करौगो लूट,
जैहो कोने सु तौ घाट बाट रोके बैसौ हौ।
कहा कहौ राधे तोहि अजहूँ न चीन्है मोहिं,
मेरी ओर देखि नेकु दानी कान्ह कैसो हौ ।। ६ ।।

शब्दार्थ—नेकु=तनिक भी। संका=डर। मीरन को=सरदारो को। गुमान=गर्व। मटूकी=मटकी, छोटा घडा। माट=घडा। बैसो हौं=बैठ गया हूँ। चीन्है=पहिचानना। दानी=कर (टैक्स) लेने वाला।

अर्थ—राधा की वाते मुनकर कृष्ण कहते हैं कि हे राधा! मै तुझे भी जानता हूँ और तेरे पिता वृपभानु को भी जानता हूँ, लेकिन मै ऐसा अहीर हूँ कि किसी का भी डर नही मानता। राज्य के सरदारो को मार कर जिनका तुम घमण्ड करती हो, तुम्हारा गर्व चूर्ण कर दूँगा। आज मैं तुमसे दान लेकर ही रहूँगा और फिर तुम्हे मेरी शक्ति का पता चलेगा। मैं तुम्हारे छोटे और वडे घडो को फोड़कर तुम्हारी दही को लूट लूँगा और फिर तुम चाहे जिससे शिकायत करो, मै इसी रास्ते पर वैठा हुआ हूँ, डर कर कही भागूँगा नही। हे राधा! मै तुमसे क्या कहूँ? तुम आज भी मुझे नही पहिचान रही हो। मेरी ओर तो देखो, तुम्हे पता चलेगा कि तुमसे कर लेने वाला कृष्ण कैसा है।

कवित्त

जोहौ मैं तिहारी ओर नन्दगाव के किसोर,
माखन के चोर तुम गोकुल के बासी हौ।
जसुदा तिहारी माइ ऊखल सो बाँधो जाइ,
दानी पै कहाए आइ भए कामरासी हौ।
कस सो कहौगी जाइ माँगिहौ तुमै घराइ,
रहौगे कहाँ छिपाइ जो वडे मवासी हौ।
गोरस को दान हम आजहु न सुने काम,
काहे लाल हम सो करत रोज रासी हौ ।। ७ ।।

शब्दार्थ—जोहे=देखती हूँ। कामरासी=काम भावना से युक्त। तुमै घराइ=तुमको वन्दी वनाने के लिए। मवासी=सुरक्षित दुर्ग।

अर्थ—कृष्ण की वाते मुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण! मै तुम्हारी ओर देखती हुँ और तुम्हे पहिचानती भी हूँ। तुम नन्द गाँव के युवक हो, मक्खन के चोर हो और गोकुल के निवासी हो। यशोदा, जिसने तुम्हे ऊखल

से बाँध दिया था, तुम्हारी मां है। आज तुम यहाँ आकर कर लेने वाले बन गये हो और काम भावना से युक्त हो गये हो। मैं कंस से तुम्हे वन्दी बनाने के लिए विनती करूँगी और फिर तुम सुरक्षित दुर्गों मे भी नही छिप सकोगे, क्योंकि कंस तुम्हे वन्दी बनाकर ही रहेगा। हमने कभी यह नही सुना कि दही पर भी कर लगता है, अतः हमारे साथ प्रतिदिन परिहास करना ठीक नही है।

कवित्त

दान पै न कान सुने लैहो सो गुमान भजि,
हासी पर हासी परहासी आज करौंगो।
जेती तुम ग्वालिन तितेक सब रोकि राखौं,
जमुना की ओटि पै जु सबै काम सरौंगो।
जाको तूँ कहति कंस ताहि को करौ विधस,
हौं तौ जदुवंस वीर काहू सो न डरौंगो।
भूषन उतारि चीर फारि चीर डारि दैहौं,
नन्द की दुहाई खात टेक सों न टरौंगो ॥८॥

शब्दार्थ—भजि=चूर्ण करना। सरौंगो=पूर्ण करूँगा। विधस=विध्वंस। टेक सो=प्रण से।

अर्थ—राधा की बाते सुनकर कृष्ण कहते है कि यदि तुम दान देने की बात को नही सुनोगी तो मैं तुम्हारा गर्व चूर्ण कर दूँगा और तुम्हारी विविध प्रकार से हाँसी करूँगा। जितनी तुम ग्वालिन हो, उन सबको मै रोक लूँगा और यमुना की ओट मे अपने सब कार्यो को पूर्ण करूँगा। जिस कंश की तुम मुझे धमकी दिखलाती हो, उसका नाश कर दूँगा। मैं यदुवंश का वीर हूँ, इसीलिए किसी से भी नहीं डरूँगा। तुम्हारे भूषणो को उतार कर तुम्हारे चीर के टुकडे टुकडे कर डालूँगा। मै नन्द बाबा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि अपने प्रण से तनिक भी नही हटूँगा, अर्थात् प्रण पूरा करके रहूँगा।

कवित्त

नन्द की न दासी हम जातिहू मै नाही कम,
एक गाँव बसौ स्याम भोर भए वादी हो।
जमुना के तीर तुम चीर हू चुराइ रहौ,
ताहू की न लाज आई ओर है फसादी हो।

रोकत हौ टोकत हौ वाट माहि साट खाह,
माट फोरि चाटौ दही यही गुन आदी हो।
जौ कहू बैठारिहौ न पारिहौ रुआब माहि,
नोन की न गोन ली है आदी हू न लादी हो ॥९॥

शब्दार्थ—भोर भए=भोले होकर। वादी=झगडालू। ओर के=भारी। फसादी=झगडा करने वाले। साट खाह=दूसरो का धन लूटना। आदी=स्वभाव वाले। रुआब=रौव। नोन=नमक। गोन=माल लादने की बोरी। आदी=आद्रक, अदरक।

अर्थ—कृष्ण की बाते सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण, न तो हम नन्द की दासी है, जिस प्रकार तुम हो और न तुमसे जाति मे ही कम है। हम सब एक ही गॉव के रहने वाले है, लेकिन तुम भोले वनकर भी झगडालू हो, अर्थात् केवल देखने मे ही भोले दिखाई देते हो, अन्यथा तुम तो स्वभाव से झगडालू हो। तुमने यमुना के किनारे पर जाकर स्नान करती हुई गोपियो के वस्त्र चुरा लिये थे। इस अधम कार्य को करके भी तुम्हे लज्जा नहीं आई। तुम तो भारी झगडा करने वाले हो। दूसरो का धन लूटने के लिए तुम उनका रास्ता रोकते हो, उन्हे टोकते हो। तुम्हारा अव यह स्वभाव वन गया है कि तुम घडा फोडकर दही खाने वाले वन गये हो। जो तुम्हे कही बैठाया जाये तो तुम रौब भी नही दिखा सकते, अर्थात् तुम्हारा व्यक्तित्व भी प्रभावशाली नही है। फिर यह भी समझ लो कि हम गोन मे नमक और अदरक भरकर लादने के आदी नही है, अर्थात् हम कोई साधारण व्यापारी नहीं हैं, यदि तुम हमें छेडोगे तो तुम्हे इसका वहुत मूल्य देना पडेगा।

कवित्त

मेरो को करै नियाव हौ तो तीनि लोक राव,
हमै घेरौ मॉटी चाव दाव भलो पायौ है।
वृंदावन कुंज मॉह कदम की छॉह चलौ,
अंक भरि भेटि लैहो जैसो मन भायौ है।
हीरा मनि मानिक की कॉच और पोतिन की।
मोतिन की गात की जगात हौ लगायौ है।
गोरस तौ ढेर ढेर खाहु पीयौ वेर वेर,
देखहु सलोनो रूप दानी कान्ह आयौ है॥१०॥

शब्दार्थ—नियाव=न्याय। राव=राजा। अक भरि=बाहुपाश मे बाँध कर। मोतिन की=माला के मनकों की। जगात=कर।

अर्थ—राधा की बातें सुनकर कृष्ण कहते है कि मेरा न्याय कौन कर सकता है, क्योकि मैं तीनो लोको का राजा हूँ अर्थात् मैं तो स्वय ही सबसे बड़ा हूँ। तुम इसी कारण उल्लसित होकर यही दाव देखकर फेर लेती हो। तुम वृन्दावन के कुजो मे उत्पन्न कदम्ब के रथो की छाया मे चलो और जैसा मैं चाहता हूँ, वहाँ तुम्हे बाहुपाश मे लूँगा। मैंने हीरा, मणि, मानिक, बाँध, पनके और मोती जैसे तुम्हारे शरीर पर कर लगाना है। गोरस तो मैंने अनेक बार अत्यधिक मात्रा मे खाया-पिया है, अब तुम यह समझ लो कि मै तुम्हारे सुन्दर शरीर से कर वसूल करने आया हूँ।

सवैया

नौ लख गाय सुनी हम नन्द के तापर दूध दही न अघाने।
माँगत भीख फिरौ बन ही बन झूठि ही बातन के पन पाने॥
और की नारिन के मुख जोवत लाज गहौ कछु होहु सयाने।
जाहु भले जु चले घर जाहु चले बस जाउ वृन्दावन जाने॥११॥

शब्दार्थ—नौ लख=नौ लाख। अघाने=तृप्त हुए। जोवत=देखना। होहु सयाने=होश मे आकर। जाने=जानती है।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण! मैंने सुना है कि नद के नौ लाख गाये है, फिर भी तुम उनकी दूध दही खाकर तृप्त नही हुए। तुम वन-वन मे झूठी बाते बनाकर भीख माँगते फिरते हो। तुम दूसरो की स्त्रियो के मुह देखते फिरते हो। तुम्हारा यह कार्य नही है, अतः होश मे आकर कुछ शरम करो। अच्छा यही है कि तुम वृन्दावन अपने घर चले जाओ, क्योकि हम तुम्हे भली प्रकार जानते है।

स्फुट पद

तू एसी चतुराई ठानैं, काहे को निकसत या गैल ।
गैल कहा तेरे बाबा की, हम निकसी का पहिल पहैल ।
यह पैंडो सर्वहिन चलिबे को, काहे को तू रोकत छैल ।
रसखान के प्रभु सूधो चलि जा, देहुँ उरहनौ नंद महैल ॥१॥

शब्दार्थ—गैल=रास्ता । पहिल पहैल=प्रथम रास्ता । पैंडो रास्ता । उरहनौ=उपालम्भ, शिकायत । नंद महैल=नंदमिहिर ।

अर्थ—मार्ग मे जाते हुए किसी गोपी को कृष्ण ने छेड दिया । वह कृष्ण को बुरा-भला कहने लगी । इस पर कृष्ण ने कहा कि यदि अपने मन मे इतनी होशियार बनती है तो इस रास्ते से निकलती ही क्यो हैं ? इस पर गोपी कहती है कि यह रास्ता न तो तेरे बाबा का है और न हम प्रथम बार ही इससे जा रही हैं, पहले भी इस रास्ते से निकल चुकी है । रास्ता तो सभी के चलने के लिए है अत हे छैला ! तुम रास्ता क्यो रोकते हो ? हे रसखान के प्रभु ! हमे छोडकर या तो सीधे-सीधे यहाँ से चले जाओ, वरना तुम्हारी शिकायत नन्दमिहिर से कर देगी ।

गारी खायगौ अरे गँवार ?
ऐसी कौन सिखाई तोहै, पकरत आप पराई नार ?
जा जा गोरस ले पिवैया, कौन है तू मग रोकनहार ?
एती बरजोरी ना कीजै, मोहन सीख दई सत बार ।
खीजि मटुकिया झटकि सुपटकी, गोरस बहि-बहि चल्यौ पनार ?
रसखान के प्रभु आज जान दे, कल आऊँगी यहै करार ॥२॥

शब्दार्थ—गँवार=धृष्ट । गोरस=दही । बरजोरी=छीना-झपटी । सीख=शिक्षा । सतबार=सैकड़ो बार । खीजि=क्रोधित होकर । पनार=नाली ।

अर्थ—कोई गोपी दही बेचने के लिए जा रही थी । रास्ते मे कृष्ण मिल गये और उससे छेड़खानी करने लगे । इस पर गोपी ने कहा कि हे

धूर्त कृष्ण ! तुम मुझ से छेड़खानी क्यो करते हो ? क्या तुम मुझ से गाली खाना चाहते हो ? तुम्हे पराई स्त्री को छेड़ने की शिक्षा किसने दी है ? जाओ यहाँ से चले जाओ। तुम जैसे दही खाने वाले अनेक देखे हैं। मेरा रास्ता रोकने वाले होते कौन हो। हे मोहन मै तुमको सैकड़ो वार समझा चुकी हूँ कि तुम्हारी ऐसी छीना-झपटी करनी ठीक नही है। यह सुनकर कृष्ण को क्रोध आ गया और क्रोधित होकर उन्होने उस गोपी की दही की मटकी झटक कर पृथ्वी पर फेक दी जिससे वह फूट गई और दही नाली में बढ-बढकर चलने लगी। तव गोपी ने उनसे प्रार्थना की कि हे रसखान के प्रभु ! आज तो मुझे जाने दो। मैं वचन देती हूँ कि कल अवश्य आऊँगी।

वाही दिन वारौ वानक वनि, आयौ सखि आज।
गावत तेरी रिझि भावती, सग लिये सुघर समाज।
सासु ननद की कानि करौ जनि, उठ किन खेलौ फाग।
अखियाँ सखियाँ सुफल करौ किन, इन नैनन के भाग॥
कान परी जव तान मोहिनी, तवहुँ तजी कुल कानि॥
इतरु हमी वृषभान-नदिनी, उतरु हँसे रसखानि॥ ३॥

शब्दार्थ-वाही दिन वारौ=उसी दिन की तरह। वानक वनि=वेषभूषा सजाकर। सुघर=सुन्दर। कानि=भय जनि=मत। किन=क्यो नही। इतरु=इधर। वृषभान-नदिनी=राधा। रसखानि=कृष्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखियो को फाग खेलने के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि हे सखियो ! कृष्ण ने आज फिर उसी दिन वाली वेश-भूषा धारण करके अपने शरीर को सजाया है। वह अपने साथ अपने साथियो का सुन्दर समाज लेकर तेरे प्रेम के गीत गाता है। अव तुम अपनी सास और ननदो का भय मत करो और उठकर फाग खेलो। हे सखियो ! यह अवसर वड़े सौभाग्य से मिला है, अत कृष्ण के साथ फाग खेलकर अपनी आँखो को सफल करो। जव कृष्ण की मनोहरतान हमने सुनी थी तभी हमने अपने कुल की मर्यादा को छोड दिया था। इधर राधा कृष्ण को देखकर हँसी और उधर कृष्ण राधा को देखकर हँसे।

आज होरी रे मोहन होरी !
कालि हमारे आँगन गारी, दे आयौ सो को री॥
अव का दुरि वैठे मैया ढिग, निकसो कुन्ज विहारी।

उमँगि-उमँगि आई गोकुल की, सकल मही धनधारी।
जब ललना ललकारि निकासे, रूप सुधा की प्यारी।
लिपटि गई घनस्याम लाल सों, चमक चमक चपला सी॥
काजर देउ जु परि भरुवा के, सबै देहु मिलि गारी।
कहि रसखान एक गारी पै, सौ आदर वलिहारी॥ ४॥

शब्दार्थ—कालि=कल। दुरि=छिपकर। ललना=गोपी। चपला=विजली। भरुवा =भडुवा, विभिन्न वेशधारी।

अर्थ—गोपियाँ कृष्ण के घर जाती है और कृष्ण को होली खेलने के लिए ललकारती हुई कहती है कि हे मोहन! आज होली है, कल तुम हमारे घर जाकर गालीदे आये थे और आज अपनी माँ के पास छिपकर बैठ गये हो। हे कुन्ज-बिहारी! बाहर निकलो। देखो, गोकुल की समस्त वैभव वाली पृथ्वी उमग गई है, अर्थात् चारो ओर मादक वातावरण छाया हुआ है। जब कृष्ण के सौन्दर्य-अमृत की प्यासी गोपियो ने कृष्ण को बाहर निकाल लिया तो वे उससे विजली की तरह लिपट गई। तब वे कहने लगी कि सब मिलकर इस भडुवा को (कृष्ण को) काला कर दो और इसे गाली दो! रसखान कहते है कि उनकी एक गाली पर सौ आदरो को निछावर किया जा सकता है।

विशेष—उपमा अलकार।

मैं कैसे निकसो मोहन खेलै फाग।
मेरे सँग की सब गयी, मोहि प्रगट्यौ अनुराग॥
एक रैनि सुपनो भयौ, नन्द-नदन मिल्यौ आइ।
मैं सकुचन घूँघट कर्‌यौ, (उन) भुज भेरी लपटाइ॥
अपनौ रस मो को दयौ, मेरो लीनो घूँटि।
वैरिन पलकैं खुल गयी, (मेरी) गई आस सब टूटि।
फिरि मै वहुतेरी करी, नेकु न लागी आँखि।
पलक मूँदि परिचौ लियौ, (मैं) जाम एक लौं राखि।
मेरे ता दिन ह्वै गयौ, होरी डाडो रोपि।
सास ननद देखन गई, मौहि घर वासौ सोपि॥
सास उसासन भारुई ननद खरी अनखाय।
देवर डग धरिवो गनै, (मेरो) वोलत नाहु रिसाय॥
तिखने चढि ठाडी रहूँ, लैन करू कनहेर।

राति द्यौस हौसे रहे, का मुरली की टेर ।।
क्यो करि मन धीरज धरू, उठति अतिहि अकुलाय ।
कठिन हियौ फाटै नही, तिल भर दुख न समाय ।।
ऐसी मन मे आवई, छॉडि लाज कुल कानि ।
जाय मिलो वृज ईस सो, रति नायक रसखानि ।।५।।

शब्दार्थ –अनुराग =प्रेम । रस=आनन्द । परिचौ=परिचय, प्रतीक्षा । जाम=काल, प्रहर । डाडो रोपि=ड डा गाड दिया । वासौ=घर, सामान । अनखाय=क्रोधित होता है । तिखने=तिमजिले पर । कनहेर=दर्शन की उत्सुकता ।

अर्थ–कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैं घर से वाहर कैसे निकलू, क्योकि वाहर कृष्ण फाग खेल रहे हैं । मेरे साथ की सारी सखियाँ चली गई है, पर मैं नही गयी, क्योकि मेरे मन मे कृष्ण के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया है । हे सखि ! एक दिन स्वप्न मे मै कृष्ण से मिली । उस मिलन वेला मे मैंने तो सकोच से घू ंघट कर लिया, पर उन्होने अपनी भुजाएँ फैलाकर मुझे अपने वाहु-पास मे वॉध लिया । उन्होने अपना आनन्द मुझे दिया और मेरा स्वयं ले लिया । तभी मेरी आँखे खुल गयी और सव आशा टूट गई । फिर मैने सोने का वहुत प्रयत्न किया पर फिर मुझे नीद न आई । एक प्रहर तक आँखे मू दकर मैं नीद की प्रतीक्षा करती रही और देखे हुए दृश्य को आँखो मे झुलाती रही । उसी दिन से कृष्ण के साथ होली खेलने का मेरे ऊपर प्रतिवध लग गया । मुझे घर और घर का सामान सौंप कर सास ननद स्वय तो होली खेलने चली गयी, पर मुझे नही जाने दिया । कृष्ण के प्रति मेरे प्रेम को जानकर सास तो मुझे दुख देती रहती है, और ननद अत्यन्त अप्रसन्न रहती है । देवर मेरे आने-जाने की पूरी चौकसी करता रहता है, पति क्रोधित होकर बाते करता है । कृष्ण का तनिक सा दर्शन पाने के लिए मै तिमजिले पर खडी रहती हूँ और रात-दिन उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर प्रसन्न रहती हूँ । मैं अपने मन मे किस प्रकार धैर्य धारण कर सकती हूँ, क्योंकि कृष्ण की याद आते ही मेरा मन अत्यधिक व्याकुल हो जाता है । मेरा हृदय इतना कठोर है कि वह वियोग-दुख से फटता भी तो नही है और इतना कोमल है कि इसमे तिल भर दुख भी नही समा पाता । मेरे मन मे तो यह वात आती है कि मैं लज्जा और कुल-मर्यादा छोड़कर रति-नायक, व्रज केअधिपति कृष्ण से जा मिलूँ ।

संदिग्ध छंद

सवैया

हेरत कुँज भुजा धरे स्याम सो नैक तवै हँसती न लुगाई।
लाज़ न कानि हुती जिय माँझ सु मेटत जौ मग माँह कन्हाई।
हेरे परै न गुपाल सखी इन जोवन आनि कुचाल चलाई।
होय कहा अब के पछिताएँ जौ हाथ ते छुटि गई लहिकाई ॥१॥

शब्दार्थ—हेरत=देखते हुए। कानि=मर्यादा। लरिकाई=लडकपन, बचपन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखि! बचपन मे जब मै कृष्ण के ऊपर कुंज मे अपनी भुजाओ को रख लेती थी, अर्थात् उसे बाहु-पाश मे बाँध लेती थी तो उस घटना को देखते हुए भी अन्य स्त्रियाँ तनिक भी नही हँसती थी, मेरा परिहास नही करती थी। यदि कृष्ण मार्ग मे मिल जाता था तो मै निस्संकोच भाव से उससे मिलती थी। तब मेरे मन मे न तो लज्जा होती और न कुल की मर्यादा का कोई भाव होता था। हे सखि अब मोहन के आने पर मै चाहते हुए भी कृष्ण को नही देख पाती। यह मोहन तो मेरे लिए इतना कटु अपिशाप बन गया है। लेकिन अब बचपन बीत गया तो अब पछताने से क्या होता है।

विशेष—गोपी के सरल भाव का स्वाभाविक वर्णन है।

कवित्त

चीर की चटक औ लटक नव कुंडल की,
भौह की मटक नेह अँखिन दिखाउ रे।
मोहन सुजान गुरु-रूप के निधान फेरि,
बाँसुरी बजाई तनु-तपन सिराउ रे ॥

एहो बनवारी बलिहारी जाउँ तेरी अजु,
मेरी कुंज आइ नेक मीठी तान गाउ रे।
नंद के किसोर चितचोर मोर पखवारे,
बसींवारे सावरे पियारे इत आउ रे ॥२॥

शब्दार्थ—चटक=शोभा। नेह=स्नेह, प्रेम। निधान=भडार। तनु-त्तपन=शरीर का दुख। सिराउ=ठडा करना। नेक=तनिक।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से प्रार्थना कर रही है कि हे कृष्ण! अपने वस्त्रो की शोभा और नवीन कुडलो के इधर-उधर हिलने की शोभा, भौंहो की मटक और अपनी आँखो मे भरा हुआ प्रेम मुझे दिखाओ। हे मोहन! तुम सुजान हो, गुण और सौन्दर्य के भण्डार हो, फिर से बाँसुरी बजाकर मेरे शरीर के दुख को ठडा करो। हे बनवारी! मैं आज तुम पर बलिहारि होती हूँ। मेरे कुज मे आकर तनिक बाँसुरी की मीठी तान सुनाओ। हे नदनदन, चित्त को चुराने वाले, मोर-मुकुट धारण करने वाले, वशी वाले श्यामवर्ण प्रियतम, इधर आओ, अर्थात् मेरे पास आकर मेरा वियोग-दुख दूर करो।

तट की न घट भरै मग की न पग धरै,
घर की न कछु करै वैठी भरै साँसु री।
एकै सुनि लौट गई एकै लोट पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।
कहै रसखान सो सबै ब्रज वनिता वधि,
वधिक कहाय हाय भई कुल हाँसुरी।
करिये उपाय वाँस डारियै कटाय, नाहि,
उपजैगो वाँस नाँहि वजै फेरि वाँसुरी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—घट=घडा। मग=मार्ग। दृगनि=आँखो मे। हाँसु=हसी।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जब कृष्ण ने बाँसुरी बजाई तो ब्रज की समस्त गोपियाँ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। जो गोपी जल भरने के लिए गई थी, वह यमुना के किनारे पर ही खडी रह गई। जो मार्ग मे जा रही थी, उसके आगे पैर चले नही। जो घर मे थी वह अपना कार्य छोडकर केवल लम्बे-लम्बे सास लेने लगी। एक गोपी बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर पृथ्वी पर अचेत

होकर लौट गई, एक लोट-पोट हो गई एक की आखो से आँसू निकल आए। रसखान कहते है इस प्रकार ब्रज की गोपियो की भी हँसी हुइ क्योकि उन्होने अपनी कुल की मर्यादा का कोई ध्यान नहीं रखा वाँसुरी के इस भयकर प्रभाव से वचने का तो केवल यही उपाय है कि इस ससार क सारे वाँसो का कटवा दिया जाये, क्योकि न वाँस होगा और न वाँसरी वजेगी !

विशेष——लोकोक्ति अलकार।

कवित्त

भिक्षुक तिहारो कहाँ वलि मख शाला जहाँ,
सर्पन को सगी कहाँ ह्वै है छीरनिधि मे !
ऐरी वहुरगी बैल वारौ कहाँ नाचत है,
कीने तिरभग, कही ह्वै है ग्वालन मे।
चाउर चवैया कहाँ है सुदामा पास,
विष को अहारी कहाँ पूतना के घर मे।
सिधु-सुता आन मिली तर्क सो तरक करी,
गिरिजा मुसकाति जाति झारी लिए कर मे ॥४॥

शब्दार्थ—वयि मख-शाला जहाँ=जहाँ पर राजा बलि की यज्ञशाला है। छीरनिधि=क्षीरसागर, विष्णु का निवास-स्थान, कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता है। तिरभगा=त्रिभगी होकर। पूतना=एक राक्षसी, जिसे कृष्ण ने वचपन मे मारा था। सिन्धु-सुता=लक्ष्मी। तर्क से तर्क करी=तर्क के द्वारा पराजित कर दिया। गिरिजा=पार्वती झारी=जलपात्र।

अर्थ—पार्वती जल का पात्र लेकर जा रही थी। मार्ग मे उन्हे लक्ष्मी मिली। उसने शिव का परिहास करने के लिए पार्वती से कुछ प्रश्न किये, परन्तु पार्वती ने उनके उत्तर कृष्ण से (विष्णु के अवतार से) सम्वद्ध कर दिये। इस प्रकार पार्वती ने अपने पति के गौरव की भी रक्षा की और लक्ष्मी को अपने तर्को से पराजित कर दिया। प्रश्न और उत्तर इस प्रकार हैं !

प्रश्न—तुम्हा भिक्षुक कहाँ है ? (गोपी का शिव से तात्पर्य है।)

उत्तर—जहाँ राजा बलि की यज्ञशाला है। (कृष्ण राजा वलि के पास वामन का रूप धारण करके दान माँगने गये थे।)

प्रश्न—सर्पो का साथी कहाँ है ? (शिव के गले मे सर्प है।)

उत्तर—क्षीर सागर मे। (विष्णु क्षीर सागर मे शेपनाग की शैया वनाकर निवास करते है। कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है।)

प्रश्न—अरी, मै पूछती हूँ कि वह वहुरँगी वैल वाला कहाँ नाच रहा है। (शिव की सवारी नाँदी बेल है और शिव का ताण्डव नृत्य लोक प्रसिद्ध है।)

उत्तर—तीन भगिमाएं बनाकर ग्वाल-समूह के मध्य ।

प्रश्न—चावलो को चाबने वाला कहाँ है ? (शिव वैभव से दूर रहकर कठोर योगी का जीवन बिताते है ।)

उत्तर—सुदामा के पास । (कृष्ण ने सुदामा के चावल खाये थे ।)

प्रश्न—वह विष खाने वाला कहा है ? (शिव ने देवताओ की रक्षा के लिए क्षीर सागर से निकले हुए विष का पान किया था ।)

उत्तर—पूतना के घर मे । (पूतना राक्षसी अपने स्तनो से विष लगाकर बालक कृष्ण को मारने आई थी।)

इस प्रकार जल-पात्र लेकर जाती हुई पार्वती ने अपने तर्कों से लक्ष्मी को पराजित कर दिया ।

सवैया

खोलिये फाग निसक ह्वै आज मयक मुखी कहै भाग हमारो ।
लेहु गुलाल दुऔ कर मे पित्र काटिक रग हिये महं डारो ।
भावै सु मोहि करो रसखान जू पाँव परौ जनि घूंघट टारो ॥
वीर की सौह हौं देखिहौं कैसे अबीर तो आँख बचाय के डारो ॥५॥

शब्दार्थ—निसक ह्वै=निडर होकर। मयकमुखी=चन्द्रमुखी। दुऔ=दोनो। भावै=जो अच्छा लगे । पाव परौ जनि घूंघट टारो=मैं तुम्हारे पैरों मे पडकर प्रार्थना करती हूँ कि मेरा घू घट मत खोलो । वीर=भाई । सौह=सौं गध ।

अर्थ—फाग खेलते समय कोई चन्द्रमुखी गोपी कृष्ण से कहती है कि हे कृष्ण ! हम दोनो को फाग खेलने का अवसर मिला है, यह हमारा सौभाग्य है, अत तुम निडर होकर फाग खेलो । दोनो हाथो मे गुलाल लेकर और पिचकारी मे रग भरकर मेरे ऊपर डालो । जो अच्छा लगे, उसी प्रकार मेरे साथ फाग खेलो, पर मैं तुमसे पैरो मे पडकर प्रार्थना करती हूँ कि मेरा घूंघट मत खोलो । मैं भाई की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मेरी आँखो को बचाकर मेरे ऊपर अबीर डालो, वरना आखो मे अबीर पड जाने से मे किस प्रकार तुम्हारे सौन्दर्य को देख सकूँगी ?

दोहा

नन्द महर के वगर तन, ऊव मेरे को जाय ।
नाहक कहुँ गढि जायगो, हित काँटो मन पाय ।। ६ ।।

शब्दार्थ—वगर=आँगन । मेरे को जाये=मेरी वलाय जाये । =नाहक व्यर्थ मे ही । हित=प्रेम । मन-पाय=मन रूपी चरण मे ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि नन्द मिहिर के आँगन

मे अब मेरी वलाय जाय अर्थात् मै वहाँ बिल्कुल नही जाऊगी क्यो वहाँ व्यर्थ ही मन रूपी चरण मे प्रेम रूपी काँटा गड़ जायेगा अर्थात् कृष्ण से प्रेम हो जायेगा।

विशेष—रूपक अलकार।

कवित्त

सुरतरु लतानि भार फल है ललित कैधो,
कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी।
कैधो चिन्तामनिन की माल उर सोभित,
विसाल कठ मे धरै है जोति झलकावनी॥
प्रभु की कहानी ते गुसाईं की मधुरबानी,
मुक्ति सुखदानी रसखानि मनभावनी।
खाड की खिजावनी सी कठ की कुढावनी सी,
सिता को सतावनी सी सुधा सकुचावनी॥ ७॥

शब्दार्थ—सुरतर=कल्पवृक्ष। चार फल=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। ललित=सुन्दर। नेह=स्नेह। सिता=शर्करा, चीनी।

अर्थ—इस कवित्त मे राम-कथा के महत्व का वर्णन किया गया है। यह राम कथा कल्पवृक्ष की शाखाओ की भाँति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार सुन्दर फल देने वाली है या कामधेनु की दुग्ध धारा के समान पवित्र और निर्मल प्रेम को उत्पन्न करने वाली है या हृदय पर चिन्तामणि माला के समान सुशोभित होने वाली है या विशाल कण्ठ मे दिव्य ज्योति के समान झलकने वाली है राम की कथा से गोस्वामी तुलसीदास की वाणी मुक्ति सुख आनन्द देने वाली बनकर मनोहर हो गई। राम-कथा खॉड कन्द शरीर की भाँति मीठी और अमृत के समान अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली है।

विशेष—सन्देह, उल्लेख अलकार।

अग भभूत लगाय महा सुख है कोउ ऐसौ सो प्रेमहु पागै।
नाथ को नाम सुनै बिगसै हियो कान्ह को नाम सुनै अनुरागै।
जोग लिये हरि प्यारौ मिलै तो मै कान फटाये कहा दुख लागै।
मोहन के मन मानी यही तो सबै री कहो मिलि गोरख जागै॥ ८॥

शब्दार्थ—भभूत=भस्म। नाथ=गोरखनाथ। बिगसै हियौ=हृदय प्रसन्न हो जाता है। अनुरागै=प्रेम पूर्ण हो जाता है।

अर्थ—उद्धव के निर्गुण ब्रह्म उपदेश को सुनकर कोई गोपी उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण के प्रेम मे निमग्न हुआ क्या कोई ऐसा प्राणी है जो यह कहे कि अगो मे भस्म लगाने से महासुख की प्राप्ति होती है। गोरखनाथ का नाम सुनकर हृदय प्रसन्न हो जाता है परन्तु कृष्ण का नाम सुनने पर

मन प्रेमपूर्ण हो जाता है। यदि योग धारण करने से प्यारा कृष्ण मिल जाय तो हमे अपने कान फटवा लेने से भी कोई दुख नही अर्थात् हम सहर्ष अपने कान फटवा सकती है। यदि कृष्ण की यही इच्छा है कि हम उन्हे छोड़कर योग साधना शुरू कर दे तो हे सखि! सब आजाओ और मिलकर गोरखनाथ का अलख जगाओ।

कैसा यह देस निगोरा, जग होरी व्रज होरा।
मैं जल जमना भरन जात रही, देखि वडन मेरा गोरा।
मोसो कहै चलो कुंजन मे, तनक-तनक से छोरा।
परे आँखिन मे डोरा ॥
जिमरा देखि डरात सखी री, लाज भरम को ओरा।
का बूढ का लौग लुगाई, एक ते एक ठिठोरा।
न काहू सो काहू को जोरा।
मन मेरो हर्‌यो नद के ने सखि, चलत लगावत चोरा।
कहै रसखान सिखाइ सखन सो, सब मेरा अग टटोरा।
न मानत कहत निहोरा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ–निहोरा=निगोडा तनक तनक सो=छोटे छोटे। डोरा=काजल। ठिठोरा=धृष्ट। निहोरा=विनय।

अर्थ–कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! यह निगोडा देश कैसा है और व्रज तो सारे जग से चढकर है। मैं यमुना मे पानी भरने के लिए जा रही थी कि मेरे गोरे शरीर को देखकर मेरे सौन्दर्य पर रीझ कर, छोटे-छोटे बच्चे भी जो आँखो मे काजल लगाए हुए थे, मुझ से कहने लगे कि कुन्जो मे चलो। उन्हें देखकर मेरा मन डर गया, लज्जा सकट मे पड गई। क्या बूढे, क्या लोग और स्त्रियाँ, यहाँ व्रज मे तो सब एक-दूसरे से बढ-चढकर धृष्ट हैं, कोई किसी से के जोड़े मे नही आता, अर्थात् सभी अनुपमेय है। हे सखि! मेरा मन कृष्ण ने हर लिया है, वह चोरी-चोरी मेरे पीछे चलता है और अपने सब साथियो को सिखा कर मेरी तलाशी लिवा लेता है। उससे चाहे कितनी विनय करो, पर वह किसी की कोई बात नही सुनता।

दोहा

परम चतुर पुनि रसिकवर, कैसो हू नर होय।
विना प्रेम रूखो लगै, वादि चतुरई सोय ॥ १० ॥

शब्दार्थर—सिकवर=भावुक। वादि=व्यर्थ। चतुराई=चतुरता।

अर्थ–इस दोहे मे कृष्ण-प्रेम की महत्व का वर्णन किया गया गया है। चाहे मनुष्य कितना ही चतुर और भावुक हो परन्तु यदि उसमे कृष्ण के प्रति प्रेम नही है तो वह नीरस है और उसकी सारी चतुराई व्यर्थ है।